हिन्दी-कहानी की रचना-प्रक्रिया

गोरखपुर विश्वविद्यालय की डी० फिल्० की उपाधि के निमित्त
स्वीकृत शोध-प्रबन्ध

डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव
एम० ए०, पी-एच० डी०

ग्रन्थम

●

● मूल्य १२.५० पैसे

● प्रकाशन

ग्रन्थम, रामबाग, कानपुर

● प्रकाशनकाल

फरवरी, १९६५

● मुद्रक

मानक प्रिण्टर्स, आनन्दबाग,
कानपुर-१२

का नाम हिन्दी कहानी की रचना-प्रक्रि

क डा० परमानन्द श्रीवा

ाशक ग्रन्थम, रामबाग

ाक मौलिक है या अनुवादित मौलिक

ऽ कभी पुरस्कार प्रतियोगिता में भेजी गई ?

पुरस्कार के लिए विविध

का सन् / संवत

स्वर्गीय पिता और मां
की स्मृति में

यह प्रबन्ध जिस रूप में प्रस्तुत किया गया था, उसी रूप में अविकल प्रकाशित है। कई कारणों से आवश्यक परिवर्तन या संशोधन भी इसमें नहीं किया जा सका है।

—परमानन्द श्रीवास्तव

प्राक्कथन

रचना-प्रक्रिया का प्रश्न पिछले कुछ वर्षों से ही साहित्यिक आलोचना के क्षेत्र में उठाया गया है। अधिकतर आलोचकों ने अभी भी रचना–प्रक्रिया के प्रश्न को पूर्णतः साहित्यिक आलोचना का प्रश्न मानने से अस्वीकार किया है। उनका कहना है कि रचनात्मक प्रक्रिया का प्रश्न, या तो रचनाकार के लिए, महत्वपूर्ण हो सकता है या फिर मनोवैज्ञानिक के लिए; पाठक या समीक्षक के लिए यह प्रश्न क्यों कर महत्वपूर्ण हो सकता है। इस प्रकार के विचार रचना-प्रक्रिया के एक सीमित अर्थ को ध्यान में रख कर ही व्यक्त किए जाते हैं, जैसे रचना की प्रक्रिया रचना के पीछे ही हो और वह भी कोई याँत्रिक वस्तु हो। हमने कहानी के रचनात्मक विकास की प्रक्रिया के भीतर प्रवेश कर तथा रचना की समस्याओं का पर्याप्त अनुशीलन करने पर प्रतिपादित करना चाहा हैं कि रचना की प्रक्रिया 'रचना' के पीछे भी होती है और 'रचना' में भी। कुछ स्थितियों में तो यह प्रक्रिया 'रचना' की सृष्टि के बाद भी चलती रहती है। एक तो पाठक के मन में (कथा-साहित्य के प्रख्यात पश्चिमी समीक्षक पर्सी ल्युबक ने जिस पक्ष पर बहुत पहले विचार किया था), दूसरे रचनाकार के निजी मन में (जो अपनी पूर्वकृतियों के रचना-त्मक शिल्प से आगे बढ़ता है या बढ़ना चाहता है) यह प्रक्रिया चलती रहती है।

'रचना–प्रक्रिया' शब्द उतना नया नहीं है, आपाततः जितना जान पड़ता है। बहुत पहले आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने 'रचना–प्रक्रिया' शब्द का व्यवहार 'टेकनीक' के अर्थ में किया था। आगे चल कर पश्चिमी कथा–साहित्य और काव्य–साहित्य को मनोवैज्ञानिक व्याख्याओं के प्रभाव के फल–स्वरूप यह प्रश्न हिन्दी में सृजनात्मक प्रक्रिया (क्रिएटिव प्रासेस) के अर्थ में उठाया गया। पिछले दशक की हिन्दी-आलोचना में रचना-प्रक्रिया का प्रश्न साहित्यिक कृतियों और उनके मूल्यों पर विचार करते हुए जब–तब उठाया गया है।

रचना–प्रक्रिया रचनात्मक अनुभूति की प्रक्रिया है। अतः उसके साहित्यिक मूल्य को अस्वीकार करना कठिन है। आचार्यों ने रसानुभूति की प्रक्रिया पर विचार करते हुए जटिल अनुभवों के चित्रण की जिन संभावनाओं की ओर संकेत किया है, रचनात्मक प्रेरणाएं उनमें प्रमुख हैं। आधुनिक हिन्दी आलोचना में रचना की प्रक्रिया के सम्बन्ध में जो विचार प्रस्तुत किए गए हैं वे प्रायः 'कविता' को लेकर या 'उपन्यास' को लेकर। 'कहानी' नामक साहित्यिक विधा की कुछ अपनी सीमायें रही हैं जिनके कारण उसमें घटित होने वाली रचनात्मक अनुभूति–प्रक्रिया पर विद्वानों का ध्यान कम ही गया है। हमने अनुभव किया है कि विकास-काल की कहानी रचनात्मक अनुभवों की समस्त जटिलताओं का साक्षात्कार करते हुए उस अर्थपूर्ण लक्ष्य की प्राप्ति कर सकी है जिसकी संभावना 'कविता' या 'उपन्यास' जैसी साहित्यिक विधाओं में ही की जाती थी।

रचनाकार अपनी अनुभूति के चरम उद्वेग–क्षण में उसे अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए ही विविध कला–रूपों की सृष्टि करता है। साहित्य भी ऐसे कला–रूपों में से एक है और रचनात्मक साहित्य की ही एक विधा 'कहानी' है जो प्रवृत्ति की दृष्टि से कितनी ही प्राचीन क्यों न हो, रूपगत एवं रचनात्मक विशेषताओं की दृष्टि से नवीन उपलब्धि है। प्रस्तुत प्रबन्ध में हमने रचना-प्रक्रिया की समस्याओं को ध्यान में रखकर कहानी की रचना-प्रक्रिया की छानबीन सीधे हिन्दी गद्य की प्रारम्भिक कहानियों से आरम्भ की है। कहानी की जो प्रवृत्ति प्राचीन आख्यानक काव्यों या लोकगाथाओं या कथाओं में प्राप्त होती है–साहित्यिक विधा के रूप में स्वीकृत कहानी की कला से उसका दूर का सम्बन्ध है और उसके महत्व पर पहले प्रस्तुत और प्रकाशित शोध-प्रबन्धों में पर्याप्त विचार किया गया है।

आलोच्य युगों की कहानी की रचना–प्रक्रिया का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए हमारा दृष्टिकोण सम्पूर्ण-प्रक्रिया (प्रासेस) को समझने का रहा है जिसके अन्तर्गत शिल्पविधि (टेकनीक) केवल एक पक्ष है–जिसके अन्तर्गत शिल्पविधि से पृथक अनेक विचारणीय प्रश्न उपस्थित होते हैं। कहानी लेखक ने कथानक का चुनाव कहाँ से किया है, चरित्र, अनुभव, संवेदना तथा भाषा उसे कहाँ से मिली है, कथानक-रचना के सम्बन्ध में उसका दृष्टिकोण क्या है, जीवन के यथार्थ और रचनात्मक मूल्यों के प्रति उसका क्या आग्रह है, कहानी में किसी विशेष क्षेत्र या अंचल के ही वातावरण को उसने क्यों प्रधानता दी है या अपनाया है, उसका 'अभिप्रेत' कहानी में कहाँ निवास करता

है–ऐसे अनेक प्रश्न हैं जो कहानी की रचना–प्रक्रिया और रचना–प्रक्रिया की समस्याओं को समझने के लिए कतिपय विशिष्ट आधार उपस्थित करते हैं क्योंकि रचना-प्रक्रिया के अन्तर्गत रचनाकार का अनुभव, विचार, बिम्बविधान सभी कुछ विचार्य होता है। प्रस्तुत प्रबन्ध में हमारा उद्देश्य जीवन–यथार्थ के प्रति विभिन्न युगों की कहानी के दृष्टिकोणों में निहित मौलिक अन्तर तथा उनके प्रेरणा–स्रोतों की भिन्नता का विश्लेषण करते हुए कहानी की रचना-प्रक्रिया के प्रश्न पर एक सर्वथा नये दृष्टि-क्रम में विचार करना रहा है।

यहाँ 'प्रक्रिया' शब्द के सम्बन्ध में यह संकेत करना आवश्यक जान पड़ता है कि यह व्यापक अर्थ-संभावना से सम्बद्ध शब्द है-दार्शनिकों ने स्पष्टीकरण करते हुए विकास (एवोल्यूशन) से जिसकी तुलना की है और प्रतिपादित किया है कि विकास एक घटना है और प्रक्रिया एक आन्तरिक व्यापार है। जार्ज ह्वेली ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'द पोएटिक प्रासेस' में संकेत किया है कि प्रक्रिया–कोई कलात्मक कृति जिसका परिणाम होती है–एक साथ ही अन्वेषण और आत्मान्वेषण दोनों ही है, वह एक प्रकार का आत्मबोध है जो रचनात्मक संसार को अधिक वास्तविक बना देता है। हर्बर्ट रीड ने सम्पूर्ण रचनात्मक प्रक्रिया को बहुत से मूल रचनात्मक क्षणों का आकलन माना है। जाकमारिताँ ने रचनात्मक अन्तः प्रेरणा (इन्ट्यूशन) को साहित्यिक मूल्याँकन का आधार स्वीकार किया है। हिन्दी कथाकारों में प्रेमचन्द पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने सृजनशीलता को ही 'मूल वस्तु' माना है। हमारी दृष्टि में प्रक्रिया एक विशेष अनुभव–व्यापार है जो रचना को जन्म भी देता है और अन्य अनेक उपकरणों के साथ रचना में मूर्त भी होता है। रचना की प्रक्रिया के मनोवैज्ञानिक आधार को गहराई से समझने का प्रयत्न करते हुये हमने फ्रायड, एडलर, युंग जैसे मनोविश्लेषणवादी दार्शनिकों, चेतना–प्रवाह–सिद्धान्त के प्रवर्तक विलियम जेम्स जैसे मनोवैज्ञानिक चिन्तकों, तथा आभ्यन्तर प्रयाण (इन्वर्ड टर्निग) पर बल देने वाले हेनरी जेम्स, वर्जीनियाँ वुल्फ, जेम्स ज्वाइस आदि प्रख्यात कथाकारों की मान्यताओं के भीतर प्रवेश कर रचना–प्रक्रिया के नानाविध पक्षों और समस्याओं की विवेचना करने का प्रयत्न संभवतः पहली बार प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के अन्तर्गत किया है। प्रस्तुत अध्ययन-क्रम में हमने कहानी की रचना–प्रक्रिया के अन्तर्गत लेखकों की अनुभूति और संवेदना से लेकर उनकी अभिव्यक्ति–तक के सभी अधिकारिक पक्षों का ध्यान रखा है और पाया है कि हिन्दी कहानी में नवीन आधुनिकता के प्रवेश से ही (प्रत्यक्ष

रूप में, प्रसाद एवं प्रेमचन्द के आगमन के साथ) रचनात्मक प्रक्रिया के प्रति एक सार्थक जागरूकता विद्यमान है।

प्रस्तुत अध्ययन-क्रम में हमने उपलब्ध प्रमुख सामग्री के प्रकाश में ही रचना की प्रक्रिया की समस्याओं को विवेचना का अंग बनाया है। हमारे समक्ष कार्य रचनात्मक प्रक्रिया का विश्लेषण प्रस्तुत करना और उस सन्दर्भ में उपलब्ध प्रधान सामग्री को उदाहरण मान कर उसकी समीक्षा प्रस्तुत करना ही रहा है–कहानी–साहित्य के ऐतिहासिक विस्तार में जाना हमारा प्रयोजन नहीं रहा है।

यहीं, यह निवेदन करना आवश्यक जान पड़ता है कि यद्यपि हिन्दी-कहानी का सारा विकास आधुनिक काल की ही सीमा में आ जाता है और इस दृष्टि से प्राचीन हिन्दी-कहानी एवं नवीन हिन्दी-कहानी–इस विभाजन के औचित्य में ही सन्देह किया जा सकता है, परन्तु, क्योंकि हिन्दी-कहानी का जन्म ही आधुनिक काल में हुआ अतः कहानी-शिल्प एवं संवेदना के स्तरों में लक्षित होते हुए मौलिक अन्तर को ध्यान में रखते हुए इसी धरातल पर हमें प्राचीनता और नवीनता (या नवीन आधुनिकता) का निर्णय करना है। यह कहानी–साहित्य की शक्ति का ही सूचक है कि इंशा और अज्ञेय–इन लेखकों के बीच कहानी ने वे सभी स्तर प्राप्त किए हैं कि इतिहास में 'आधुनिक काल' की संज्ञा पाने वाले युग की ही आरम्भिक कहानियों को हम 'प्राचीन' एवं विकास की कहानियों को 'नवीन' की संज्ञा देने के लिए प्रस्तुत हो सके हैं। हमारी दृष्टि में, हिन्दी कहानी–रचना की सीमा में आने वाले प्रारम्भिक कथात्मक प्रयत्नों को, जिनका रूपविधान और अभिप्रेत आधुनिक नहीं हैं, 'प्राचीन' की संज्ञा देना उचित और तर्कसंगत ही है और 'प्राचीन' कहानी की तुलना में स्वभावतः ही आगे की हिन्दी-कहानी 'नवीन हिन्दी-कहानी' की संज्ञा प्राप्त करने की अधिकारिणी है। 'नवीन' कहने से जिस 'नवीन आधुनिकता' का बोध होता हैं, वह हमारी समझ में प्रेमचन्द युग की अनेक कहानियों में विद्यमान है और वहीं विकास की प्रक्रिया में नवीन दिशायें ग्रहण की गयी हैं।

प्रस्तुत प्रबन्ध का महत्व यह है कि इसके अन्तर्गत उपर्युक्त विभाजन के अनुसार प्राचीन कहानी एवं नवीन कहानी की रचना-प्रक्रिया के सूक्ष्म भेदों को समझने का प्रयत्न किया गया है और पहली बार रचना की प्रक्रिया से सम्बन्धित समस्याओं को कहानी-साहित्य की समीक्षा के क्षेत्र में उठाया गया

है। प्रस्तुत प्रबन्ध से पहले प्रस्तुत या प्रकाशित शोध-प्रबन्धों[1] में या अन्य आलोचनात्मक ग्रन्थों में या तो कहानी के ऐतिहाहिक विकास का परिचय दिया गया है या शिल्प की विशेषताओं को पूर्व निर्धारित कहानीकला के शास्त्रीय तत्वों के आधार पर समझाया गया है। प्रस्तुत प्रबन्ध में पहली बार रचनात्मक प्रक्रिया को कहानी-साहित्य के मूल्याँकन का आधार माना गया है; प्रतिपादित किया गया है कि रचनात्मक प्रक्रिया का शिल्प-विधान केवल एक पक्ष है ; संकेत किया गया है कि रचना-प्रक्रिया की दृष्टि से समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने की आवश्यकता आज कितनी अधिक है और इस प्रयत्न क्रम में पूर्वनिर्धारित कहानी-कला के शास्त्रीय तत्वो (कथानक, चरित्र, वातावरण, संवेदना आदि) को उनके रूढ़ अर्थों से मुक्त करने, उनकी नयी अर्थवक्ता की संभावना को आलोचनात्मक व्यवहार में लाने की कितनी आवश्यकता है। जैनेन्द्र जैसे कहानीकारों के वक्तव्यों में यह गूंज बार–बार सुनाई दे रही है कि कहानी शिल्प नहीं हैं, संवेदन और संवेद्य है। हमने अनुभव किया है कि शिल्प की समस्याओं की विवेचना ऊपर-ऊपर करने से अधिक लाभदायक स्थिति तो यह होती है कि हम कहानी को 'रचना' (क्रिएशन) मानें और कृतिकार की अन्तः प्रेरणा, उसके यथार्थ बोध, उसकी ऐन्द्रिय चेतना, उसकी संवेदनशीलता के भीतर प्रवेश कर रचनात्मक विशेषताओं को समझने का प्रयत्न करें।

कहानी-साहित्य की रचनात्मक प्रक्रिया के अध्ययन-क्रम के आरम्भ में हमने क्रमशः रचना-प्रक्रिया की "आधार भूमि", रचना-प्रक्रिया के मनोवैज्ञानिक आधार, रचना–प्रक्रिया के साहित्यिक आधार, कहानी के प्राचीन रूप, कहानी के नये रूप, रचनात्मक चेतना का कहानी नामक साहित्यिक विधा में उपयोग, शास्त्रीय समीक्षा द्वारा निर्धारित कहानीकला के प्रमुख तत्वों के रचनात्मक उपयोग की संभावना, तथा रचना-प्रक्रिया और आधुनिकता के प्रमुख स्तर, रचनाकार, रचना-प्रक्रिया और पाठक-आदि विषयों पर विचार किया है और प्रतिपादित किया है कि रचना–प्रक्रिया कोई जड़–यन्त्र नहीं है, बल्कि वह रचनाकार की मानसिक संवेदना, सामाजिक परिवेश, तथा उसके कलात्मक अनुभवों से सम्बन्धित एक जागरूक प्रक्रिया है जिसमें रचनाकार न केवल

१–हिन्दी-कहानियों की शिल्पविधि का विकास : डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल (१९५३)
हिन्दी कहानियों का विवेचनात्मक अध्ययन डॉ० ब्रह्मदत्त शर्मा (१९५८)

रचनात्मक अनुभवों को सम्प्रेषित करता है बल्कि अपने को पाता भी है, उपलब्ध भी करता है। यह और बात है कि एक लेखक जीवन और यथार्थ को देखते हुए भी और उसे सम्पूर्ण भोगते हुए भी अपने रचनात्मक लेखन की सार्थकता मन की किसी संचेत्य दशा को अंकित करने में ही मान लेता है और दूसरा रचनात्मक लेखन को जीवन और यथार्थ के जटिल अनुभवों की तीव्रतम पीड़ा से अपने को मुक्त करने का साधन मानता है

प्रस्तुत प्रबन्ध के दूसरे, तीसरे, और चौथे अध्यायों में हमने पूर्व प्रेमचंद-युग की हिन्दी-कहानी अर्थात् प्राचीन हिन्दी-कहानी, प्रेमचन्द युग की हिन्दी-कहानी अर्थात् नवीन आधुनिकता के पूर्वार्द्ध की कहानी, उत्तर प्रेमचंद-युग की हिन्दी–कहानी अर्थात् नवीन आधुनिकता के उत्तरार्द्ध की कहानी की रचनात्मक प्रक्रिया की विशेषताओं और सीमाओं की व्याख्या की है—प्रमुख कृतिकारों की रचना–प्रक्रिया और युग विशेष की रचनात्मक अन्तःप्रेरणा के परस्पर सम्बन्ध की व्याख्या की है, तथा कहानी की रचना-प्रक्रिया के विकास की दिशाओं को अधिक सूक्ष्मता से पहचानने का प्रयत्न किया।

प्रस्तुत प्रबन्ध के पाँचवें अध्याय में, हमने पहले के सम्पूर्ण विवेचन के आधार पर हिन्दी-कहानी के विविध युगों की रचना–प्रक्रिया का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए यथार्थ की चेतना या यथार्थ के साक्षात्कार के प्रति विभिन्न युगों के कृतिकारों के दृष्टिकोणों में व्याप्त मौलिक अन्तर की व्याख्या की है और अनुभव किया है कि प्राचीन कहानी में कल्पनातिरेक (फैन्टेसी), संयोगतत्व या आकस्मिकता, प्राचीन कथात्मक पद्धति का असतर्क सम्मिश्रण तथा आधुनिक कहानी में यथार्थ की सामाजिक और वैयक्तिक चेतना के सूक्ष्मतम स्तरों का उद्‌घाटन, मानव–चेतना का उदय, आधुनिक मानव की परि–कल्पना, सूक्ष्म मनोविश्लेषण, यथार्थ के दूरगामी संदर्भों का आकलन, कथा-रस की रचनात्मक स्तर पर प्रतिष्ठा, चरित्रविधान में मनोवैश्लेषिक पद्धति का व्यवहार, अधिक सूक्ष्म रचनात्मक शिल्प का विकास, रचनात्मक प्राक्रिया के प्रति सचेतनता आदि जो सीमायें और विशेषताएँ पायी जाती हैं उनके पीछे विशेष कृतिकारों के विशेष कलात्मक संस्कार तो हैं ही—युग विशेष की परि-स्थितियाँ, मानसिक परिस्थितियाँ तथा अन्तः प्रेरणायें भी हैं।

छठें और अन्तिम अध्याय में जहाँ हमने आज की कहानी की नयी दिशाओं की ओर संकेत किया है, वहीं उसके परिशिष्ट में हमने रचना-प्रक्रिया

की चेतना पर समूचे अध्ययन के आधार पर पुनर्विचार की आवश्यकता का अनुभव किया है।

प्रस्तुतकर्ता की दृष्टि में प्रस्तुत प्रबन्ध की उपयोगिता, हिन्दी जगत् के लिए यही है कि इसमें आलोचना के एक सर्वथा नये दृष्टिक्रम में हिन्दी-कहानी के विभिन्न युगों की रचना-प्रक्रिया का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इस ग्रन्थ में अन्वेषण का दायित्व इस रूप में स्वीकार किया गया है कि रचनात्मक प्रक्रिया पर बल देते हुए रचनात्मक अनुभव-व्यापारों की व्याख्या की जाय और रचना की प्रक्रिया के उपादानों का अधिक सूक्ष्म विश्लेषण किया जाय। साथ ही, कहानी के शिल्प की आलोचना करने के लिए जो कलात्मक तत्व शास्त्रीय समीक्षा द्वारा बहुत पहले से निर्धारित हैं उनकी रूढ़ि तोड़ कर उनके नये रचनात्मक उपयोग की संभावना पर विचार करते हुए उनकी नयी सार्थकता निर्दिष्ट की जाय।

उपर्युक्त निवेदन के साथ इस प्रबन्ध को प्रस्तुत करते हुए हमें सन्तोष है कि हमने हिन्दी-आलोचना के क्षेत्र में कुछ महत्वपूर्ण और मौलिक स्थापनाओं के साथ प्रवेश किया है। हिन्दी-कहानी से सम्बन्धित शोध-प्रबन्धों में रचनात्मक प्रक्रिया की समस्याओं पर विचार नहीं ही किया गया है, अन्य विधाओं से सम्बन्धित शोध-प्रबन्धों में भी रचना-प्रक्रिया के धरातल पर विचार नहीं किया जा सका है। अपनी सीमाओं का बोध हमारे मन में बराबर बना रहा है। रचना-प्रक्रिया के धरातल पर आलोचना की समस्याओं को उठाते हुए आवश्यक था, कि आधुनिक साहित्य की किसी एक महत्वपूर्ण विधा का आधार रूप में चुनाव कर लिया जाय। हमने हिन्दी-कहानी के विभिन्न युगों के प्रयत्नों के आधार पर रचना-प्रक्रिया की समस्याओं को समझने का यत्न किया है। पर इस दुहरे दायित्वबोध ने हमें विस्तार में जाने से रोका है। कुछ अन्य कठिनाइयाँ भी हमारे सामने रही हैं। उदाहरणतः कृतिकारों की ओर से रचना-प्रक्रिया की व्याख्या के प्रयत्न हमारे यहां उस रूप में नहीं हुए जिस रूप में पश्चिम में बहुत पहले से प्रचलित हैं। हेनरी जेम्स की रचना-प्रक्रिया का मूल्यांकन करते हुए हैरोल्ड टी० मैकार्थी ने जो महत्वपूर्ण पुस्तक (हेनरी जेम्स : द क्रिएटिव प्रासेस) लिखी है वह प्रमाण है कि पश्चिम के कृतिकार रचना-प्रक्रिया के प्रति कितने जागरूक हैं। पर इस सीमा का एक प्रत्यक्ष लाभ हमें मिला है। रचनाकारों की निजी टिप्पणियों, परिचयात्मक

व्याख्याओं, पत्रों, डायरियों से जो पूर्वाग्रह समीक्षक के मन में उपज सकते हैं, हम उनसे अनायास ही बच भी गए हैं।

हिन्दी-कहानी की समीक्षा की एक बड़ी सीमा यह रही है कि कहानी की रचनात्मक विशेषताओं में निरन्तर विकास होते रहने पर भी उसका मूल्यांकन प्रचलित भूमि पर ही किया जाता रहा है। कहानीकारों के संवेदनात्मक ज्ञान के बौद्धिक विकास के साथ, जैसा हमने पहले संकेत किया, उनकी रचना-प्रक्रिया सूक्ष्म और जटिल होती गयी है। डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, डा० श्रीकृष्णलाल आदि के आधुनिक साहित्य सम्बन्धी शोध-प्रबन्धों का उद्देश्य तो साहित्य की अनेक विधाओं का ऐतिहासिक विकास प्रस्तुत करना रहा है, अतः उनसे यह आशा नहीं की जा सकती थी कि किसी एक विधा, और वह भी कहानी (जिसका विकास एक सीमित अवधि में ही हो पाया था) कि रचनात्मक समस्याओं के भीतर प्रवेश कर वे कहानी की रचना-प्रक्रिया के वैशिष्ट्य की व्याख्या करते। परवर्ती शोध-प्रबन्धों में भी यह कार्य नहीं के बराबर हुआ है। हां, यशपाल, अज्ञेय, जैनेन्द्र आदि कथाकारों तथा डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा, डा० लक्ष्मीनारायण लाल और डा० नामवर सिंह जैसे समीक्षकों ने कहानी का मूल्यांकन करते हुए आलोचना की प्रचलित सीमाओं को दूर करने का प्रयत्न किया है। निःसंदिग्ध रूप में इन आलोचकों और लेखकों की आलोचनात्मक मान्यताओं पर पश्चिमी कथाकारों और समीक्षकों का प्रभाव है। चेखव और मोपासाँ, हेनरी जेम्स और बर्जीनियां वुल्फ, आल्वेयर कामू और सार्त्र के नाम प्रायः समसामयिक कहानी-समीक्षाओं में दुहराए जा रहे हैं, यह स्थिति अकारण ही नहीं है। पर प्रायः हिन्दी-आलोचकों ने कहानी की रचना-प्रक्रिया के प्रति उदासीनता ही व्यक्त की है। कहानी के रूपात्मक विधान और कहानी की अनुभूति-प्रक्रिया में निरन्तर होनेवाले परिवर्तनों के प्रति उदासीनता उचित आलोचनात्मक मानदण्डों के विकास में बाधक हुई है। अपनी सीमाओं में प्रस्तुत प्रबन्ध इस बाधा की ओर इंगित करते हुए इसे दूर करने का विनम्र प्रयत्न करता है।

हिन्दी-कहानीकारों में प्रमुख रूप से श्री सच्चिदानन्द वात्स्यायन तथा श्री इलाचन्द्र जोशी से रचना-प्रक्रिया की समस्याओं के सम्बन्ध में जो बहुमूल्य सुझाव हमें प्राप्त हुए हैं, उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करना हमारा आवश्यक कर्तव्य हो जाता है। काशीनागरीप्रचारिणीसभा के अधिकारियों ने प्राचीन साहित्य तथा पत्र-पत्रिकायें देखने की जो सुविधा प्रदान की, उसके

प्रति हम अत्यन्त कृतज्ञ हैं। साथ ही, कतिपय विदेशी दूतावासों से सम्बद्ध पुस्तकालयों ने हमारी बड़ी सहायता की है। आदरणीय गुरुवर डा० गोपीनाथ तिवारी, जिनके निर्देशन में यह कार्य किया गया है, के प्रति हम विनत हैं जिन्होंने विचार और विश्लेषण की कठिनाइयों में निरन्तर हमारी सहायता की है और विषय की गहराई में प्रवेश करने की प्रेरणा दी है। अन्त में, डा० केसरीनारायण शुक्ल, अध्यक्ष हिन्दी-विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्रति हम आभार प्रकट करेंगे, जिनके सत्परामर्शों का लाभ भी हमें प्राप्त हुआ है।

रचना–प्रक्रिया की समस्या नयी और जटिल दोनों ही है। इस दृष्टि से हमारे प्रयत्न की अपनी सीमाएँ भी हैं। आगे जो कार्य इस दिशा में किये जायेंगे वे इस सीमा को दूर करेंगे—इस विश्वास के साथ यह विनम्र प्रयत्न हम अर्पित कर रहे हैं।

विषयसूची

शर्मा "कौशिक" - सुदर्शन - ज्वालादत्त शर्मा-भगवतीप्रसाद वाजपेयी-विश्वम्भरनाथ जिज्जा, जी. पी. श्रीवास्तव, राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, गोविन्दवल्लभ पंत आदि - प्रसाद की रचना - प्रक्रिया से प्रभावित कहानी-कार चतुरसेन शास्त्री - विनोदशंकर व्यास - रायकृष्णदास-स्वतन्त्र रचना-प्रक्रिया के कहानीकार-बेचन शर्मा "उग्र"

(घ) पूर्व प्रस्तुत अध्ययन के सन्दर्भ में- प्रस्तुत युग की कहानी का कलात्मक तत्वों की दृष्टि से मूल्यांकन - कथानक - कथानक और संघर्ष-बीज-कथानक में संघर्ष-बीज तथा अन्य प्रसंग-साम्य धर्म तथा विरोध धर्म-भूमिका पर आश्रित कथानक और लक्ष्यात्मक कथानक-कथानक निर्माण में सतर्कता की अपेक्षा - कथानक में घटना तत्व की नगण्यता -कथानकों में वैविध्य - कहानी- चरित्र-चित्रण की सीमाएं-चरित्र चित्रण - प्रेमचंद युग की कहानी में "चरित्र" - चरित्र-चित्रण की सीमाएं-महत्वपूर्ण चरित्र और साधारण चरित्र, वातावरण-सृष्टि - वातावरण-चित्रण— विशेष भाव-स्तर का प्रश्न-वातावरण चित्रण की सीमाएं—कहानी में कुतूहल और संघर्ष - संवेदनात्मक प्रभाव की एकोन्मुखता का प्रश्न-भाषा विधान—प्रेमचंद की भाषा-कुछ महत्वपूर्ण आदर्श तथा प्रेमचंद-युग की भाषा-सीमा- उद्देश्य।

(ङ) उपलब्धियां और सीमाएं-आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का स्वरूप और सीमाएं-व्यावहारिक मनोविज्ञान का उपयोग-कल्पना शक्ति का उपयोग नवीन आधुनिक दृष्टि एवं उसकी संभावनाओं का स्वरूप—आधुनिकता के बोध की प्रत्यक्षता में बाधक सीमाएं-क. निष्कर्ष ।

४ : प्रेमचन्दोत्तर युग की कहानी १४८—२०२

(क) प्रेमचन्दोत्तर युग की कहानी : आधुनिक बोध का विकास

(ख) विभिन्न प्रवृत्तियां- कहानी—लेखकों के कृतित्व में उनका विकास तथा प्रेरणाओं के स्रोत - मनोविश्लेषणवादी विचारकों की मान्यताएं - मनोविश्लेषण शास्त्र और मनोवैज्ञानिक रचनात्मक लेखन के प्रभाव- एक सन्देह—समाजवाद और साम्यवाद ।

(ग) प्रेमचन्दोतर युग के कुछ प्रमुख कहानीकार- रचना-प्रक्रिया के विशिष्टस्तर—जैनेन्द्रकुमार-अज्ञेय - इलाचन्द्र जोशी-यशपाल-उपेन्द्रनाथ

१

आधारभूमि

रचना–प्रक्रिया का प्रश्न

कोई भी रचना (क्रिएशन) एक सविशेष प्रक्रिया (प्रासेस) का फल होती है। प्राय: "रचना" या "कृति" का मूल्यांकन करते हुए "प्रक्रिया" का प्रश्न विचारणीय नहीं माना जाता और प्राय: रचना की समीक्षा करते हुए हम रचना के ही गुण-दोष की विवेचना करते हैं–क्योंकि वही हमारे समक्ष होती है और हमारा तात्कालिक प्रयोजन उससे ही सिद्ध होता है। प्रक्रिया रचना के पीछे होती है, अत: पाठक या आलोचक को वह निष्प्रयोजन प्रतीत होती है। हमारी दृष्टि में "रचना" का वास्तविक मूल्यांकन तभी संभव है, जब उसकी प्रक्रिया के अनुभूत्यात्मक स्तरों से समीक्षक का या सहृदय का परिचय हो। हम यह भी नहीं मानते कि प्रक्रिया रचना के पीछे ही होती है, रचना में नहीं। वस्तुत: वह रचना के पीछे भी होती है और रचना में भी। हमारी दृष्टि में प्रक्रिया एक विशेष अनुभव–व्यापार है, अत: कला और साहित्य के रचनात्मक विकास के साथ जैसे-जैसे अनुभूति के गहरे स्तर उद्घाटित होते जायेंगे, कृति में अनुभूति की प्रक्रिया की पहचान उतनी ही सरल और अर्थपूर्ण होती जाएगी। यही कारण है कि हर्बर्टरीड ने यह बात आग्रहपूर्वक कही है कि "आलोचना को न केवल कृति वरन् रचनात्मक सृजन की प्रक्रिया से भी सम्बन्वित होना चाहिए[1] तथा आर० ए० स्काट जेम्स ने साहित्य मात्र को एक क्रमिक प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया है[2]।

रचना–प्रक्रिया का मनोवैज्ञानिक आधार

यद्यपि आधुनिक मनस्तत्ववेत्ता स्व० श्री सी० जे० युंग का यह कथन सत्यता पर आधारित है कि "सर्जनात्मक प्रक्रिया" जो केवल प्रतिक्रिया से मूलत: भिन्न है, मानव-बुद्धि की पकड़ में संभवत: कभी भी नहीं आ सकेगी। उसके आविर्भाव की धूमिल अनुभूति ग्रहण करना तो संभव है, किन्तु पूर्णरूप से

१–कलेक्टेड एसेज इन लिट्रेरी क्रिटिसिज्म: हर्बर्टरीड: पृ० २१।

२–फिफ्टी इयर्स आफ इंग्लिश लिट्रेचर: आर० ए० स्काट जेम्स: पृ० १५१

उसे समझा नहीं जा सकता,[1] फिर भी दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक चिंतकों ने समय-समय पर उसकी व्याख्या की है। हेराक्लाइतस ने अपने "फ्रैग्मेन्ट्स" में, हेनरी बर्गसाँ ने अपने ग्रन्थ "क्रिएटिव इवोल्यूशन" में, डार्विन ने अपने "डिसेन्ट आफ मैन" में, हर्बर्ट स्पेन्सर ने अपने ग्रन्थ "प्रिन्सिपुल्स आफ साइकालोजी" में, जान ड्यूई ने "आर्ट ऐज एपीरियन्स" में–व्यापक अर्थ में प्रक्रिया के विभिन्न पक्षों और धरातलों का विश्लेषण प्रस्तुत किया है। डैविड ह्यूम, विलियम जेम्स, मैग्ड्गल, फ्रायड, एडलर, युंग, जाक मारिताँ तथा सर रसेल ब्रेन आदि ने प्रक्रिया की मनोवैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत करते हुए उसे सौन्दर्यबोध के विकास की प्रक्रिया के रूप में देखने के सम्बन्ध में विविध प्रकार के विचार प्रस्तुत किये हैं। इनके अतिरिक्त प्रख्यात विश्वकथाकारों ने (जिनमें जेम्स ज्वाएस, मार्सल प्रूस्त, हेनरी जेम्स, वर्जीनियां वुल्फ, रिचर्डसन, दास्ताएवस्की आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं) रचना–प्रक्रिया की गहरी प्रयोजनशीलता की व्याख्या अपने महत्वपूर्ण कृतित्व द्वारा की है। आधुनिक रचनाकारों की साहित्यिक उपलब्धियां बहुत कुछ "रचना–प्रक्रिया" के मनोवैज्ञानिक आधार पर आश्रित हैं।

मनोविश्लेषणवादियों ने आधुनिक कृतिकारों, विशेषतः कथाकारों की रचना–प्रक्रिया को इस सीमा तक प्रभावित किया है कि वह आभ्यन्तर मोड़ (इनवर्ड टर्निंग) आधुनिक कथा-साहित्य की अन्यतम विशेषता बन गया है, जो मानस के संश्लिष्ट अनुभूत्यात्मक प्रभाव को वहन करता है तथा जिसे "चेतना का प्रवाह" (स्ट्रीम आफ कान्शसनेस) कहा गया है। आधुनिक कथाकार जो यथार्थता के उपकरणों (मैटर्स आफ फैक्ट) के स्थान पर संवेगात्मक क्षणों (मोमेन्ट्स आफ फीलिंग) को व्यक्त करने की महत्वाकांक्षा से प्रेरित होकर रचनात्मक सृजन की भूमि पर उतरते हैं, मानों रचना की प्रक्रिया को समझने के लिए विशेष द्वार खोलते हैं। व्यक्ति की रचना से विचारों का घनिष्ठ सम्बन्ध बताते हुये विलियम जेम्स ने पहली बार कुछ महत्वपूर्ण तथ्य चेतन जगत की आन्तरिक प्रक्रिया की व्याख्या करते हुये प्रस्तुत किये थे[2]- और बताया था कि व्यक्ति की चेतना के भीतर विचार निरन्तर परिवर्तित होते रहते हैं। जेम्स का यह मत कि "अनुभव हमें प्रत्येक क्षण आन्दोलित रखते हैं और प्रत्येक परिस्थिति में अभिव्यक्त हमारी मानसिक प्रतिक्रिया हमारे भीतर निरन्तर

१–साहित्य और मनोविज्ञान : मू० ले० युंगे, अनु० आत्मन् : आलोचना: ७, पृ० २३

२–प्रिन्सिपुल्स आफ साइकालोजी : विलियम जेम्स, जिल्द १, पृ० २२५।

रचते हुये विश्व–अनुभवों का सम्यक् परिणाम होती है[1]–" रचना-प्रक्रिया का एक बुद्धिसंगत आधार प्रस्तुत करता है।

हेनरी बर्गसाँ ने प्रतिपादित किया है कि वह समस्त जीवनानुभव जिसे रचनाकार अपनी कृति में व्यक्त करता है, उसकी सहज अनुभूति (इन्ट्यूशन) का अंग होता है। बर्गसाँ ने इस सहज अनुभूति को एक प्रकार की बौद्धिक सहानुभूति (इन्टेलेक्चुएल सिम्पैथी) माना है[2]; और इस प्रकार, रचना-प्रक्रिया के मनोभौतिक आधार को समझने की एक दिशा दी है। एक लेखक के रचनात्मक अनुभव दूसरे लेखक के रचनात्मक अनुभव से भिन्न होते हैं; क्योंकि, प्रायः एक दूसरे के समकालीन होकर भी दो भिन्न-भिन्न लेखकों की जीवन-प्रक्रिया और उसकी चेतना भिन्न-भिन्न होती है। यही कारण है कि रचना का विश्लेषण करते हुए प्रायः हम रचनाकार की निजी अनुभूति की खोज भिन्न रूप में करते हैं और उसकी सामाजिक चेतना की पहचान भिन्न रूप में करते हैं। रचना अनुभव के तमाम स्तरों में अपने सम्पूर्ण रूप को प्राप्त करती है और यह सारी क्रिया इतने सूक्ष्म और अनायास रूप में होती है, कि हम इन्हें (इन अनुभव-स्तरों को) अधिक से अधिक सार्थक सन्दर्भ देने वाले बिम्बों के उपयोग द्वारा अभिव्यक्त करना चाहते हैं। इस संदर्भ में विचार करने से, बर्गसां का यह सन्देह किसी सीमा तक भ्रामक प्रतीत होता है कि भीतरी जीवन में चेतना के जो विविध रूप समाविष्ट हैं, बिम्बों के माध्यम से व्यक्त नहीं किये जा सकते[3]। वस्तुतः रचनाकार हमारी आभ्यंतर चेतना में घटित होने वाली समस्त जीवन–प्रक्रिया को बिम्बों के माध्यम से ही व्यक्त करता है। यह और

१–"एक्सपीरियन्स इज रिमोल्डिंग अस एव्री मोमेन्ट, एण्ड अवर मेन्टल रिऐक्शन आन एव्री गिवेन थिंग इज रियली ए रेजल्टेन्ट आफ अवर एक्सपीरियन्स आफ द होल वर्ल्ड अप्टू दैट डेट"।

—प्रिंसिपुल्स आफ सायकोलोजी, जिल्द १, पृ० २३४: विलियम जेम्स।

२–"बाई इन्ट्यूशन इज मेन्ट द काइन्ड आफ इन्टेलेक्चुएल सिम्पैथी बाई ह्विच वन प्लेसेज वन सेल्फ विदिन एन आबजेक्ट इन आर्डर टु क्वाइन्सा-इड विद ह्वाट इज यूनिक इन इट ऐण्ड कान्सिक्वेन्टली इनएक्सप्रेसिबुल"-

—ऐन इन्ट्रोडक्शन टु मेटाफिजिक्सः हेनरी बर्गसां: पृ० ६.

३–"द इनर लाइफ इज आल दिस ऐट वन्सः वैरायटी आफ क्वालिटीज,, कन्टिन्युटि आफ प्राग्रेस, ऐन्ड यूनिटी आफ डायरेक्शन इट कैन नाट बी रिप्रेजेन्टेड बाइ इमेजेज" ऐन इन्ट्रोडक्शन टु मेटाफिजिक्सः हेनरी बर्गसाँ : पृ० १३।

बात है कि सभी रचनाकारों को इस दिशा में समान सफलता न मिले। बर्गसां संभवतः यह संकेत करना चाहते हैं कि "बिम्बों" के बीच में आ जाने से "अनुभूति" परोक्ष हो जाती है, अपरोक्ष नहीं रह पाती।

मनोविश्लेषणवाद के प्रवर्तक फ्रायड ने रचना-प्रक्रिया को समझने का एक भिन्न और विलक्षण धरातल प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार समस्त रचनात्मक क्रिया के मूल में वे यौन प्रेरणाएं होती हैं जो किसी सामाजिक मर्यादा एवं व्यवधान के कारण तृप्त नहीं हो पातीं और इस प्रकार अपने उदात्तीकरण की प्रक्रिया में किसी रचनात्मक कृति के रूप में प्रतिफलित होती हैं[1]। फ्रायड का यह सिद्धान्त इच्छापूर्ति (विशफुलफिलमेन्ट) का सिद्धान्त कहा जाता है। इस दृष्टि से विचार किया जाय तो सारी रचनात्मक प्रक्रिया का विश्लेषण एक भिन्न स्तर पर करना होगा अर्थात् उन यौन प्रेरणाओं का अनुमान करना होगा जो किसी विशेष रचनात्मक कृति या कृतिकार के रचनात्मक मानस का निर्माण कर सकती होंगी। निःसंदिग्ध रूप से फ्रायड का उपर्युक्त मत एक प्रकार की अतिवादिता का परिचायक है। इसीलिये एडलर तथा युंग ने आगे चलकर एक भिन्न आधार की खोज की। एडलर के अनुसार, स्वत्वाग्रह (सेल्फ एसर्शन) की भावना ही किसी रचनात्मक कृति के मूल में होती है। तथा युंग का मत है कि रचनाकार मानव-बोध के क्षेत्र में उपलब्ध विविध प्रकार की सामग्री का उपयोग करता है। इनमें भावात्मक आघात से लेकर प्रेम की अनुभूति तक, सभी प्रकार के अनुभव होते हैं जिनसे मानव का चेतन-जीवन निर्मित होता है। युंग के अनुसार, रचनाकार का व्यक्तित्व अनेक विरोधी उपादानों का सम्मिश्रण होता है। एक ओर वह निजी जीवन के भोक्ता साधारण व्यक्ति के रूप में होता है, दूसरी ओर वह एक निर्वैयक्तिक प्रक्रियामात्र होता है[2]।

१—"फार सबलिमेशन, अनैदर टर्म क्वाएन्ड बाइ फ्रायड ए प्रासेस आफ डिप्लेक्टिंग लिबिडो आर सेक्सुएल मोटिव ऐक्टिविटी फ्राम ह्यूमन आव्जेक्टस टु न्यू आव्जेक्ट्स आफ ए नान-सेक्सुएल, सोशली वैलुएबुल नेचर".

—भूमिका: डा० ए० ए० ब्रिल: द बेसिक टीचिंग्स आफ सिगमंड फ्रायड: पृ० १८-१९।

२—"एव्री क्रिएटिव पर्सन इज़ ए डुएलिटी आर ए सिन्थेसिस आफ कान्ट्रडिक्ट्री एप्टिट्यूड्स आन द वन साइड ही इज ए ह्यूमन बीइंग विद ए पर्सनल लाइफ, ह्वाइल आन द अदर साइड ही इज़ ऐन इम्पर्सनल क्रिएटिव

रचना-प्रक्रिया के साहित्यिक आधार के सम्बन्ध में कुछ महत्वपूर्ण विचार–

रचनात्मक प्रक्रिया को रचनाकार के सृजनात्मक क्षणों का सामंजस्य स्वीकार करने वाले प्रख्यात समीक्षक हर्बर्टरीड ने व्यक्तित्व के आत्मनिष्ट स्वभाव (सब्जेक्टिव नेचर) के क्षेत्र को[1] रचना-प्रक्रिया के अध्ययन का मौलिक आधार माना है। उनके अनुसार रचना की व्याख्या करते समय अनिवार्य रूप में रचनाकार के मानसिक कर्म और उसके साधन का विचार करना चाहिए।[2] रीड ने साभिप्राय रूप में परिस्थितियों की जागरूकता (अवेयरनेस) को चेतना से भिन्न माना है। "चेतना" रीड के लिए एक विशेष "प्रक्रिया" है, जो किसी परिणति पर ही पुनः अनुभूति का विषय बनती है।[3] रीड के मतानुसार कलाकृति मन के सभी प्रदेशों से सम्पर्कयुक्त होती है और वह विशेष स्फूर्ति अपरिमेयता और रहस्यपूर्ण शक्ति उस मूल प्रकृत्यात्मक संवेग (इड) से ग्रहण करती है, जिसे हम रचनात्मक प्रेरणा का मूल स्रोत मानते हैं। प्रत्यक्ष है कि रीड की मान्यताएं मनोविश्लेषणवादी दार्शनिकों की मान्यताओं के ही समीप हैं।

कलात्मक चेतना की अनुभूति के प्रश्न पर विचार करते हुए सभी ने माना है कि यह अनुभूति सामान्य बोध या ज्ञान से आगे की अनुभूति है। जान ड्यूई ने इस विशेष अनुभूति की व्याख्या करते हुए संकेत किया है कि

प्रासेस"। —लिट्रेचर ऐन्ड साइकालोजी : द क्रिएटिव प्रासेस : सी० जे० युंग ए सिम्पोजियम : (वेस्टर गिलेलिन) पृ० २२०।

१–"कलेक्टेड ऐसेज इन लिट्रेरी क्रिटिसिज्म : हर्बर्ट रीड : पृ० २१।

२–"आइ बिलीव दैट क्रिटिसिज्म मस्ट कन्सर्न इटसेल्फ, नाट वोन्ली विद द वर्क आफ़ आर्ट इन इटसेल्फ, बट आल्सो विद द प्रासेस आफ राइटिंग, एण्ड विद राइटर्स' स्टेट आफ़ माइन्ड ह्वेन इन्स्पायर्ड– दैट इज टु से क्रिटिसिज्म मस्ट कन्सर्न इटसेल्फ नाट वोन्ली विद द फिनिश्ड वर्क आफ़ आर्ट, बट आल्सो विद द वर्कमैन, हिज़ मेन्टल ऐक्टिविटी एण्ड हिज़ टूल्स". —कलेक्टेड एसेज़ इन लिट्रेरी क्रिटिसिज्म : हर्बर्ट रीड, पृ० २३।

३–"बट कान्शसनेस, ह्वेदर रियल आर इन्ड्यूस्ड, इज़ नाट ए सिम्पुल फैक्ट : इट इज़ रादर ए प्रोसेस आर स्टेट ह्विच इज़ वोन्ली रियलाइज्ड अपान द कम्प्लीशन आफ़ सम डिफिनिट रिद्म आर पैटर्न इन दिस इट डिफर्स फ्राम अवेयरनेस, ह्विच इज़ ऐन इनकम्प्लीट स्टेट आफ़ सेन्सिबिलिटी"। —वही- पृ० ३५७।

यह एक प्रकार की सौन्दर्यानुभूति है और इसे वहन करने वाली कला-कृतियों की रचना और अनुभाव्यता दोनों ही स्थितियों में बोध का रूपान्तर हो जाता है और वह अबौद्धिक तत्वों में घुल मिल जाता है।[1]

बोध के रूपान्तर और उसकी अनुभूत्यात्मक परिणति की प्रक्रिया पर ध्यान देने से इसकी कल्पना सहज ही की जा सकती है कि रचनात्मक कृति पूर्णतः रूपायित होने और अंकित होने से पहले ही रचनाकार के मन में विद्यमान रहती है। आधुनिक विचारक सर रसेल ब्रेन ने अनुभूति-प्रक्रिया का विश्लेषण करते हुए संकेत किया है कि किस प्रकार अनुभूतियों के प्रत्यय विचारों से सम्बद्ध होते हैं और किस प्रकार वैचारिक अनुभूति कला-कृति में रूपांतरित होने से पूर्व सर्जक की मानसिक चेतना का अंग होती है।[2]

आधुनिक समीक्षक लियोन इडेल ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ "द साइकालाजिकल नावेल" में यह संकेत करते हुए कि किस प्रकार लेखक अपनी आन्तरिक समस्याओं का साक्षात्कार करते हुए अपने रचनात्मक अनुभवों की रचना करते हैं, बताया है कि रचना की प्रक्रिया में रचनाकार वाह्य यथार्थ से हटकर आभ्यंतर यथार्थ में प्रवेश करने के लिए किसी अर्थ में आत्मनिष्ट

१—"ऐस्थेटिक एक्सपीरिएन्स इज एक्सपीरियन्स इन इट्स इंटिग्रीटी ... आल द एलिमेन्ट्स आफ़ अवर बीइंग...आर मर्ज्ड इन ऐस्थेटिक एक्सपीरियन्स ...इन बोथ प्रोडक्शन एण्ड इन्ज्वाएड पर्सन वर्क्स आफ आर्ट, नालेज इज ट्रान्सफार्म्ड, इट बिकम्स समथिंग मोर दैन नालेज बिकाज़ इट इज़ मर्ज्ड विद नान-इन्टेलेक्चुअल एलिमेन्ट्स"। —आर्ट ऐज एक्सपीरियन्स : जान ड्यूई : पृ० २७४-२९०।

२—"ए वर्क आफ आर्ट एक्ज़िस्ट्स प्राइमरिली इन द माइन्ड आफ द आर्टिस्ट, द सेन्स— आफ ह्विच इट इज़ कन्सट्रक्टेड एक्जिस्ट्स इन हिज माइन्ड, द फीलिंग्स विद ह्विच दे आर असोशिएटेड इन हिज माइन्ड आल्सो। इन सो फार ऐज दीज फीलिंग्स आर लिंक्ड विद आइडियाज, दीज आइडियाज अगेन आर इन हिज माइन्ड। द वर्क आफ आर्ट इन द माइन्ड आफ द आर्टिस्ट देयरफोर इज एप्रिहेन्सन, टु यूज ए टर्म आफ ह्वाइटहेड्स, आफ सेन्स-डाटा एण्ड फिलिंग्ज विद आर विदाउट आइडियाज, ऐण्ड इट मेक्स नो डिफरेन्स ह्वेदर इट इज फुली इमैजिन्ड ऐज एकन्सेप्शन बिफोर द आर्टिस्ट बिगिन्स वर्क आन द फिजिकल आब्जेक्ट इन ह्विच हिज कन्सेप्शन इज टु बी इम्बाडीड आर ह्वेदर द कन्सेप्शन डेवलप्स ग्रेजुएली ह्वाइल ही वर्क्स — दे नेचर आफ एक्सपीरियन्स : सर रसेल ब्रेन : पृ० ५०।

हो जाते हैं। इस "कृति" में इडेल ने प्रकारान्तर से रचना-प्रक्रिया से सम्बद्ध कुछ बहुत ही महत्वपूर्ण प्रश्नों को उठाना चाहा है।[1] और इस प्रकार अपनी समीक्षा-बुद्धि का उपयोग सही दिशा में किया है।

आधुनिक लेखकों ने अपनी भूमिकाओं और व्याख्यात्मक टिप्पणियों में रचना-प्रक्रिया के प्रश्न को उठाते हुए वस्तुओं के पीछे निहित यथार्थ को समझने का प्रयत्न किया है और जीवन को ही एक प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया है।[2] आधुनिक लेखन में रचना-प्रक्रिया के प्रति अतिशय जागरूकता एक महत्वपूर्ण घटना है। आकस्मिक नहीं है कि अनेक प्रतिभाशाली कथाकारों और कवियों की कृतियां रचना-प्रक्रिया की भूमिकाओं के रूप में है। यह स्थिति इसलिए नहीं है कि किसी अज्ञात शक्ति या संसार ने अन्य विषय लेखकों से छीन लिए हैं बल्कि इसलिए कि आभ्यंतर प्रयाण की गहरी आवश्यकताओं ने आधुनिक रचनाकारों को एक आंतरिक विवशता की-सी स्थिति में ला दिया है। हेनरी जेम्स के सम्बन्ध में जान हालोवे का यह मत, कि उसकी कहानियां कहानी की रचना-प्रक्रिया के सम्बन्ध में इसलिए हैं कि प्रत्यक्ष जगत ने उसे वह सच्चा और सम्पन्न जीवन नहीं दिया जिसकी उसे आवश्यकता थी,[3] अर्द्ध सत्य ही है। युक्तिसंगत अधार पर विचार करने से लगेगा कि आधुनिक रचनाकारों ने एक ऐतिहासिक आवश्यकता का अनुभव करते हुए रचना को प्रक्रिया के रूप में देखने का आग्रह किया है।

साहित्य में यथार्थ की प्रतिष्ठा पर बल देने वाले विचारक भी जब कलात्मक विशेषताओं को कलाकार द्वारा अनुभूत, सामाजिक जीवन का प्रतिफल मानते हैं, तो मानों रचना-प्रक्रिया की प्रयोजनशीलता पर ही बल देते हैं।[4] जार्ज ल्यूकाक्स इस वर्ग के प्रख्यात समीक्षक हैं, जिनकी दृष्टि में

१—द साइकॉलोजिकल नावेल : लियोन इडेल : पृ० ११।

२—"द माडर्न राइटर एण्ड द साइन्टिस्ट बोथ ऐग्री ऐटलीस्ट टु द एक्सटेन्ट दैट बोथ सी लाइफ ऐज प्रासेस एण्ड फ्लक्स, एण्ड बोथ ऐडमिट ए डिग्री आफ पर्सनल च्वाएस इन द हैन्डलिंग आफ एक्सपीरियन्स" —द सोशल एण्ड इन्टेलेक्चुएल बैकग्राउन्ड : द माडर्न एज : जी०एच० बैन्टाक : सम्पा० बोरिस फोर्ड, पृ० ४७-४८।

३—"द वन आफ्टर अनैदर आफ हिज स्टोरीज इज एबाउट स्टोरी राइटिंग इट सेल्फइज ऐन इन्डेक्स, परहैप्स, दैट द वर्ल्ड इन ह्विच ही मूव्ड डिड नाट गिव हिम ऐज़ रिच ए फील्ड आफ़ रियल लाइफ ऐज़ ही क्रैव्ड फार"। —द माडर्न ऐज : सं० बोरिस फोर्ड : पृ० ५५।

४—"द इनर ट्रुथ आफ द वर्क्स आफ द ग्रेट रियलिस्ट्स रेस्ट्स आन द फैक्ट

किसी साहित्यिक कृति की विशेष कलात्मक उपलब्धि रचनाकार के आभ्यंतर अनुभवों द्वारा भावित सामाजिक प्रक्रिया की सम्पूर्ण परिकल्पना पर निर्भर करती है।[1]

रचनात्मक श्रेष्ठता रचना की प्रक्रिया पर निर्भर होती है, इस सम्बन्ध में विचारकों के मन में कोई असहमति या सन्देह नहीं है। फावोलिन ने जेम्स ज्वाएस और वर्जीनियां वुल्फ की रचनात्मक प्रक्रिया की तुलनात्मक व्याख्या करते हुए संकेत किया है कि, क्योंकि (क) जेम्स ज्वाएस वुल्फ की तुलना में अधिक बौद्धिक था, (ख) जेम्स ज्वाएस आत्मलीन (सेल्फ इन्वाल्वड) था, और बर्जीनियाँ वुल्फ आत्मग्रस्त (सेल्फ इन्टैगिल्ड) थीं, (ग) ज्वाएस को इसकी चेतना थी कि वह अपने लिये "विषय" स्वयं है, और बर्जीनियां वुल्फ को इसका स्पष्ट अभिज्ञान नहीं था कि वह किस सीमा तक अपने लिये "विषय" स्वयं है, (घ) ज्वाएस कथाकार के रूप में शिल्प के प्रति अपनी मौलिक मान्यताओं को स्वीकार करता था, जिसमें प्रमुख सत्य था कि कथाकार चाहे तो अपनी मनः स्थिति, प्रकृति, राजनैतिक पूर्वाग्रह आदि में रुचि रख सकता है, पर पाठक की रुचि अनिवार्यतः चरित्र, वस्तुस्थिति और दृश्यवर्णन में होती है। वह चाहता है कि इन सब दुरूह संकेतों से कथाकार के विचार उस तक सम्प्रेषित हो सकें और बर्जीनियां वुल्फ की दृष्टि में इन सब सीमाओं की लेखक के लिये कोई गहरी अपेक्षा नहीं थी......अतः, ज्वाएस वुल्फ की तुलना में अधिक श्रेष्ठ कथाकार है।[2]

रचना की प्रक्रिया एक सजीव क्रमिक प्रक्रिया है, इसमें सन्देह नहीं। जिस रचनात्मक अनुभव को रचनाकर किसी विशेष "क्षण" में उपलब्ध करता है, वह भी एक लम्बी प्रक्रिया का परिणाम होता है। इसी दृष्टि के अर्नेस्ट ए० बेकर ने कैथरीन मेन्सफील्ड की रचना–प्रक्रिया की मीमांसा करते हुए प्रतिपादित किया है कि रचानात्क प्रक्रिया का सामंजस्य वस्तु और अर्थ के सम्पूर्ण आभ्यंतर संघटन में ही प्रत्यक्ष होता है। इस स्थिति में प्रायः रूप की तुलना में लय को रचना का आदर्श मान लिया जाता है–संगीत के लय की

दैट दे एराइज फ्राम लाइफ इटसेल्फ, दैट देयर आर्टिस्टिक कैरेक्टरिस्टिक्स आर रिफलैक्शन्स आफ द सोशल स्ट्रक्चर आफ लाइफ लिव्ड बाई द आर्टिस्ट हिमसेल्फ"। –स्टडीज इन योरोपियन रियलिज्म – जार्ज ल्यूकाक्स: पृ० १४८।

१–वही– पृ० १४७-४८।

२–न्यू वर्ल्ड राइटिंग : टेन्थ मेन्टर सेलेक्शन : पृ० १७५।

भाँति, जिसकी अनुभूति प्राप्त की जा सकती है, पर जिसकी व्याख्या नहीं की जा सकती। यह स्पष्ट विभ्रमरहित परिग्राही (रचनात्मक) दृष्टि उस कला के समानान्तर होती है जिसके द्वारा रचना में अनुभूतियों का सहज, स्वतःस्फूर्त और तीव्र प्रस्तुतीकरण संभव हो पाता है। पर रचना की यह प्रतीयमान सुकरता और स्वयंस्फूर्ति एक प्रदीर्घ विचारमग्नता, व्यवस्था, चयन तथा संयम का फल होती है।[1] बैकर के अनुसार रचना-प्रक्रिया का यह आन्तरिक संघर्ष तब तक होता रहता है जब तक विशुद्ध अपरिहार्य तत्व के रूप में "रचना" शेष रह पाती है।

रचना-प्रक्रिया इस दृष्टि से एक आत्म-परिष्कार की प्रक्रिया है-जिसके विभिन्न संदर्भों पर ध्यान देने से सहज ही जाना जा सकता है कि रचना-प्रक्रिया के दो प्रमुख स्तर हैं-

एक-जहां लेखक रचना करता है अर्थात् रचना का निर्माण करता है।

दूसरा-जब लेखक रचना की समाप्ति के बिन्दु पर पृथक् हो जाता है, केवल कृति रह जाती है और पाठक रह जाता है।

यहीं कुछ अन्य महत्वपूर्ण प्रश्न विचारणीय समझे जा सकते हैं-

(क) "रचना" में से पाठक क्या पाता है ?

(ख) रचनाकार अर्थात् भोक्ता के अनुभव का प्रति-सम्वेदन क्या पाठक के मन में अवतरित होता है ?

(ग) अथवा, क्या वह अनुभव नये सिरे से, पाठक के मन में पुनः रचित होता है।

(घ) अथवा, पाठक के मन में "रचना" के पाठ से जो अनुभव जाग्रत होता है, वह क्या सर्वथा भिन्न होता है ?

१-"द सिमेट्री इज़ आल इन्टर्नल, पर्फेक्ट क्वान्सिडेन्स आफ़ मैटर ऐण्ड मीनिंग। आफ़ेन द फ़ार्म इज़ लेस पैटर्न दैन रिद्म, लाइक दैट आफ़ म्यूज़िक, बट फ़ेल्ट रादर दैन डिफ़ाइनेबुल। फ़ार दिस क्लीयर अनएरिंग, काम्प्रिहेन्सिव विज़न इज़ मैच्ड बाइ आर्ट विद ह्विच द रेज़ल्ट्स आर प्रजेन्टेड इन ए वे दैट सीम्स सिम्पुल ऐन्ड स्पान्टेनियस, ए स्विफ्ट रिप्रोडक्शन आफ़ आल दैट हैज बीन सीन ऐन्ड फेल्ट। बट दिस अपरेन्ट फैसिलिटी ऐन्ड स्पान्टेनिटी इज़ द फ़ाइनल रेज़ल्ट आफ़ लांग प्रासेस आफ ब्रूडिंग, अरेन्जिग, सार्टिंग आउट एन्ड सप्रेशन, टिल नथिंग रिमेन्स बट द बेयर एसेन्शियल्स"—द हिस्ट्री आफ द इंग्लिश नावेल, जिल्द १०, पृ० २४०: अर्नेस्ट ए० बेकर :

आधुनिक हिन्दी कवि एवं कथाकार अज्ञेय के अनुसार रचना-प्रक्रिया विषयक उत्सुकता या जागरूकता (जो उपरिनिर्दिष्ट प्रश्नों को नये आधार पर उठाती है) वैज्ञानिक अध्ययन की नयी आवश्यकताओं का परिणाम है।[1] हमारी दृष्टि में यह आवश्यकता वैज्ञानिक अध्ययन की तात्कालिक आवश्यकता नहीं है, यह तो आन्तरिक चेतना के रहस्य-सत्यों के साक्षात्कार की ऐतिहासिक आवश्यकता है, जिसका अनुभव पहले के रसवादी आचार्यों ने अपने ढंग से किया था, रसानुभूति के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन आ जाने से, आज इन प्रश्नों को नयी भूमिका देने की आवश्यकता का अनुभव किया जा रहा है।

आधुनिक पंजाबी कहानी लेखिका अमृता प्रीतम ने साभिप्राय ही लिखा है : "किसी वस्तु का रचना के साथ उतना ही सम्बन्ध होता है जितना सूर्य की उस किरण का एक बहते पानी के साथ-जो क्षण भर के लिए पानी को स्वर्णमय बना जाय[2]।" कहना अप्रासंगिक न होगा, कि वस्तु नहीं वस्तु के साथ कृतिकार का रागात्मक सम्बन्ध ही रचनात्मक सृजन के मूल में होता है। यही कारण है कि वस्तु को वर्तमान की तात्कालिक उपज मानकर आधुनिक कृतिकार श्रेष्ठ रचनात्मक सृष्टि के लिए वर्तमान से किसी न किसी रूप में पलायन की गहरी आवश्यकता का अनुभव करते हैं।[3]

हर्बर्ट रीड ने उचित ही संकेत किया है कि "रचना" का मूल्यांकन करते समय हमें दो मनोवैज्ञानिक स्थितियों पर रुककर विचार करना पड़ता है : एक, वह जो रचनाकार के निजी मानस में विद्यमान रहती है तथा सीधे रचनात्मक कर्म को प्रभावित करती है तथा दूसरी,वह, जो समाज के मानस का अंग होती है जो रचना के बाह्य उपलक्षणों, शिल्प, पद्धति आदि को प्रभावित करती है।[4] निश्चय ही साहित्यिक कृति की रचना–प्रक्रिया पर विचार करते हुए हम साहित्यिक श्रेष्ठता को ही प्रमुखता देते हैं,[5] पर उपर्युक्त

१–"वैज्ञानिक अन्वेषण बुद्धि जब भौतिक तत्वों से अधिक क्रियाओं की ओर मुड़ी तब उसका मानव मन की और उसके गुणों–शक्तियों की पड़ताल करने लगना स्वाभाविक ही था।" "प्रतिभा" से "प्रक्रिया" तक हमारी प्रगति विज्ञान की प्रगति के साथ बंधी हुई है।" : रचना प्रक्रिया : कुछ विचार : अज्ञेय : साप्ताहिक हिन्दुस्तान २ जुलाई, १९६१।

२–भीतर की चिनगारी : अमृता प्रीतम : ज्ञानोदय : फरवरी १९६०, पृ० १२।

३–सीढ़ियों पर धूप में : रघुवीरसहाय : पृ० १९२–९३।

४–आर्ट एन्ड सोसायटी : हर्बर्ट रीड : पृ० ८३।

५–क्रिटिकल अप्राचेज़ टु लिट्रेचर : डेविड डैचेस : पृ० ३४१।

मनोवैज्ञानिक स्थितियों पर विचार करने से साहित्यिक श्रेष्ठता के मूल्यांकन में समर्थ उपयुक्त निकष का निर्माण अधिक सरल हो जाता है।

ख–रचना–प्रक्रिया का प्रश्न और कहानी

कहानी और मानव प्रवृत्ति

कहानी कहना और सुनना मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। अपनी भावना और अपने संवेग को सम्प्रेषित कर सकने की क्षमता जब से मनुष्य में आयी, वह कहानियां कहता और सुनता रहा है। इस प्रकार कहानी एक ऐसे माध्यम या सूत्र के रूप में रही है जो एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति से जोड़ता है, सम्बद्ध करता है। ऐसे सशक्त माध्यम के रूप में कहानी मानव प्रकृति में निहित प्रेरणाओं के अन्तर्विरोध की अभिव्यक्ति कर सकी है, तो इसे उसकी सार्थक उपलब्धि मानना चाहिए।

कहानी घटना का पर्याय नहीं है। अपने साधारण अर्थ में वह घटना तक ही सीमित जान पड़ती है। पर साहित्यिक विधा के रूप में वह मानव चेतना की अभिव्यक्ति के लिए उतनी ही सशक्त माध्यम है, जितनी कविता तथा चित्रकला आदि। यही कारण है कि सभ्यता के विकास के साथ जैसे जैसे मानव–चेतना जटिल होती गयी है,[1] साहित्यिक विधा के रूप में स्वीकृति कहानी अपने रूप-विधान में परिष्कार करती गयी है और चेतना के विविध भीतरी स्तरों के उद्‌घाटन में सहायक हुई है।

रचना–प्रक्रिया की चेतना : आधुनिकता से व्युत्पन्न

कहानी की रचना–प्रक्रिया का प्रश्न तभी उपस्थित होता है जब हम उसे आधुनिक साहित्यिक माध्यम के रूप में जटिल मानव चेतना की आँतरिक समस्याओं की अभिव्यक्ति का साधन बनते हुये देखते हैं। कहानी की प्राचीन परम्परा को देखने से उसकी रचनात्मक प्रक्रिया के सूत्रों का अनुमान करना तो सरल है, पर वास्तविकता यह है कि रचना–प्रक्रिया की चेतना भी आधुनिकता से व्युत्पन्न है, इसीलिए आधुनिक कहानी की भांति प्राचीन कहानी में रचना–प्रक्रिया के सूक्ष्म स्तरों का उपयोग कहीं दिखाई नहीं पड़ता।

१–"ह्यूमन कान्शसनेस इज ए काम्पलिकेटेड थिंग इट हैज बीन कम्पेयर्ड टु ए वास्ट सी इन ह्विच द ग्लिटरिंग सर्फेस रिप्रेजेन्ट्स ह्वाट दी कामनली काल द कान्शस माइन्ड ह्वाइल द अनसीन ऐन्ड मच लार्जर बाडी आफ वाटर बिनीथ रिप्रेजेन्ट्स द अनकान्शस"।–साइकोएनालिसिस फार नार्मल पिपुल : कास्टर : पृ० ६।

कहानी के कुछ महत्वपूर्ण प्राचीन पर्याय

प्राचीन अर्थ

कथा

कथ् धातु से व्युत्पन्न "कथा" शब्द का साधारण अर्थ है : "वह जो कहा जाय"। निःसंदिग्ध रूप से कहने में सुनने की संभाव्यता निहित है। "कथा" शब्द का व्यवहार किसी ऐसी निश्चित घटना के लिए किया जाता रहा है, जिसका परिणाम भी निश्चित हो।

अमरकोश में "कथा" को ऐसा साहित्य-रूप स्वीकार किया गया है जिसमें "कल्पना-तत्व" की प्रधानता हो।[1] यहां कल्पना का अर्थ रचना माना गया है।

दण्डी ने अपने ग्रन्थ "काव्यादर्श" में कथा और आख्यायिका को एक ही माना है। उनके अनुसार इनमें केवल नामभेद है।[2] "साहित्यदर्पण" में श्री विश्वनाथ कविराज ने गद्य काव्य के अवान्तर भेदों में "कथा" और" आख्या-यिका" इन साहित्यरूपों की व्याख्या की है। उन्होंने गद्य काव्य के उस प्रभेद को "कथा" की संज्ञा दी है जिसमें सरस इतिवृत्त की रचना होती है।[3] इसी सन्दर्भ में उन्होंने बताया है कि इस "कथा" की विशेषता है, कि इसमें कहीं-कहीं "आर्या" छन्द की रचना होती है और कहीं "वक्त्र" और "अपवक्त्र" छन्दों की। इसके प्रारम्भ में नमस्कारात्मक "मङ्गल" किया जाता है और खल-निंदा तथा सज्जन-प्रशंसा सम्बन्धी पक्ष भी उपन्यस्त रहा करते हैं।[4] श्री विश्वनाथ कविराज के अनुसार "कादम्बरी" कथा है।

ध्वन्यालोककार श्री आनन्दवर्धनाचार्य ने "कथा" के सम्बन्ध में लिखा है कि उसमें गद्य की संगठित रचना की बहुलता होने पर भी बन्धवृत्ति रसगत

१—"प्रबन्धकल्पना कथा" : अमरकोश : १।६।६

२—"तत् कथा ऽऽ ख्यायिकेत्येकाजातिः संज्ञा द्वयाङ्किता।
अत्रैवान्तर्भविष्यन्ति शेषाश्चाख्यानजातयः ॥ २८ ॥
—काव्यादर्शः प्रथम परिच्छेद।

३—"कथायां सरसं वस्तुगद्यैरेव विनिर्मितम् ॥ ३३२ ॥
—साहित्यदर्पणः षष्ठ परिच्छेद।

४—क्वचिदत्र भवेदार्या क्वचिद्वक्त्रापवक्त्रके।
आदौ पद्यैर्नमस्कारः खलादेर्वृत्त कीर्तनम् ॥ ३३३ ॥
साहित्यदर्पणः षष्ठ परिच्छेद।

औचित्य के अनुसार ही संघटन का निर्माण होना चाहिए।[1]

आख्यायिका

अमरकोश के अनुसार, जिसका विषय ज्ञात हो, सत्य हो, आख्यायिका है।[2] "आख्यायिका" का परिचय देते हुए साहित्यदर्पणकार श्री विश्वनाथ ने लिखा है कि "आख्यायिका" में कवि अपने वंश का अनुकीर्तन करता है और यत्र-तत्र अन्य कवियों की भी चर्चा किया करता है। इसमें जहाँ–तहां पद्य–सूक्तियाँ भी रहा करती हैं। इसके कथांशों का व्यवच्छेद "आश्वास" नाम से निर्दिष्ट किया जाया करता है। इसमें "आश्वास" के प्रारंभ में आर्या वक्त्र, उपवक्त्र छन्दों में से किसी एक के द्वारा किसी वर्णन-विषय के बहाने "वर्णनीय" विषय की सूचना भी दी जाया करती है।[3] उदाहरणतः 'हर्षचरित्' को श्री विश्वनाथ ने "आख्यायिका" की संज्ञा दी है।

ध्वन्यालोककार ने "आख्यायिका" की रूपविधि की चर्चा करते हुए अधिकतर मध्यमसमास और दीर्घसामासात्मक संघटन के उपयोग पर बल दिया है।[4]

गाथा, आख्यान, वृत्तान्त

प्राचीन व्याख्याओं को देखने से ज्ञात होता है कि गाथा, वृत्तान्त, आख्यान आदि पर्याय, उपर्युक्त पर्यायों में प्रायः अन्तर्भुक्त मान लिए गए हैं। अमरकोश में आख्यान के लक्षण के रूप में आख्यायिका की परिभाषा दी गयी है।[5] तथा "वृत्तान्त" उसे कहा गया है, जिसके वृत्त का अन्त हो गया

१–"कथायां तु विकट बन्ध प्राचुर्येऽपि गद्यस्य, रस बन्धोक्तमौचित्य मेवानुसर्तव्यम्–ध्वन्यालोक : तृतीय उद्योत : आनंद वर्धनाचार्य।

२–"आख्यायिकोपलब्धार्थो" : अमरकोश : १ । ६ । ५
(ज्ञात सत्यार्थ भूतायाः कथायाः। भानुजि दीक्षित।)

३–"आख्यायिका कथावत्स्यात्कवेर्वंशानुकीर्तनम्।
अस्यामन्यकवीनां च वृत्तं "पद्यं क्वचित्क्वचित्॥
कथांशानां व्यवच्छेद आश्वास इतिवध्यते।
आर्यावक्त्रापवक्त्राणां छन्दसा येन केनचित्॥ ३३४-३३५॥
—साहित्यदर्पण— । षष्ठ परिच्छेद।

४—"आख्यायिकायां तु मून्ना माध्यमसमासा-दीर्घसमासे एवं संघटने।"
—ध्वन्यालोक : तृ० उद्योत : आनन्दवर्धनाचार्य।

५–"अमर कोश" : १ । ६ । "

हो।[1] यहां "वृत्त" शब्द" लोकवृत्त" के अर्थ में ही व्यवहृत हुआ है।[2] लोकभाषा में "गाथा" शब्द का अर्थ कथा या जीवन वृत्तान्त ही माना जाता है।

उपर्युक्त पर्यायों के सम्बन्ध में नए सन्दर्भ में विचार

जब हम कहानी के वर्तमान रूप को देखते हुए उसके रचनात्मक संस्कारों पर, उसकी रचनात्मक प्रक्रिया पर विचार करते हैं तो आज कहानी अपने अत्यन्त प्राचीन रूपों से बिल्कुल भिन्न जान पड़ती है जिन्हें ध्यान में रखकर प्राचीन आचार्यों ने उनकी परिभाषायें दी थीं या उनके उद्दिष्ट संस्कार की सीमाएं निर्धारित की थीं। खड़ी बोली गद्य की आधुनिक विद्या के रूप में विकसित कहानी को बहुत पहले प्रेमचन्द ने उसके प्राचीन रूपों से अलग कर लिया था[3] और उनसे भी पूर्व–युग के कहानीकारों ने कहानी के नवीन रचनात्मक माध्यम के विकास में अपनी सीमाओं के भीतर योग दिया था।

एडगर एलेन पो ने "कहानी" की रूपविधि की व्याख्या करते हुए जब उसकी सीमाएं निर्धारित की थीं तो कहानी की नयी आवश्यकताओं को ही ध्यान में रखा था। पो ने कथा साहित्य के उस "प्रकार" या विधा को कहानी की संज्ञा दी थी, जिसमें एक केन्द्रीय वस्तु हो, जो एक बैठक में पढ़ी जा सके, जो मौलिक हो, जो उत्तेजित या प्रभावित कर सकने की क्षमता से युक्त हो और जिसमें प्रभावान्विति की विशेषता हो।[4] कहानी की रचनाधर्मिता की

१– वृत्तान्तस्यात् प्रकरणे प्रकारेकात्स्र्न्यवार्तयो : अमर कोश ३ । ३ । ६३

२– वार्ता प्रवृत्तिवृत्तान्त उदन्त : स्यात् : अमरकोश- १ । ६ । ७ ।

("वृत्ता : अनुवर्तनीय : गवेषणीय : अन्त : समाप्ति : यस्य"।

—भानुजि दीक्षित)

३– (क) "आजकल आख्यायिका का अर्थ बहुत व्यापक हो गया है। उसमें प्रेम की कहानियां, जासूसी किस्से, भ्रमण वृत्तान्त, अद्भुत घटना, विज्ञान की बातें, यहां तक कि मित्रों की गप-शप भी शामिल कर दी जाती हैं।"

—साहित्य का उद्देश्य : प्रेमचन्द : पृ० ३५ ।

(ख) वर्तमान आख्यायिका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और जीवन के यथार्थ और स्वाभाविक चित्रण को अपना ध्येय समझती है।—वही पृ० ४१ ।

४– "इट इज़ नाट हार्ड टु स्टेट ह्वाट पो मेन्ट बाइ ए गुड शार्ट स्टोरी : इट इज़ ए पीस आफ़ फ़िक्शन, डीलिंग विद ए सिंगिल इन्सिडेन्ट मेटीरियल आर स्पिरिचुएल, दैट कैन बी रेड ऐट ए सिटिंग इट इज़ ओरिजिनल,

ये सभी सीमाएं कहानी को प्राचीन कथाओं (टेल्स) से अलग करती हैं। प्राचीन उपाख्यानों (चाहे वे हितोपदेश के हों या पंचतन्त्र के) की सीमा है कि उनमें कहानी कला की रचनाधर्मी प्रकृति का विकास नहीं हो पाता। सारी घटनाएं किसी विचार सूत्र या नीतिपूर्ण युक्ति में निःशेष हो जाती हैं। दशकुमार चरित् आदि प्राचीन आख्यानों में जिस अलंकार बहुल स्फीत शैली का व्यवहार है, वह कहानी के आधुनिक रूप से सर्वथा भिन्न है।

अपने आधुनिक विकास--क्रम में कहानी एक निश्चित् साहित्य रूप है : वह ललित कथा की एक अलग जाति ही है।[1] फिर, वह केवल रूप नहीं, जीवन को समझने का एक स्वतः सम्पूर्ण माध्यम है। वह एक ऐतिहासिक आवश्यकता की देन है। इस भूमिका में अनुभव किया जाने लगा है कि कहानी फार्स्टर की परिभाषा के अनुसार[2] सपाट और सरल नहीं है।

चेखव और मोपांसा जैसे प्रख्यात कहानीकारों से लेकर अर्नेस्ट हेमिंग्वे तक जाने कितने प्रतिभाशाली कहानीकारों ने कहानी के रूप--विधान को परिवर्तित करते--करते उसे नया, सूक्ष्म, सार्थक, साहित्यिक एवं कलात्मक माध्यम बना दिया है। चेखव की "द ब्राइड"[3], अर्नेस्ट हेमिंग्वे की "द एन्ड आफ समथिंग,"[4] रवीन्द्रनाथ ठाकुर की "समाप्ति",[5] प्रेमचन्द की "पूस की रात "[6], प्रसाद की "मधुआ"[7]--आदि कहानियों की माँग है कि समकालीन आलोचना में उनकी व्याख्या और व्यापक अर्थ में समस्त कहानी-परम्परा की व्याख्या, नये संदर्भ में की जाय।

इट मस्ट स्पार्किल, एक्साइट आर इम्प्रेस ऐन्ड इट मस्ट हैव यूनिटी आफ़ इफ़ेक्ट आर इम्प्रेशन। इट शुड मूव इन ऐन इवुन लाइन फ्राम इट्स एक्सपोजीशन टु इट्स क्लोज"।

--प्वाइन्ट्स आफ़ व्यू . सामरसेंट माम : पृष्ठ १३३।

१--प्रतिभा साधना : ना० सी फड़के : पृ० १७९

२--"इट इज़ ए नैरेटिव आफ़ इवेन्ट्स अरेन्ज्ड इन देयर टाइम सिक्वेन्स......" : ऐस्पेक्ट्स आफ़ ए नावेल : ई० एम० फार्स्टर : पृ० २९।

३--शार्ट स्टोरीज़ ऐन्ड नावेल्स : ए० पी० चेखब : पृ० ३६१।

४--द फ़र्स्ट फ़ोर्टीनाइन स्टोरीज़ : अर्नेस्ट हेमिंग्वे : पृ० १०९।

५--समाप्ति : रवीन्द्र साहित्य भाग ५ : अनु० धन्यकुमार जैन : पृ० ३।

६--मानसरोवर भाग १ : पृ० १४६।

७--आंधी : जयशंकर प्रसाद : पृ० ३६।

कहानी एवं अन्य साहित्यिक विधाएं

कहानी और उपन्यास

कहानी एवं उपन्यास में केवल आकार का भेद है, यह भ्रामक धारणा बहुत अधिक प्रचलित है। कहानी एवं उपन्यास के रूपात्मक व्यक्तित्व और प्रयोजन का तुलनात्मक अध्ययन करने से सहज ही जाना जा सकता है कि कहानी की प्रकृति उपन्यास से सर्वथा भिन्न है।[1] स्वयं कहानी लेखकों ने अपने वक्तव्यों में आकार-भेद पर इतना बल दिया है[2] कि कहानी एवं उपन्यास की रचना-प्रक्रिया के मौलिक अन्तर की ओर समीक्षकों का ध्यान ही नहीं जा सकता है। यही कारण है कि लम्बी कहानियों को प्रायः लघु उपन्यास की संज्ञा दी जाने लगी है। श्रद्धाराम फुल्लौरी की रचना "भाग्यवती" (रचनाकाल : सन् १८७७ ई०) तथा बालकृष्ण भट्ट की रचना "सौ अजान एक सुजान" (सन् : १८५८ ई०) अपनी संवेदना में "उपन्यास" के ही समीप हैं, कहानी के नहीं; जब कि लगभग समान आकार की सुदर्शन की रचना "परिवर्तन" (सन् . १९२६) कहानी की संवेदना के समीप है, उपन्यास के नहीं।

हमारी दृष्टि में उपन्यासकार जीवन के बृहत्तर यथार्थसन्दर्भों की उद्भावना करते हुए मानव चेतना की जटिलता को एक व्यापक आधार पर चित्रित करना चाहता है और इस प्रकार उसका उद्देश्य उस "मानव चरित्र" का निरूपण करना होता है जो तमाम जीवनानुभवों और परिस्थितियों के घात-प्रतिघात के बीच निर्मित हो। कहानी में रचनाधर्मी कहानीकार अपनी संवेदना

१—"कहानी ललित कथा की एक अलग जाति है। उसमें और उपन्यास में केवल विस्तार का भेद नहीं है। उसकी प्रकृति ही भिन्न है। छोटी कथा को लघुकथा या कहानी कहना गलत होगा। लघुत्व तो उसका आनुषंगिक गुण है।" —प्रतिमा साधना : ना० सी० फड़के : पृ० १७९।

२—"उपन्यास घटनाओं, पात्रों और चरित्रों का समूह है, आख्यायिका केवल घटना है— अन्य बातें सब उसी घटना के अन्तर्गत होती हैं। इस विचार से उसकी तुलना ड्रामे से की जा सकती है। उपन्यास में आप चाहे जितने स्थान लाएं, चाहे जितने दृश्य दिखाएं, चाहे कितने चरित्र खींचें, पर यह कोई आवश्यक बात नहीं कि वे सब घटनाएं और चरित्र एक ही केन्द्र पर मिल जाय। उनमें कितने ही चरित्र तो केवल मनोभाव दिखाने के लिए ही रहते हैं, पर इस आख्यायिका में इस बाहुल्य की गुंजाइश नहीं।"—साहित्य का उद्देश्य—प्रेमचन्द— पृ० ३७।

को केन्द्रोन्मुख बनाना चाहता है, यह आग्रह केवल कहानी के आकार का नहीं, स्वभाव और संस्कार का होता है। कहानी का कहानीपन भी उपन्यास की घटना बहुलता से भिन्न होता है, यह भिन्नता भी प्रकृतिकृत होती है। कहानी की विशेषताओं में "एकान्विति" पर बल देते हुये पो ने कहानी की प्रकृति के वैशिष्ट्य पर ही बल दिया है। कहा जा सकता है कि कहानी की "एकान्विति" उपन्यास से भिन्न रूपविधि की संक्षिप्तता और केन्द्रोन्मुखता पर ही नहीं बल देती वरन् वस्तु का भी समाहार प्रस्तुत करती है। बाबू गुलाबराय ने कहानी एवं उपन्यास का अन्तर स्पष्ट करते हुए जिस गुण को एकतथ्यता कहा है,[1] वह कहानी का पर्याप्त गुण नहीं है। अनेकतथ्यों से होकर भी कहानी यदि एक केन्द्रीय संवेदनात्मक प्रभाव का निर्माण कर पाती है तो उसका रचनात्मक प्रयत्न सार्थक हो उठता है।

कहानी एवं नाटक

नाटकों एवं कहानियों की रचनात्मक प्रकृति में कोई प्रत्यक्ष समानता नहीं दिखाई देती, यों तो कथानक, चरित्र, संवाद आदि पारिभाषिक संज्ञाएं रूढ़ि के रूप में इन सभी साहित्यिक माध्यमों में स्वीकृत हैं और वही समानता का भ्रम उपस्थित करती हैं। बड़े नाटकों से हट कर एकांकी नाटकों की रचना-प्रक्रिया का जो विकास हुआ है उसमें कहानी कला के कुछ सादृश्यमूलक तत्व अवश्य विद्यमान हैं।[2] एकांकी नाटकों में भी रचनाकार अपनी संवेदना को कहानियों की भांति लक्ष्यात्मक या केन्द्रोन्मुख बनाना चाहता है। कहानियां जिस सरलता से एकांकी के रूप में रूपांतरित कर ली जाती हैं, वह उपर्युक्त समानता के कारण ही। अन्यथा नाटक की प्रकृति और रचना पद्धति

१—"कहानी अपने पुराने रूप में उपन्यास की अग्रजा है और नये रूप में उसकी अनुजा। वृत्त या कथा-साहित्य की वंशजा होने के कारण कहानी और उपन्यास दोनों में ही कई बातों की समानता है। ......कहानी की एकतथ्यता ही उसका जीवन-रस है और वही उसे उपन्यास से पृथक करता है।" —काव्य के रूप : गुलाबराय : पृ० २१५-२१६।

२—"जिन सामाजिक शक्तियों और पाठकों की मनोवृत्तियों के फलस्वरूप उपन्यास के आगे कहानी की अवतारणा और व्यापकता प्रस्फुटित हुई है, उन्हीं शक्तियों ने सम्पूर्ण नाटक के आगे एकांकी नाटक-कला को सर्वग्राह्य सिद्ध किया है।" —हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास : डा० लक्ष्मीनारायण लाल : — पृ० ३५६।

से कहानी की कोई प्रत्यक्ष समानता नहीं दिखाई पड़ती। "दृश्य काव्य" के रूप में "नाटक" पात्रों के आंगिक अभिनय के अनुकूल वातावरण का निर्माण करता आया है और उसमें निहित रसानुभूति की निर्दिष्टता अपेक्षित रही है। श्रव्य काव्य के रूप में कहानी घटनाओं के वर्णन द्वारा चरित्र के मनोभावों और चरित्र के मनोभावों द्वारा कहानी के समग्र प्रभाव को एक निश्चित संवेदनात्मक बिन्दु पर पहुंचाती रही है और रसानुभूति की अत्यधिक सूक्ष्मता की उपेक्षता का अनुभव किया जाता रहा है। "नाटकों" में रचनाकार को "रचना" से निस्संग होना पड़ता है और रचना कौशल के प्रविधान पर ही विशेष श्रम करना पड़ता है। कहानी में रचनाकार को आगे आकर आत्मानुभूति की जटिलता का साक्षात्कार करना आवश्यक होता है।

कहानी और रेखाचित्र

कहानी और रेखाचित्र में रूपगत समानताएं अधिक दिखाई पड़ती हैं; पर सूक्ष्मता से विचार करने से ज्ञात होता है कि इन विधाओं की रचना-प्रक्रिया में अन्तर कम नहीं है। महादेवी वर्मा के रेखा चित्रों को कहानियों की संज्ञा दी जा सकती है। पर रेखाचित्र का कहानी के अनुरूप होना आवश्यक नहीं है। कहानी और रेखाचित्र की प्रकृति में सन्निहित अन्तर पर ध्यान देने से ज्ञात होगा कि कहानी में कर्म की स्फूर्त प्रतिक्रिया का आभास पाया जाता है; यही प्रतिक्रिया कहानी की संवेदना को अभीष्ट केन्द्रीय भावना तक पहुंचाती है और कहानी का मूल्य बनती है। रेखाचित्र में ऐसा सम्भव नहीं होता। वहां कर्म का आभास तो पाया जा सकता है पर उसकी प्रतिक्रिया की सम्यक् अनुभूति मूर्तिमान नहीं हो पाती। घटना का निषेध और विश्लेषणात्मक व्याख्या[1] की स्वीकृति रेखाचित्र की वे विशेषताएं हैं, जो कहानी से अलग उसके रूपात्मक व्यक्तित्व का निर्माण करती हैं।

कहानी एवं निबन्ध

निबन्धों के ऐतिहासिक विकास के अध्ययन से जाना जा सकता है कि

१—"रेखाचित्र में तथ्य खुलते जाते हैं, संयोजित नहीं होते हैं। कहानी के लिए घटना का होना जरूरी नहीं है, पर रेखाचित्र के लिए उसका न होना जरूरी है: घटना का भराव वह वहन नहीं कर सकता। इसी प्रकार कहानी के लिए विश्लेषण किसी प्रकार भी आवांछनीय नहीं है, परन्तु रेखाचित्र का वह प्रायः अनिवार्य साधन है।" —विचार और विश्लेषण : डा० नगेन्द्र : पृ० ८१।

उसकी प्रकृति और उसकी रचनात्मक प्रक्रिया में बड़ा परिवर्तन होता आया है। विकास की प्रक्रिया में जिन "व्यक्तिव्यंजक" या "ललित" निबन्धों का विकास हुआ है. उनकी रूपविधि बहुत कुछ कहानियों के निकट जान पड़ती है। पर सूक्ष्मता से देखा जाय तो ललित निबन्ध और कहानी के क्षेत्र पृथक् हैं। व्यक्तित्व के "कृति" में प्रतिबिम्बित होने की उतनी आवश्यकता कहानी में नहीं समझी जाती जितनी निबन्ध में। बल्कि, आधुनिक कहानीकार तो निर्वैयक्तिक होने की आवश्यकता को कहानीकार के रचनाधर्मी "चरित्र" की बहुत बड़ी आवश्यकता मानते हैं।

कहानी और निबन्ध की प्रतिपादन पद्धति में कुछ अन्य प्रमुख और प्रत्यक्ष अन्तर भी हैं। कहानी के माध्यम से रचनाकार जब किसी समस्या की व्याख्या करने चलता है तो उसे पहले एक "कथावस्तु" का विधान करने की आवश्यकता का अनुभव होता है, चरित्र, वातावरण, सवेदना आदि जिसके सहायक अंग हों; और फिर, वह समस्या को किसी नुकीले बिन्दु पर उद्घाटित करना चाहता है। निबन्धकार अपनी "कृति" में समस्या की स्पष्ट विवेचना करता चलता है, और उसी का पुनः प्रत्यय पाठक के मन में उपस्थित करना चाहता है।

अन्य विधाएं : गद्यगीत, गीति, खण्ड-काव्य, रिपोर्ताज़ आदि

गद्य-गीत, गीति, खण्डकाव्य तथा रिपोर्ताज़ अन्य साहित्यिक विधाएं हैं, जिनसे कहानी की तुलना की जाती है। विचार करने से, सहज ही जाना जा सकता है कि कहानी का कोई आंतरिक सादृश्य इन विधाओं से नहीं है। गद्य-गीत में रचनाकार कल्पित भावुकता को शब्द-चित्रों के द्वारा व्यक्त करता है। "गीति" में रचनाकार अपने अन्तःकरण के अनुभूत भाव-संवेगों की अभिव्यक्ति करता है। किसी अर्थ में प्रभाव की समष्टिरचना और "एकान्विति" गीति में वैसे ही अपेक्षित होती है, जैसे कहानी में। खण्डकाव्य में एक संक्षिप्त कथावस्तु की प्रबन्ध-कल्पना करनी पड़ती है और पात्रों, घटित घटना समूहों के सामंजस्यपूर्ण प्रभाव को निर्दिष्ट लक्ष्य तक पहुंचाना पड़ता है। रिपोर्ताज नामक साहित्यविधा युद्धकाल की पत्रकारिता से सम्बद्ध चेतना की देन है। रचनात्मक माध्यमों की अपर्याप्तता के प्रति विद्रोहशील रचनाकार रिपोर्ताज़ से सभी विधाओं का सूक्ष्म समाहार प्रस्तुत करता है। प्रत्यक्ष है कि भाव कल्पना या लक्ष्य की एकोन्मुखता के अतिरिक्त रचना-प्रकृति और रचना-प्रक्रिया की दृष्टि से कहानी तथा इन अन्य विधाओं में कोई विशेष समानता नहीं पायी जाती।

पूर्वोक्त साहित्यिक विधाओं की तुलना में कहानी—शिल्प का वैशिष्ट्य

अन्य साहित्यिक विधाओं की तुलना में, कहानी के शिल्प की सार्थकता इसमें है कि वह वास्तविक जीवन यथार्थ तथा मनुष्य के अन्तर्जगत् की जटिल चेतना का विश्लेषण करती हुई, विशेष संवेदनात्मक प्रभाव का समाहार प्रस्तुत करती है। प्रचीन कहानियों की ढीली-ढाली विलम्बित रचना-पद्धति के अन्तर्गत कहानी की 'एकान्विति' रह-रह कर खण्डित होती है, जब कि विकास काल की आधुनिक कहानी उसकी एकदेशीयता[1] का निर्वाह अनिवार्य रूप से करती है।

उपर्युक्त सन्दर्भ में कहानी की रचनात्मक सम्भावनाओं पर विचार करते हुये यह संकेत करना आवश्यक जान पड़ता है कि कहानी-शिल्प के निर्मायिकों को विषय-वस्तु की एकता के आग्रह को सूक्ष्म रूप में ही ग्रहण करना चाहिये, स्थूल रूप में नहीं, अन्यथा, कहानी के ढाँचे (स्ट्रक्चर) के जड़ होने की अशंका हो सकती है। प्रेमचन्द यदि 'गल्प' को कविता मानते हैं, जिसमें जीवन के किसी एक अंग या मनोभाव को प्रदर्शित करना लेखक का अभीष्ट होता है[2], तो कविता की इस सम्भावना पर ध्यान देते हुये, कि उसमें एक ही भाव भिन्न-भिन्न प्रतीकों और बिम्बात्मक सन्दर्भों में व्यक्त हो सकता है और उसमें एक ही संवेदना (या विषय) को नाना अर्थों में उद्भावित किया जा सकता है। इस दृष्टि से जैनेन्द्र की यह धारणा युक्ति-संगत जान पड़ती है कि 'प्रभाव की एकता' में नाना तत्वों की अनेकता[3] की सम्भावना कहानी के लिये आवश्यक है। रवीन्द्रनाथ की कहानियों में यह कलात्मक विशेषता अत्यन्त सार्थक रूप में उपस्थित है। इनकी कहानियों के प्रकाश में यह सहज ही जाना जा सकता है कि प्रभाव की एकता का वैशिष्ट्य सूक्ष्म

---

१ "कहानी में सबसे ज्यादा महत्व की वस्तु विषय का एकत्व या विषयगत एकदेशीयता है। यह एकत्व किसी भी क्षेत्र का हो सकता है। भाव, विचार, घटना, चरित्र किसी भी विषय में क्यों न हो, लेखक का ध्यान किसी एक स्थल पर केन्द्रित रहता है।"

—कहानी का रचना विधान : डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा : पृ० ७।

२ गल्प समुच्चय : प्रेमचन्द : पृ० २

३ "असल में तो एक कहानी से या पुस्तक से कुल मिलाकर एक प्रभाव पड़ना चाहिये। उस प्रभाव की एकता में नाना तत्वों की अनेकता तो रहेगी ही। किन्तु उन तत्वों के नानात्व में रचना के श्रेय को भी नानाविध नहीं देखना होगा।" —साहित्य का श्रेय और प्रेय : जैनेन्द्र : पृ० १४

दृष्टि से रसानुभूति की प्रक्रिया के अध्ययन का विषय है, भाषा-शिल्प के अलंकरण से इस विशेषता का उपयोग कहानी में सम्भाव्य नहीं है। रवीन्द्रनाथ की 'समाप्ति' कहानी का उदाहरण लेकर कहा जा सकता है कि एक अनुभूत्यात्मक चिन्ताधारा की कहानी के नाना तत्वों की अनेकता को एक संश्लिष्ट एकता प्रदान करती है।

कहानी, प्रत्यक्ष है कि अनेक घुले-मिले तत्वों के कारण अच्छी लगती है और पाठक को प्रभावित करती है पर प्रायः हम भूल जाते हैं कि इनमें मूल कारण प्रभाव या संवेदना की वह इकाई है जहाँ सारे वर्णित तथ्य आकर लय हो जाते हैं। यह मत, कि यह प्रभाव कहानी के अन्त में ही व्यंजित होता है, सर्वथा भ्रामक और मिथ्या है। वस्तुतः वह श्रेष्ठ कहानियों में आद्योपांत रचा हुआ होता है, पुष्प के गन्ध की भाँति।

ग—हिन्दी कहानी की विकास–रेखा

रचना–प्रक्रिया की चेतना का विकास

रचना-प्रक्रिया की चेतना आधुनिक भावबोध के उदय का परिणाम है, इसमें सन्देह नहीं। हिन्दी कहानी की विकास-रेखाओं का अध्ययन करने से हम सहज ही अनुभव कर सकते हैं कि रचना-प्रक्रिया सम्बन्धी चेतना का विकास प्रेमचन्द के उदय के साथ ही, हिन्दी कहानी के क्षितिज पर परिलक्षित होता है। इस दृष्टि से विचार किया जाय तो स्वभावतः ही प्रेमचन्द के युग को उनकी संज्ञा से सम्बद्ध करके देखने की तथा उनके युग को नवीन आधुनिकता का आरम्भ-युग मानने की आवश्यकता प्रतीत होती है। यही कारण है कि हमने प्रस्तुत अध्ययन में हिन्दी के कहानी साहित्य को विकास की भिन्न-भिन्न धाराओं में विभाजित करते हुये इस आदर्श का उपयोग किया है। इस आधार पर पूर्व प्रेमचन्द-युग की हिन्दी कहानी, प्राचीन हिन्दी कहानी, प्रेमचन्द-युग की कहानी नवीन आधुनिकता के आरम्भ युग की (अर्थात् पूर्वार्द्ध की) कहानी, और प्रेमचन्दोत्तर युग की कहानी नवीन आधुनिकता के विकास युग की (अर्थात् उत्तरार्द्ध की) कहानी, की संज्ञा प्राप्त कर सकती है।

पूर्व प्रेमचंद-युग की हिन्दी कहानी की रचनात्मक प्रवृत्तियों पर विचार करने से सहज ही जाना जा सकता है कि यह युग कल्पना–विलास का युग है, तथा इस युग की कहानी में मनोवैज्ञानिक यथार्थ के युक्तिसंगत बोध की अनुभूति का नितान्त अभाव है। कहानी की रचना–प्रक्रिया की वास्तविक चेतना से अनभिज्ञ इस युग के कहानी लेखकों ने (जिनमें लल्लूलाल, सदल

मिश्र, इंशा अल्ला खां से लेकर किशोरीलाल गोस्वामी आदि तक के नाम लिए जा सकते हैं) अप्रत्याशित घटनाओं के समूह को ही कहानी का पर्याय मान लिया है। कहानी के रचनात्मक अर्थ की संभावना से अपरिचित या अल्पपरिचित लेखकों ने कहानी में चरित्र-चित्रण की सार्थकता पर ध्यान ही नहीं दिया है। आकस्मिक नहीं है, कि इस युग की अधिकांश कहानियाँ अवर कोटि के कुतूहल को अपना अनन्य प्रेरणास्रोत मानती है। इंशा की "रानी केतकी की कहानी," किशोरीलाल गोस्वामी की कहानी "इन्दुमती," रामचन्द्र शुक्ल की कहानी "ग्याहर वर्ष का समय," केशवप्रसाद सिंह की कहानी "आपत्तियों का पर्वत" या "चन्द्रलोक की यात्रा"-आदि में अप्रत्याशित घटनाचक्रों का कुतूहलपूर्ण उपयोग ही रचनात्मकता का चरम साध्य मान लिया गया है। प्रत्यक्षतः इस युग की "ऐन्द्रजालिक" कहानियों से रचना-प्रक्रिया की उस चेतना का आभास नहीं मिलता जो एक निश्चित सामाजिक सन्दर्भ से कथानक, चरित्र और संवेदना का चुनाव करती है और पाठक को इनके सम्मिलित प्रभाव की एकता द्वारा एक दूरगामी सन्दर्भ की ओर ले जाती है।

प्राचीन कहानी के रचना-शिल्प के अध्ययन से हम अनुभव करते हैं कि प्राचीन कहानी में अनेक कथात्मक प्राचीन पद्धतियों का असतर्क सभावेश है। संस्कृत महाकाव्यों की वर्णन परम्परा, उर्दू कथा-शैली की नाटकीय चपलता तथा बृहत् कथानकों का सपाट फैला हुआ विधान, सबके सतर्कतारहित सम्मिश्रण से प्राचीन कहानी के शिल्प का व्यक्तित्व निर्मित हुआ है। विषय-वस्तु और अभिव्यक्ति दोनों दृष्टियों से थोड़ी नवीनता का संकेत भारतेन्दु युग की कहानियों में मिलता है जिनके रचना-प्रकार को देखते हुए यह सन्देह बना ही रहता है कि उन्हें "कहानी" कहें या निबन्ध।[1] पर, निःसंदिग्ध रूप में कहानी की रचनात्मक आवश्यकताओं की आंशिक पूर्ति इन्हीं कहानियों में दिखाई पड़ती है।

प्रेमचन्द के उदय के साथ ही कहानी कल्पना-विलास से हटकर यथार्थ-बोध के समीप जाने के प्रयत्न में तत्पर दिखाई देती है। आदर्श और यथार्थ का संघर्ष इस युग की कहानी की रचना-प्रक्रिया को एक बड़ी सीमा तक प्रभावित कर सका है। प्रेमचन्द के समकालीन प्रमुख कहानी लेखक प्रसाद जहां भावनाओं के सूक्ष्म अन्तर्द्वन्द्वों के अंकन में संलग्न दिखाई देते हैं,

---

१-भारतेन्दु की कहानी-"एक अद्‌भुत अपूर्व स्वप्न" को डा० शितिकंठ मिश्र ने "कथात्मक निबन्ध" की संज्ञा दी है।-खड़ी बोली का आन्दोलन-डा० शितिकंठ मिश्र : पृ० ११४।

वहां प्रेमचन्द अपने आभ्यंतर मन में निहित आदर्शवाद और परिस्थितियों के बाहरी सामाजिक यथार्थबोध के संघर्ष से निरन्तर अनुप्राणित हैं। हमारी दृष्टि में प्रेमचन्द के आदर्शभाव को उनकी निरपेक्ष दुर्बलता या सीमा मानकर आलोचकों ने बड़ी भूल की है। उनकी कहानियों के सर्वेक्षण से हम अनुमान कर सकते हैं कि उनका आदर्श भाव निरपेक्ष–भाव नहीं है, वह "सहानुभूति" का भाव है।

प्रेमचंद–युग की हिन्दी कहानी आधुनिकता के पूर्वार्द्ध की कहानी है जो सामाजिक तथा व्यावहारिक मनोविज्ञान का उपयोग करते हुए रचना के सामाजिक लक्ष्य तक पहुंचना चाहती है। प्रेमचंद, प्रसाद, कौशिक तथा सुदर्शन आदि की कहानियां समाज के सम्बन्धों तथा चरित्रों के स्वाभाविक अन्तर्द्वन्द्वों की अभिव्यक्ति को "कहानी" का उद्दिष्ट मानती है। चतुरसेन शास्त्री, रायकृष्णदास, विनोदशंकर व्यास तथा बेचनशर्मा 'उग्र' आदि कहानी कारों ने अपने ढंग से कहानी के स्वतंत्र शिल्प के निर्माण की दिशा में उद्योग किया है। इस युग की आरंभिक प्रसिद्ध कहानी "उसने कहा था" प्रमाण है, कि आधुनिकता के शिल्प–संस्कार पहले भी "कहानी" की रचनात्मक "धारणा" के भीतर विद्यमान थे जिन्होंने हृदयेश की भावुकताभरी कहानियों और गोपालराम गहमरी की जासूसी कहानियों से हिन्दी के कथा–शिल्प को पृथक् कर दिया था।

मनोवैश्लेषिक शिल्प का उपयोग करते हुए प्रेमचंद–युग के कहानीकारों ने कहानी की रचनात्मक संभावनाओं को समझने और आयत्त करने का प्रयत्न किया है, यही इस युग की कहानी की रचना–प्रक्रिया की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इस युग की कहानी में रचनात्मक प्रयोग भी कम नहीं किए गए हैं, यद्यपि इन प्रयोगों में प्रयोगशीलता की आरंभिक दुर्बलताएं प्रत्यक्ष हैं।

आधुनिकता का विकास संक्रमणकालीन परिस्थितियों के बीच जिस आधार पर हुआ है, उसे देखते हुए हम अनुभव करते हैं कि रचनाकारों की रचना–प्रक्रिया स्वतंत्र आधारों के समन्वेषण में तत्पर हो सकी है। आधुनिक हिन्दी कहानी के विकास–युग (अर्थात् उत्तर–प्रेमचंद–युग) के प्रयत्नों को देखने से ज्ञात होता है कि इस समय के प्रमुख लेखकों की रचनात्मक चेतना समकालीन आदर्शों का समानतः निर्वाह करती हुई भी एक दूसरे से भिन्न है। अज्ञेय की रचना–प्रक्रिया जैनेन्द्र से और जैनेन्द्र की यशपाल से उसी प्रकार भिन्न है जैसे सार्त्र की रचना–प्रक्रिया हेमिंग्वे से और हेमिंग्वे की आल्वेयर कामू से भिन्न है।

उत्तर प्रेमचंद–युग की हिन्दी कहानी के अध्ययन से उसमें व्यंजित

यथार्थ बोध के विविध स्तरों का पता चलता है। इस युग के कहानीकारों का एक वर्ग यदि यथार्थ की अनुभूति को अविकल रूप में चित्रित करना चाहता है, तो दूसरा उसे वर्ग-भेद के निकष पर प्रस्तुत करता है और तीसरा अन्तर्मन की ज्ञात–अज्ञात चेतना के सूक्ष्म स्तरों को उद्घाटित करने का यत्न करता है। दूरगामी सन्दर्भों की ओर ले जाने वाले इस युग के यथार्थ–बोध में पर्याप्त वैविध्य का आभास मिलता है। इन्द्रिय बोधों की सूक्ष्म चेतना को अभिव्यक्त करने वाले इस युग के कहानीकार एक गहरी रचनात्मक महत्वाकांक्षा का परिचय देते हैं, इसमें सन्देह नहीं। मनोविश्लेषवादी और सामाजिक यथार्थवादी चित्रण की इन विविध प्रणालियों का उपयोग प्रस्तुत युग के रचनाकारों ने किया है और अपनी बौद्धिक एवं रचनात्मक आवश्यकताओं के अनुसार कहानी के शिल्प को निरन्तर बदलने और अधिकाधिक ऋजु बनाने का सफल प्रयास किया है

मानव-मन के उस विशेष तनाव को (जो संक्रमणकालीन परिस्थितियों की प्रतिक्रिया से व्युत्पन्न है) इस काल के कुछ कहानीकारों ने अधिक सामाजिक-भूमि पर और कुछ ने अधिक वैयक्तिक भूमि पर व्यंजित करने का यत्न किया है। पहले वर्ग के लेखकों में यशपाल, अश्क, नागार्जुन आदि और दूसरे वर्ग के लेखकों में जैनेन्द्र और अज्ञेय आदि कहानी लेखकों के नाम लिये जा सकते हैं।

आधुनिक बोध की विकसित संवेदना की अभिव्यक्ति करने वाली नवीन या आधुनिक कहानी में अनुभूति के प्रति अतिशय संसक्ति या संलग्नता, अनुभवों की परस्पर सह-सम्बद्धता और वस्तुओं के ऐतिहासिक विकास की चेतना प्रत्यक्ष है। प्रस्तुत युग के कहानीकारों की रचनाप्रक्रिया जैसे अनुभवों के उत्स को जानना चाहती है, वैसे ही शिल्प की आभ्यन्तर समस्याओं का साक्षात्कार भी करती है।

आज के कहानीकारों में यदि नगरों के संक्रमणशील जीवन के मध्यवर्गीय रहस्यों का अध्ययन करने वाले कहानीकार हैं, तो ग्राम कथानकों की पुनः प्रतिष्ठा द्वारा आँचलिकता का नवीन रस प्रदान करने वाले कहानीकार भी हैं। यह साम्प्रतिक विविधता कहानी की सम्पन्नता और कहानी की रचनात्मक प्रक्रिया की चेतना का प्रमाण है।

घ—कहानी कला के प्रमुख तत्व और उनके रचनात्मक उपयोग की सम्भावना

यह सर्वमान्य है कि कहानी साहित्यिक अभिव्यक्ति की अत्यन्त अर्थपूर्ण,

कलापूर्ण एवं सम्भावनायुक्त विधा है, पर उसमें रचनात्मक अर्थों के विकास की सम्भावना अन्य साहित्यरूपों की तुलना में कहीं अधिक है, इस ओर प्राय: विचार ही नहीं किया गया है। यही कारण है कि बहुत पहले कहानी की व्याख्या के लिये जो समीक्षात्मक प्रतिमान निर्धारित कर दिये गये थे, कहानी में नये दृष्टिकोण, नयी-भावभूमि और नये रचनात्मक शिल्प के आधुनिक विकास के बाद भी वे ज्यों के त्यों उपयोग में लाये जाते हैं। कुछ थोड़े से समीक्षकों ने उनकी असमर्थता का अनुभव किया है और उनके अर्थ-परिवर्तन की दिशा में नयी युक्तियों का परिचय दिया है। प्राय: कहानीकला के पूर्व निर्धारित तत्वों की रूढ़ि का निरर्थ उपयोग ही कहानी से सम्बन्धित समीक्षा ग्रन्थों में देखा जाता है। यह स्थिति चिन्ताप्रद है। हमारी दृष्टि में समीक्षा का भी एक रचनात्मक प्रयोजन है। साहित्य के रचनात्मक विकास के साथ तथा साहित्य में व्यक्त रसानुभूति के परिवर्तित सन्दर्भों के साथ ही समीक्षा के पूर्व निर्धारित तत्वों पर पुनर्विचार आवश्यक हो उठता है। प्राय: ऐसा होता है कि एक कलात्मक तत्व से दूसरे कलात्मक तत्व पर बल देने से ही हमारा समीक्षात्मक प्रयोजन (नयी आवश्यकताओं की अनुरूपता में) सिद्ध हो जाता है।

कहानी को 'रचना' मानते हुये और उसकी रचनात्मक सम्भावना पर दृष्टि रखते हुये हमें कहानी कला के पूर्व निर्धारित तत्वों की उपयोगिता पर पुन: विचार करने की आवश्यकता तब और भी अधिक होती है जब हम कहानी की 'रचना' को एक विशेष प्रक्रिया मानते हैं। 'कहानी का कथानक सशक्त है' या 'कहानी में चरित्रचित्रण अच्छी तरह हुआ है' या 'कहानी में चित्रित वातावरण बड़ा रोचक है' : इस प्रकार की समीक्षात्मक सम्मतियाँ अधूरी ही कही जा सकती हैं। समीक्षा की रचनात्मक आवश्यकता तो यह है कि हम कहानी में बिखरे हुये कथासूत्रों के आभ्यन्तर सम्बन्ध की वास्तविकता को पहचान सकें, या किन परिस्थितियों के आभ्यन्तर सम्बन्ध 'चरित्र' की प्रतिमा को किस स्तर पर मूर्त करते हैं, इसको ठीक-ठीक समझ सकें और वातावरण को परिस्थितियों के भोक्ता रचनाकार संवेगों के उचित सन्दर्भ में प्रतिष्ठित कर, उसकी अनुभाव्यता का मूल्यांकन कर सकें। आधुनिक कहानी के विकास को देखने से प्रत्यक्ष होता है कि आधुनिक कहानी की आत्मपूर्णता समीक्षक से 'आत्मपूर्ण ग्रहणशीलता' की माँग करती है। विचारणीय है कि क्या कहानी कला के प्राचीन शास्त्रीय तत्वों के निकष पर यह समीक्षात्मक क्रिया सम्भव नहीं है ?

कहानी-कला की परिवर्तित आधार-भूमि

हमारी दृष्टि में, प्रेमचन्द-युग के उत्तरार्द्ध में ही कहानीकला की आधारभूमि बदल गयी थी और तभी उपर्युक्त प्रश्न उठाया जाना चाहिये था। कथानक घटनाओं का समूह नहीं है, और न आकार की लघुता कथानक के संगठन का अन्तिम निर्णायक तत्व है—इस ओर तो कहानी लेखकों ने तभी ध्यान दिया था। कथानक के प्रभाव के स्थान पर वक्तव्य के आभास पर बल दिया जाने लगा था, चरित्रों के अच्छे-बुरे होने की परिभाषा बदल गयी थी—शराबी-जुवाड़ी व्यक्ति कहानियों के प्रमुख चरित्रों की भूमिका ग्रहण करने लगे थे और कहानीकारों की सहानुभूति के अधिकारी हो चले थे, पाठक चरित्रों में प्राय: अपने को देखने लगा था, वातावरण की सर्जना यथार्थ को प्रभाविष्णु वनाने के लिये, और मानसिक जगत् की जटिल संवेदनाओं के सादृश्य में की जाने लगी थी। पर इस समस्त परिवर्तन के प्रकाश में शास्त्रीय समीक्षा द्वारा पूर्व निर्धारित तत्वों की उपयोगिता पर पुर्नविचार की आवश्यकता का अनुभव नहीं किया गया। समीक्षकों ने जहाँ जीवन और समाज से सम्बद्ध सम्पूर्ण भाव-बोध की परीक्षा बार-बार की, वहाँ कहानी के भाव-बोध की पुन: परीक्षा कम ही की गई। क्या नये भावबोध का उन्मेष 'कहानी' में सम्भव नहीं था? प्रेमचन्द के विकास-काल की कहानियों और अन्य लेखकों की आधुनिक कहानियों में इस प्रश्न का उत्तर निहित है तथा डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा जैसे आलोचकों ने कहानी के रचनात्मक अर्थ की नयी सम्भावना पर स्वतन्त्र रूप में विचार भी किया है।

शास्त्रीय समीक्षा द्वारा पूर्व निर्धारित प्रमुख तत्व हैं कथानक, चरित्र-चित्रण, वातावरण-सृष्टि, चरम कौतूहल तथा संघर्ष, संवेदना, देशकाल, भाषा-शिल्प आदि। निश्चय ही इन विविध तत्वों में सभी कलात्मक विशेषतायें अन्तर्भुक्त हैं। पर, हमारी दृष्टि में, इन पर आत्यन्तिक बल देने से कहानी के नये रचनात्मक विकास के मूल्यांकन में बड़ी बाधा पड़ी है। उपर्युक्त तत्वों ने कहानी के सम्बन्ध में जिन विभक्त धारणाओं को जन्म दिया है, उन्हीं का परिणाम है कि प्राय: समीक्षक कहानियों को कथानक-प्रधान, चरित्र-प्रधान या वातावरण-प्रधान कहकर अपने दायित्व की सार्थकता मान लेते हैं। हमारी दृष्टि में कहानी का अभिप्रेत कहानी के ऐसे बिन्दु में भी निवास कर सकता है, जिसे हम उपर्युक्त पारिभाषिक संज्ञाओं में से कोई संज्ञा प्रदान न कर सकें। समीक्षकों ने जब तब इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर विचार भी किया है। राइट ने अपनी प्रख्यात पुस्तक 'द पोएट इन दि पोएम' में

संकेत किया है कि रचना में रचनाकार और वह विशेष बोध जिससे रचनाकार अपने को अभिज्ञ (आइडेन्टिफाई) करता है तथा जिससे अभिज्ञेय (आइडेन्टिफाइड) होने के लिये वह पाठक को आमन्त्रित करता है रचना में कहीं भी उपस्थित हो सकता है।[1] इस आधार पर विचार करने से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि शास्त्रीय समीक्षा द्वारा निर्धारित कहानी-कला के विभिन्न पारिभाषिक तत्व आधुनिक समीक्षा के लिये वे कतिपय सुविधापूर्ण संज्ञायें हैं जिनके अनुसार कहानी-कला में प्रतिफलित विशेषताओं के लक्षणों का विश्लेषण करते हुये कहानी की रचना-प्रक्रिया के वैशिष्ट्य को कहानीकारों द्वारा दी हुई निजी टिप्पणियों के अभाव में समझा जा सकता है। उपर्युक्त पारिभाषिक विशेषतायें रचनाविधि से सम्बन्धित होती हैं तथा रचना की प्रक्रिया उन तक सीमित नहीं होती। रचना-प्रक्रिया को समझने में, रचनाविधि से सम्बद्ध उपर्युक्त विशेषताओं की कसौटी पर की हुई कहानी की समीक्षा सहायक हो सकती है, पर तभी, जब हम कहानी-कला के इन पारिभाषिक तत्वों की सही सीमा-रेखाओं को समझ लें। इस सही समझ के अभाव में ही बहुत सी भ्रांतियाँ कहानी के समीक्षा-जगत् में पलती आयी हैं। उदाहरण के लिये घटनाओं के समूह को 'कथानक', 'पात्रों को' 'चरित्र', वातावरण' को 'प्राकृतिक चित्रण' का पर्याय मान लिया जाता रहा है। जब हम कहानी के नये सन्दर्भों को ध्यान में रखते हुये इन पारिभाषिक तत्वों की परिभाषा पुन: निर्धारित करने चलते हैं तो मानना पड़ता है कि—

(क) कथानक घटनाओं का व्यर्थ संग्रह नहीं है, न ही वह घटनाओं का कालक्रमानुसार किया हुआ निर्वाह है, बल्कि वह घटनाओं के बीच का एक सूक्ष्म आभ्यन्तर सम्बन्ध है जो प्रत्येक श्रेष्ठ

---

१ इनफैक्ट द पोएट इन द पोएम, द इनटेलिजेन्स विद ह्विच द पोएट आइडेन्टिफाइज़ हिमसेल्फ ऐन्ड विद ह्विच द रीडर इज़ इनवाइटेड टु आइडेन्टिफाई हिमसेल्फ मे एक्जिस्ट एनी ह्वेयर, ऐन्ड ऐट मोर देन वन प्वाइन्ट, एलांग ए सार्ट आफ स्लाडिंग स्केल बिटवीन द पर्सना ऐन्ड द होल पोएम पोएट ऐन्ड रीडर मीट टुगेदर ऐट दैट प्वाइन्ट आफ विज़न फ्राम ह्विच द मीनिंग आफ द पोएम बिकम्स मोस्ट क्लीयर ऐन्ड मोस्ट काम्प्रिहेन्सिव।"

—पर्सपेक्टिव इन क्रिटिसिज्म : द पोएट इन द पोएम : जार्ज टी० राइट : पृ० २९।

कलाकृति के रचनात्मक उद्देश्य का आधारभूत तत्व होता है ।

(ख) 'पात्र' 'चरित्र' नहीं है चरित्र वह विशेष प्रतिमा है जो पात्रों के व्यवहार जगत् के बीच से अचानक ही कहानी के सविशेष बिन्दु पर प्रकाशित हो उठती है ।

(ग) वातावरण की परिकल्पना कहानीकार केवल प्रकृति-चित्रण के प्रलोभन से नहीं, उस परिस्थिति को सामने लाने के उद्देश्य से करता है जिसके द्वारा कथानक और चरित्रों के अभीष्ट संवेदनात्मक लक्ष्य तक पहुंचा जा सके ।

रचना-प्रक्रिया के इस सैद्धान्तिक अध्ययन के प्रकाश में जब हम कहानी साहित्य पर विचार करते हैं, तो आरम्भ में ही पूर्व निर्धारित कहानी-कला के तत्वों के औचित्य के प्रति सन्देह उपस्थित होते हैं । कथानक, चरित्र-चित्रण, वातावरण, देशकाल, संवेदनात्मक अन्विति, उद्देश्य आदि तत्वों को बहुत से समीक्षक शास्त्रीय आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते हुये आत्यन्तिक महत्व देने लगते हैं और फलस्वरूप उस व्यापक रचना-प्रक्रिया की उपेक्षा कर जाते हैं, जिसके ये सभी अंग हैं । मानव-व्यक्तित्व और व्यवहार की जिन समस्याओं को कहानी जिस विशेष बिन्दु पर व्यंजित करना चाहती है, उसको पीछे छोड़ कर वे प्रायः ऊपरी विशेषताओं का आकलन करते हैं ।

पूर्व-निर्धारित तत्वों की रूढ़ि और सीमायें

कठिनाई तो तब उपस्थित होती है, जब कहानी लेखक भी उपर्युक्त आलोचनात्मक प्रतिमान को मानस में प्रतिष्ठित करते हुये कहानियाँ लिखने लगते हैं और ऐसी स्थिति में किसी कहानी की रचनात्मक प्रक्रिया से परिचित होने के लिये इन तत्वों से संक्रमित होकर भी विश्लेषण करने की अपेक्षा प्रतीत होने लगती है । हमने विभिन्न युगों की कहानी का वैशिष्ट्य समझने के लिये वस्तुतः इसी पद्धति का अनुसरण करना चाहा है, जिससे कहानी के शास्त्रीय समीक्षा द्वारा निर्धारित तत्वों के उपयोग की उपयुक्त दशा का अनुमान किया जा सके, रचनात्मक विकास की प्रक्रिया के मुख्य सूत्रों का परिग्रहण किया जा सके और कहानी की रचना-पद्धति की व्याख्यात्मक समीक्षा की जा सके ।

हम मानते हैं कि श्रेष्ठ रचनाकार में परिवेश का सम्पूर्ण बोध और कलात्मक चेतना सतत् विद्यमान रहती है । इस दृष्टि से रचनाकार की कलात्मक चेतना को उसकी एकान्त स्थिति में देखना और उसके अनुभव को सामाजिक सन्दर्भ से मुक्त कर देना उचित नहीं । कहानीकार किसी विशेष क्षण

में कहानी लिखता है पर वह केवल उस क्षण की उपलब्धि नहीं होती वरन् एक लम्बी प्रक्रिया का फल होती है। कहानी में जिन मानव-सम्बन्धों का विश्लेषण रचनाकार करता है, उनके प्रति जाने कब से, एक जागरूक चिन्तन-प्रक्रिया उसके मानस में होती रहती है। उसकी कलात्मक चेतना बहुत पहले से उस सम्बन्ध के प्रति सम्वेदित रहती है। वह अपने परिवेश के जीवन के स्पन्दन का अनुक्षण अनुभव करता है। रचनात्मक लेखक की यह ग्रहणशीलता समाज के संस्कारी प्रभावों को अत्यन्त सूक्ष्म रूप में ग्रहण करती है। यह परिवेश-बोध और कलात्मक चेतना सम्मिलित रूप में प्रेमचन्द की कहानियों में सर्वप्रथम दिखाई देती है जो निरन्तर कहानी के विकास के साथ उसकी प्रक्रिया से संसक्त होती गयी है।

नयी आवश्यकता

प्रत्यक्ष है कि आज आवश्यकता शास्त्रीय समीक्षा द्वारा निर्मित कहानी-कला की पारिभाषिक संज्ञाओं (या तत्वों) को नयी अर्थवत्ता देने की है। यह आवश्यकता प्रत्येक नये युग में भावों के नये उन्मेष के साथ अनुभव की जाती है[1]। यह नहीं कि जिन आचार्यों ने ये संज्ञायें निर्धारित की थीं, वे उनकी नयी अर्थवत्ता की सम्भावना से अपरिचित थे। आज उन्हें नयी अर्थवत्ता देते हुये हम समीक्षा-पद्धति को अधिक ऋजु और उपयोगी बना सकते हैं।

ङ—रचना–प्रक्रिया और आधुनिकता के प्रमुख स्तर

आकस्मिक नहीं है कि 'आधुनिकता' का सबसे प्रमुख लक्षण रचना-प्रक्रिया के प्रति लेखक का आत्म-सजग होना माना जा रहा है। रचना-प्रक्रिया के प्रति जागरूक होने का अर्थ आज अपने परिवेश से सम्पूर्ण संलग्न होना, सम्पृक्त होना है, अपने अनुभव को उसकी समस्त ऐतिहासिक प्रक्रिया या सन्दर्भ में देखना और प्राप्त करना है। इस दृष्टि से आधुनिकता के तीन प्रमुख स्तर माने जाते हैं या माने जा सकते हैं। पहला स्तर है : अनुभव के प्रति रचनाकार की जागरूकता। दूसरा स्तर है—अनुभवों की परस्पर सम्बद्धता। और, तीसरा स्तर है—समस्त ज्ञात वस्तु के ऐतिहासिक विकास की सतत प्रवहमान चेतना। आधुनिक कहानी में (और कहा जाय कि समस्त

१– "एव्री न्यू एज रिक्वायर्स टु हैव ऐन्शियन्ट ट्रूथ्स ट्रान्सलेटेड इन्टू कान्टेम्पोरेरी लैंग्वेज"

—साइकोएनालिसिस फार नार्मल पिपुल : कास्टर : पृ० २०६।

साहित्य में) आधुनिकता के ये तीनों स्तर देखे जा सकते हैं। जब आज का कहानी लेखक अपने आस-पास के वातावरण को एक सजीव अनुभव के रूप में ग्रहण करता है तो निश्चय ही उस पुराने कथाकार से विशिष्ट हो जाता है जो वातावरण के सौन्दर्य का आकलन कहानी को अलंकृत करने के उद्देश्य में करता था और इसी दृष्टि से उसका उपयोग पृष्ठभूमि के रूप में करता था। इस दृष्टि से रघुवीरसहाय की कहानी 'इन्द्रधनुष' का यह अंश विचारणीय और विश्लेषणीय है—

"पानी और जोर से आया और झिलमिलाती रोशनी की चादर डूब गयी। धूप का एक खण्ड जो तिरछी धारों के सहारे खड़ा था गिर पड़ा और तावरण में एक उत्तेजना आने लगी जैसे कुछ विकसित हो रहा हो। मैं देखता रहा, इस बार बिल्कुल न जानते हुए कि अब क्या होगा।

अचानक पानी बन्द हो गया : वह आवाज़ जो लोगों के और पानी के बीच निरन्तर वर्तमान थी बुझ गयी और धूप फिर निकल आयी और ऐसा लगने लगा जैसे विकास का एक वृत्त पूरा हो गया हो।"[1]

आधुनिक हिन्दी कहानी लेखक की यह सूक्ष्म संवेदनशीलता परिस्थिति और चरित्र के मनोभावों में जो गहरा सामंजस्य स्थापित करने में समर्थ होती है, वह पश्चिम के कुछ आधुनिक कथाकारों के कृतित्व में भी सहज ही में लक्ष्य की जा सकती है। यह स्थिति अनुकरण की नहीं है बल्कि किन्हीं ऐतिहासिक परिस्थितियों की परिणति का फल है जिसके कारण आज विश्वसाहित्यकारों के अनुभव समान स्तर पर हो रहे हैं। उदाहरण के लिये वर्जीनिया वुल्फ के उपन्यास 'द इयर्स' में ऐसे स्थल सहज ही पाये जा सकते हैं जिनमें अनुभव की सजगता के ही कारण परिस्थिति और चरित्र के सम्बन्ध कथानक में निर्मित हो पाते हैं।[2] यथार्थ के नानाविधि (वैरीड) पहलुओं

१– सीढ़ियों पर धूप में : रघुवीरसहाय : पृ० ५०।

२– (क) "द स्ट्रीट वाज़ वेट, द रूफ्स वेयर शाइनिंग। डार्क क्लाउड्स वेयर मूविंग एक्रास द स्काई, द ब्रान्चेज़ वेयर टासिंग अप ऐण्ड डाउन इन द लाइट आफ द स्ट्रीट लैम्प्स। समथिंग इन हर वाज़ टासिंग अप ऐण्ड डाउन टू। समथिंग अननोन सीम्ड टु बी अप्रोचिंग।"

—द इयर्स : वर्जिनियाँ वुल्फ : पृ० ३८।

(ख) "साइलेन्स ऐन्ड सालिट्यूड, ही रिपीटेड, साइलेन्स ऐन्ड सालिट्यूड। हिज़ आइज़ हाफ क्लोज्ड देमसेल्व्ज। ही वाज़ टायर्ड, ही

की अनुभूति के स्तर पर उपलब्धि-आधुनिकता की यह पहली आवश्यकता है और रचना की प्रक्रिया की जटिलता में प्रवेश करके ही इसकी प्राप्ति की जा सकती है।

अनेक सृजनात्मक अनुभवों की परस्पर सम्बद्धता आधुनिकता का दूसरा प्रमुख स्तर है जिसे हम समसामयिक कहानी में प्रायः देखते हैं। उदाहरण के रूप में हम आज के लेखक की कोई प्रेम-कहनी ले सकते हैं। ऊपर से देखने पर जिस कहनी की कथावस्तु "प्रेम" के सन्दर्भों में सीमित दिखाई देती है वह अनेक परस्पर विरोधी अनुभवों को किस प्रकार अपनी परिधि में ग्रहण कर लेती है इसका अध्ययन आधुनिकता के इस द्वितीय सोपान को समझने में जितना सहायक हो सकता है, उतना ही रचना-प्रक्रिया की प्रकृति से परिचित होने के लिए भी। इस दृष्टि से आज के कहानी लेखक की दृष्टि सच्ची "यथार्थवादी" दृष्टि है जिसे लक्ष्य कर जार्ज ल्युकाक्स ने लिखा है : महान यथार्थवादी की कृतियों में हर वस्तु हर दूसरी वस्तु से सम्बद्ध होती है।[1] "आधुनिकता" का यह स्तर हम रामकुमार की कहानी "काले पत्थर"[2] में देख सकते हैं। यह कहानी कैप्टेन ठाकुर के मन की एकान्त पीड़ा की कहानी है। कथानक के चित्रों के साथ उनकी प्रीतियुक्त सह-अनुभूति का जैसा संकेत है उसे देखते हुए यह कहानी भी प्रेम-कहानी ही है पर प्रेम वस्तुतः कहानी में प्रत्यक्ष होने वाले अनुभव की सिम्तों में से केवल एक सिम्त है। प्रेम के अनुभव की इतनी स्थिर अनुभूति आज से पहले की कहानी में उपलब्ध नहीं होती। इसका कारण यह है कि आज कोई भी अनुभव पूर्ण निरपेक्ष नहीं होता, वह अनेक अन्य अनुभवों से सम्बद्ध होता है। आज की "कहानी" के आधार पर इस स्थिति का विश्लेषण करने से आधुनिकता के अन्य प्रासंगिक लक्षणों की भी पहचान की जा सकती है। निश्चय ही "चित्रा" के विछोह के फलस्वरूप कैप्टेन ठाकुर के जीवन में कोई ऐसा रिक्त शून्य बन गया है जो उसे निरन्तर पीड़ित करने वाला है और "कहानी" के

वाज़ डेज्ड, पीपुल टाक्ड, पिपुल टाक्ड। ही वुड डिटैच हिमसेल्फ, जेनरलाइज हिमसेल्फ, इमैजिन दैट ही वाज़ लाइंग इन ए ग्रेट स्पेस आन ए ब्लू प्लेन विद हिल्स आन द रिम आफ द होराइज़न।......आदि। —वही, पृ० ४५७।

१—"इन द वर्क्स आफ ए ग्रेट रियलिस्ट एव्री थिंग इज़ लिंक्ड अप विद एव्री थिंग एल्स।"-स्टडीज़ योरोपिन रियलिज्म : जार्ज ल्यूकाम्स : पृ० १४५।

२—कृति : २४ : पृ० ५-१२।

अन्त में लेखक ने इसकी ओर संकेत भी किया है।

"जाड़ों के लम्बे दिन और उनसे भी अधिक लम्बी रातें इतनी लम्बी बन गयीं जैसे उनका अन्त कभी नहीं होगा। चारों ओर रिस-रिस कर बहता सन्नाटा छाया रहता और बिना पत्तियों के काले-काले देवदार और चीड़ ऐसे लगते जैसे सूली पर नंगे आदमी लटक रहे हों। मेस के सामने पुराना गिरजा जिसकी लम्बी खिड़कियां मेस में बैठे हुए दिखाई देती हैं और ठाकुर को बहुत सी बातें याद आने लगती हैं।"[1] माना जा सकता है कि यह चित्रा के वियोग का उद्दीपनात्मक प्रभाव-संकेत है पर कहानी के आरंभ में वर्णित ठाकुर की मन:स्थिति अनेक अन्य गहरी अनुभूतियों का सामंजस्य है। उदाहरणत: "उसका तबादला नहीं हो जाता तो......लेकिन अब उससे कोई अन्तर नहीं पड़ेगा। अब छोटे-बड़े शहर, मैदान और पहाड़ उसके लिए एक समान थे। पिछले तीन वर्षों से उसके चारों ओर बने अनगिनत घेरे, जिनमें हर क्षण उतार-चढ़ाव आते थे, वे मानों एक-एक करके टूट गए हों—ऐसी ही उसकी धारणा थी। उसे लगता जैसे उसके भीतर जो ऊंचे-नीचे स्थान थे, जिनकी गहराइयों में वह डूबा करता था और संकरे रास्तों पर वह घूमा करता था... वह अब एक समतल मैदान बन गया हो, जिसका ओर-छोर दिखाई नहीं देता था।[2] इस कहानी के प्रस्तुत खंड में चित्रा के विछोह की कुंठा से कहीं अधिक गहरी कुंठा युद्ध के जीवन की परिणति से व्युत्पन्न है। यह कुंठा "मनुष्य" और "मनुष्य" नामक यंत्र के बीच की दूरी के मिट जाने की कुंठा भी है। अस्तु, अनेक अनुभवों की परस्पर-सम्बद्धता, आधुनिकता का यह महत्वपूर्ण स्तर-आज कहानी में सहज ही पाया जा सकता है।

आधुनिक दृष्टिक्रम का विचार करते हुए इस बात पर ध्यान देने की आवश्यकता है कि अनुभवों की सूक्ष्मता का बोध अधूरी आधुनिकता है। जब हम समस्त ज्ञात वस्तुओं की ऐतिहासिक विकास-प्रक्रिया और उसमें सतत प्रवहमान चेतना का अनुभव प्राप्त करते हैं, तभी हम सम्पूर्ण आधुनिकता से सम्पन्न होते हैं। आधुनिक रचनात्मक प्रक्रिया का यह तीसरा स्तर कुछ थोड़ी-सी कहानियों में ही प्राप्त हो सकता है-उन कहानियों में, जो "कथानक-निर्भर" न होकर "वक्तव्य-निर्भर" हों, जैसे काफ्का की कहानियां : "मेटामार्फोसिस", "इन वेस्टिनोशन्स आफ ए डाग" या अज्ञेय की "कोठरी की बात", "देवी सिंह" आदि कहानियां। "मेटामार्फोसिस शीर्षक कहानी के

१—कृति : २४ : पृ० ११-१२।

२—कृति : २४ : पृ० ६।

आरंभ में[1] एक एन्द्रजालिक (फैन्टैस्टिक) आघात देकर काफ्का अपनी लम्बी कहानी में जिस वैचारिक वक्तव्य के लिए अवकाश निकाल लेते हैं वह मानों आधुनिकता के एक तीसरे महत्वपूर्ण स्तर की व्याख्या है।

कहानी में कहानीकार

रचना-प्रक्रिया के प्रति जागरूक लेखक अपने अनुभव की सामग्री को आकलित करते समय रचनात्मक वस्तु से स्वयं ही अपरिहार्य रूप में सम्बद्ध हो जाता है। यही कारण है कि आज का रचनाकार यथार्थ का साक्षात्कार (और किसी बिन्दु पर प्रत्याख्यान) करते हुए "रचना" में व्यक्त "चरित्र" से एकाकार हो उठता है। पर आधुनिक रचनात्मक "कृति" में यह स्थिति अनायास ही घटित होती है। आज की "कहानी" में हम अनुभव करते है कि कहानीकार "तटस्थ" होकर भी "कहानी" की अनुभव-सामग्री में एक चरित्र (इमेज) की भाँति विद्यमान है। अपने इसी प्रयत्न में कहानीकार अपने पाठक से "कहानी" के कथानक के उस संश्लिष्ट बिन्दु पर मिलता है जहां "कहानी" में वर्णित वक्तव्य स्वतः सम्प्रेषणीय हो उठता है। कहानीकार "कहानी" में अपनी कल्पना का उपयोग अपने बोध या अनुभव के जगत् को पुनः रचित करने के उद्देश्य से ही करता है।[2] वह अपने लिए ऐसी कल्पना-भूमि का सृजन करता है जो प्रत्यक्ष और तात्कालिक यथार्थ से कहीं अधिक यथार्थ और वास्तविक होती है। वह अपने चरित्रों के भीतर अपनी अन्तर्दृष्टि डाल देता है और यथार्थ के भीतरी रूपों या स्तरों के निर्माण में सफल होता है। आज के कहानीकार के लिए सृजन यदि पलायन है, तो किसी अधिक यथार्थ जगत् के भीतर प्रविष्ट होने के लिए। सामरसेट माम का निम्नलिखित वक्तव्य इस दृष्टि से पठनीय है: रचनाकर्त्ता में "कहानी" के अन्य चरित्रों की भाँति स्वयं भी एक चरित्र ही होता है...परन्तु जो रचनाकार इस

१—"ऐज ग्रेगर सैम्सा, अवोक वन मार्निग फ्राम अनइज़ी ड्रीम्स ही फाउन्ड हिमसेल्फ ट्रान्सफार्म्ड इन हिज बेड इन्टू ए जिगैन्टिक इन्सेक्ट।"
—मेटामार्फोसिस ऐन्ड अदर स्टोरीज़ : फ्रैन्ज़ काफ्का : पृ० ९।

२—"द इमैजिनेशन रिक्रिएट्स द वर्ल्ड आफ द सेन्स।"
—द नावेल ऐन्ड द रीडर : कैथरीन लीवर : पृ० ४७।

युक्ति का उपयोग करता है-उसके पाठक को स्मरण रखना चाहिए कि वह अपना विश्वनीय चित्र नहीं प्रस्तुत कर रहा है, बल्कि कहानी की विशिष्ट सोद्देश्यता के अनुरूप एक "चरित्र" की रचना ही कर रहा है ।[1]

कहानीकार का "कहानी" के किसी महत्वपूर्ण संश्लिष्ट बिन्दु पर उपस्थित होना, रचनात्मक पद्धति को बहुत दूर तक प्रभावित करता है। प्रख्यात समीक्षक पर्सील्यूवक ने इसे ही कहानी-कला का आधरभूत प्रश्न कहा है और प्रतिपादित किया है कि कहानी कला के अन्य उपकरणों की समीक्षा करने से पूर्व इसी बिन्दु से समीक्षक को विचार करना चाहिए ।[2]

कहानी की रचना–प्रक्रिया और पाठक

जैसे कहानी के रचे जाने की एक अर्थपूर्ण प्रक्रिया होती है, वैसे ही कहानी पढ़ने की भी प्रक्रिया है । पर्सील्यूबक ने बहुत पहले इस दिशा में यह महत्वपूर्ण अभिमत प्रकट किया था कि रचना को पढ़ते हुए पाठक स्वयं एक तरह की सर्जनात्मक प्रक्रिया से गुज़रता है और वह सहज तथा अनायास रूप में रचना पढ़ते समय एक अन्य रचना की अपने मानस में सृष्टि करता

१–"बट द 'आई' हू राइट्स इज़ जस्ट ऐज़ मच ए कैरेक्टर इन द स्टोरी ऐज़ द अदर पर्सन्स विद हूम इट इज़ कन्सर्न्ड । ही में बी द हीरो, आर ही में बी ऐन आनलुकर आर ए कान्फिडेन्ट । बट ही इज़ ए कैरेक्टर । द राइटर हू यूज़ेज़ दिस डिवाइस इज़ राइटिंक फिक्शन.....ही (द रीडर) मस्ट रिमेम्बर दैट द आथर इज़ नाट ड्राइंग ए फेथफुल पोर्ट्रेट आफ़ हिमसेल्फ, बट क्रिएटिंग ए कैरेक्टर फ़ार द पर्टिकुलर पर्पज़ेज़ आफ हिज स्टोरी ।"
–"द कम्प्लीट शार्ट स्टोरीज़ आफ सामरसेट माम, जिल्द २, भूमिका : पृ० ८ ।

२–"द होल इन्ट्रिकेट क्वेश्चन आफ़ मेथड, इन द क्रैफ्ट आफ़ फिक्शन, आइ टेक टु बी गवर्न्ड बाई द क्वेश्चन आफ द प्वाइन्ट आफ़ व्यू-द क्वेश्चन आफ द रिलेशन इन ह्विच द नैरेटर स्टैण्डस् टु द स्टोरी ।"
–द क्रैफ्ट आफ़ फ़िक्शन : पर्सी ल्यूवक : पृ० २५१ ।

है।[1] कहा जा सकता है कि कहानी पढ़ते हुए पाठक एक (तदनुरूप) कहानी –प्रतिमा का निर्माण करता है। इस दृष्टि से पढ़ने की क्रिया को रचनात्मक क्रिया[2] मानना उचित ही है पर कहानी जैसे साहित्य-रूप के उपादानों पर विचार करते हुए मानना पड़ता है, कि उसके पाठ की प्रक्रिया एक ही साथ रचनात्मक और व्याख्यात्मक दोनों ही होती है।[3] कहानी का पाठक जब कहानी को पढ़ते समय कहानी में बिखरी हुई घटनाओं के प्रभावात्मक लक्ष्य को पाने की व्याकुलता से, कथानक चरित्र, वातावरण के बीच के सम्बन्ध को ग्रहण करने के प्रयत्न में अपनी संवेदनशीलता का उपयोग करता है तो मानों एक महत्वपूर्ण–रचनात्मक दायित्व का निर्वाह करता है। यह कहानी साहित्य के विकास की दिशा पर निर्भर है कि वह (अर्थात् कहानी) पाठकों की संवेदनशीलता का निरन्तर निर्माण और परिष्कार करती रहे। आधुनिक कहानीकार चाहते तो हैं कि उनके अपने पाठक विशेष संवेदनशील हो,[4] पर वे उनकी संवेनशीलता का निर्माण करने में कितना योग देते हैं, इस पर ही कहानी के रचनात्मक पाठ की सम्भावना निर्भर करती है।

आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने "कविता क्या है" शीर्षक निबन्ध में लिखा है : "जहाँ कवि पूर्ण चित्रण नहीं करता वहाँ पाठक या श्रोता को भी अपनी ओर से कुछ मूर्ति-विधान करना पड़ता है।"[5] कहना न होगा, कि

१–द क्रैफट आफ फिक्शेन : पर्सील्यूवक : पृ० १७।

२–साधारण पाठक : सहज दृष्टि : कहानी पाठ की प्रक्रिया : डा० नामवर सिंह : नयी कहानियाँ : जनवरी ६१ : पृ० ७३।

३–द क्रैफट आफ फिक्शन : पर्सील्यूवक : पृ० २०।

४–"मेरा पाठक संवेदनशील हो, यह मैं उससे चाहता हूं। क्योंकि बिना इसके वह उसे नहीं अपना सकता जो मेरी संवेदना ने ग्रहण किया। जो स्वयं संवेदनशील नहीं है वह यह नहीं पहचानता कि सबकी संवेदना अलग-अलग होती है—उसके निकट संवेदना का एक बना-बनाया ढाँचा होता है। वह किसी अनुभव को तद्वत् ग्रहण ही नहीं कर सकता, केवल उसके टुकड़े-टुकड़े करके अलग-अलग खांचों में रख सकता है।"
—निवेदन : एक बूँद सहसा उछली : अज्ञेय : पृ० १४।

५– कविता क्या है : चिन्तामणि : पहला भाग : रामचन्द्र शुक्ल : पृ० १६२।

"कहानी" के रचनात्मक पाठ की सम्भावना के लिये उत्सुक कहानीकार भी पाठक को अपनी ओर से कुछ मूर्ति-विधान करने के लिये आमन्त्रित करता है। पाठक की पाठ-प्रक्रिया हमारे विषय से सीधे सम्बद्ध नहीं है, अतः अधिक विस्तार से विचार कर सकना यहाँ सम्भव नहीं है पर इतना संकेत अवश्य करना है कि व्यक्तित्व-तत्व की प्रधानता[1] को स्वीकार करने के बाद ही कृतिकार, पाठक और समीक्षक रचना-प्रक्रिया की चेतना को समझने की दिशा में आगे बढ़ सके हैं।

१- इलियट का काव्यगत अव्यक्तिवाद : डा० नगेन्द्र : प्रतीक : ८।

१
प्राचीन हिन्दी कहानी

क—प्रस्तुत युग की कहानी अर्थात् प्राचीन हिन्दी कहानी

यथार्थ बोध का अभाव : कल्पना का अतिरेक

प्रेमचन्द पहले कहानी लेखक हैं जिनके कृतित्व के साथ 'आधुनिकता' नामक प्रवृत्ति का उदय कथा-साहित्य के क्षितिज पर हुआ। इस दृष्टि से 'पूर्व प्रेमचन्द युग' की हिन्दी कहानी को हम 'प्राचीन हिन्दी कहानी' कह सकते हैं। प्रेमचन्द से पहले कहानी अपने रूपविधान और अपने प्रयोजन में प्राचीन परम्परागत रूढ़ि से इस प्रकार बँधी हुई है, कि उसमें समाज एवं समाज के सदस्य व्यक्ति की वास्तविक समस्याओं के निदर्शन के लिए कम सम्भावना दिखाई पड़ती है। पूर्व प्रेमचन्द–युग की, अर्थात् प्राचीन हिन्दी कहानी की इन सीमाओं में यथार्थबोध के अभाव की सीमा सबसे बड़ी है। यथार्थबोध के उदय के साथ रचना में सामाजिक वास्तविकता का चित्रण करने की जो विश्वसनीय क्षमता आती है, वह प्राचीन कहानी में बहुत कम है। प्रेमचन्द ने जब कला के सम्बन्ध में लिखा था कि वह यथार्थ होती नहीं, पर यथार्थ दिखाई देती है[1] तो उन्होंने इसी विश्वसनीयता की उपेक्षा पर बल दिया था, जिसकी पूर्ति प्राचीन कहानी में नहीं दिखाई पड़ती। इस दृष्टि से प्राचीन कहानी में

१– "कला दीखती तो यथार्थ है, पर यथार्थ होती नहीं। उसकी खूबी यही है कि वह यथार्थ न होते हुए भी यथार्थ मालूम हो।"

—साहित्य का उद्देश्य—प्रेमचन्द—पृ० ४२

यथार्थ के नाम पर मनोवैज्ञानिक सत्यता और जीवन की जटिल वास्तविकता[1] ढूँढ़ना व्यर्थ है। प्राचीन कहानी में कल्पनातिरेक का इतना प्राधान्य है कि उसमें घटना से आगे आकर घटना-हेतु की पहचान स्पष्ट नहीं होती। सामाजिक जीवन–प्रक्रिया में असम्भव कार्यों और चरित्रों की उद्‌भावना ही प्राचीन कहानी में लक्षित होती है। कहानी किसी निश्चित् सामाजिक परिणाम तक पाठक को ले जा सके, यह योग्यता उसमें विद्यमान नहीं है। अधिक से अधिक प्राचीन कहानी किसी अभिप्राय या नीति का आरोपण करना चाहती है, जबकि यह आधुनिक कला की स्वाभाविक अपेक्षा से बाहर की वस्तु है।[2] प्राचीन कहानी की कुतूहल मिश्रित चमत्कार भावना रचना में समाज के सम्बन्धों की संवेदना[3] को मूर्त नहीं होने देती, जो कलात्मक धर्म की परम आवश्यकता है। इसी प्रकार मानसिक जगत् के जटिल संघर्ष को रूपायित करने की क्षमता प्राचीन कहानी में विद्यमान नहीं है।

बौद्धिक तथा कलात्मक सुरुचि का अभाव

सामाजिक जीवन-मूल्यों की प्रतिष्ठा का अभाव प्रेमचन्द-युग से पहले की अधिकाँश कहानियों में है, यह केवल संयोग की बात नहीं है। यह सीमा एक सम्पूर्ण युग-बोध की सीमा है : केवल एक साहित्य-रूप की नहीं। प्राचीन कहानी का सारा रचनात्मक वातावरण इतना ऐन्द्रिजालिक है कि उसमें लाक्षणिकता रहित यथार्थ की प्रतिष्ठा कथानक-सृष्टि, चरित्र-निदर्शन, वातावरणसर्जना और संवेदना आदि में सम्भव नहीं है। यही कारण है कि प्राचीन कहानी में कुतूहल–प्रधान मनोरञ्जन का 'रस' तो है पर वह कलात्मक

१– "कहानी का क्षेत्र वस्तु से अधिक व्यक्ति का और स्थिति से अधिक गति का है। ··················कहानी में क्योंकि जीवित व्यक्तियों की अवतारणा है इससे शायद उसकी कला भी जीवन की कला से अलग या भिन्न नहीं होती है।" —साहित्य का श्रेय और प्रेय—जैनेन्द्र—पृ० ३५५–५६।

२– "बट देयर कैन बी आर्ट विदाउट पर्पज, देयर कैन नाट बी आर्ट विदाउट रेजल्ट।"

—लिट्रेचर एण्ड साइकालोजी : एफ० एल० ल्यूकस : पृ० ३०२।

३– "ओन्ली दोज थिंग्ज आर रिकग्नाइज्ड ऐज आर्ट फार्म्स ह्विच हैव ए कान्शस सोशल फैक्शन।"

—स्टडीज इन ए डाइंग कल्चर : काडवेल, क्रिस्टोफर : पृ० ४४।

सुरुचि उसमें कहीं उपलब्ध नहीं होती[1] जो आधुनिक कहानी के साथ रचना का आवश्यक अंग बनकर विकसित होती है। कहा जा सकता है कि परिस्थितियों का यथातथ्य अंकन करने वाली कहानी, जो रचना के रचनात्मक अर्थ की सम्भावना की पुष्टि करती है, प्राचीन कहानी-युग में विकसित नहीं हो सकी है। उसकी रचना–प्रक्रिया का विश्लेषण करने से हम इन सीमाओं को समझ सकते हैं।

कहानी की रचनात्मक आवश्यकताओं का बोध प्रेमचंद से पहले के कहानी लेखक में नहीं दिखाई पड़ता। प्रेमचंद-युग के लेखकों में यह चेतना अधिक स्पष्ट है कि "कहानी" केवल बाहर के स्थूल घटना सूत्रों के संग्रह या कल्पित अतिरंजित घटना-वैचित्र्य की सृष्टि में नहीं, बल्कि अन्तर्जगत् में घटित होनेवाले व्यापारों में निवास करती है।[2] इस चेतना के विकास की पृष्ठभूमि में प्राचीन कहानी की सीमाएँ अधिक सरलता से समझी जा सकती हैं।

प्राचीनता की सीमा-रेखा

यहाँ हम एक अन्य महत्वपूर्ण स्थिति की ओर संकेत करना चाहेंगे। जिन, कथाशिल्प एवं दृष्टिबोध की सीमाओं को लक्ष्य कर हम प्रेमचन्द से

१– "पुरानी कथा कहानियाँ अपने घटना वैचित्र्य के कारण मनोरञ्जक तो है, पर उनमें उस रस की कमी है जो शिक्षित रुचि साहित्य में खोजती है। हमारी साहित्यिक रुचि कुछ परिष्कृत हो गई है। हम हर एक विषय की भाँति साहित्य में भी बौद्धिकता की तलाश करते हैं। अब हम............काल्पनिक चरित्रों को देखकर प्रसन्न नहीं होते। हम उन्हें यथार्थ काँटे पर तौलते हैं ....।"

—साहित्य का उद्देश्य : प्रेमचन्द : पृ० ५०।

२– "...... वर्तमान युग का कहानी लेखक बाहर का कहानी लेखक नहीं, अन्दर का कहानी लेखक है। दुनियाँ को देखनेवाले बहुत हो चुके हैं, अब दिल और घर को देखनेवालों की आवश्यकता है। बाहर क्या हो रहा है? किस तरह हो रहा है? यह हर कोई देखता है। परन्तु घर और दिल के अन्दर क्या हो रहा है? वहाँ प्रवेश करना, उन्हें देखना और फिर जो कुछ वहां दिखाई दे, उसे दुनियाँ के सम्मुख रखना आसान नहीं। और यही समस्या है, जिसे हल करने के लिए बीसवीं सदी का कहानी-लेखक साहित्य में उतरा है।"

—तीर्थयात्रा (भूमिका) : सुदर्शन : पृ० ९–१०।

पहले की हिन्दी कहानी को प्राचीन हिन्दी कहानी कह रहे हैं, उसके कुछ उदाहरण आगे के युग में भी मिल सकते हैं। प्रेमचन्द, प्रसाद, सुदर्शन, कौशिक आदि लेखकों की कुछ प्रारंभिक कहानियां बड़ी सुविधा से 'प्राचीन कहानी' की परिभाषा के अन्तर्गत रखी जा सकती हैं। 'सघन रसाल कानन में मेघ-माला विभूषित गगन की छाया' को अंकित करनेवाली प्रसाद की 'ग्राम'[1] कहानी इसी कोटि की है। कौशिक की कहानी 'नेत्रोन्मीलन',[2] तथा सुदर्शन की कहानी 'पारिवारिक शिक्षा'[3] : इस स्तर की अन्य कहानियाँ हैं, जिनमें प्राचीन-कहानी-शिल्प की सीमाएँ स्पष्ट देखी जा सकती हैं।

ख—प्राचीन कहानी : प्रमुख कहानी लेखक तथा कृतित्वः प्रेरणाओं के स्रोत

प्रेमचन्द हिन्दी कहानी के ऐतिहासिक विकास-क्रम में एक आधुनिक युग के प्रवर्तक इसी दृष्टि से माने जाते हैं कि उन्होंने कहानी को, जिसका क्षेत्र तिलस्मी ऐयारी घटना-सन्दर्भों एवं रहस्यमय रोमांचक वृत्तान्तों तक ही सीमित था, मानव-चरित्र के सूक्ष्म रहस्यों के उद्घाटन और सामाजिक वास्तविकता के विविध रूपों के मार्मिक एवं विश्वसनीय चित्रण के योग्य बनाया। इस भूमिका में प्राचीन हिन्दी कहानी को रखकर देखने से उसकी रूढ़, वस्तुगत एवं शिल्पगत सीमाओं को ठीक-ठीक समझा जा सकता है।

प्राचीन कहानी के सर्वेक्षण से, उसकी दुर्बलताओं को समझना सरल है, पर उन कारणों की खोज कुछ कठिन है जो इस युग की कहानी में, रचनात्मक सौष्ठव के समावेश में, बाधक हुए हैं। ऊपर से देखने से ज्ञात होता है कि पुरानी मौखिक कहानी का आडम्बर और कृत्रिम लाक्षणिक भाषा, इस युग की कहानी में, स्वाभाविकता के विकास में बाधक हुई है। इसी अपरिपक्वता को लक्ष्य कर इस काल की कहानी को "जन्मकाल" या बाल्य-काल"[4] का साहित्य या शैशव काल का साहित्य[5] कहा गया है। पर,

---

१– ग्राम : छाया : प्रसाद : पृ २३।
२– मणिमाला : कौशिक।
३– पारिवारिक शिक्षा-सुदर्शन – सरस्वती : जुलाई १९२३।
४– साहित्य सरोवर : डा० गोपीनाथ तिवारी : पृ० ३२०-३२१।
५– हिन्दी गद्य के विविध साहित्य रूपों का उद्भव और विकास : डा० बलबन्त लक्ष्मण कोतमिरे : पृ० २१४।

इस अपरिपक्वता के पीछे, या अतिरंजित कल्पना का उपयोग कर यथार्थ का निषेध करनेवाली इस युग की कथा-प्रवृत्ति के पीछे कुछ निश्चित मनोवैज्ञानिक कारण भी है। प्रस्तुत युग की कहानी की सीमा में आनेवाले प्रमुख कृतित्व का अध्ययन करते हुए उस पर भी ध्यान देना समीचीन होगा।

पौराणिक आख्यानों पर या अतिरंजित कल्पना पर आधारित भारतेन्दु से पहले का कथासाहित्य जिन प्रवृत्तियों का बोध कराता है वे प्रधानतः निम्नलिखित रचनाओं में देखी जा सकती हैं—

क : लल्लूलाल कृत : "प्रेमसागर"

ख : सदल मिश्र कृत : "नासिकेतोपाख्यान"

ग : सैयद इंशा अल्ला खाँ कृत : "रानी केतकी की कहानी।

इनके परिचय से प्राचीन कहानी की मूल, अर्थात् आरम्भिक प्रवृत्तियों को सहज ही समझा जा सकता है।

लल्लूलाल कृत प्रेमसागर (१८०३-१८०९)

प्रस्तुत रचना के रूपात्मक विधान और गठन को देखते हुए यह मानने के लिए कोई तर्क संगत् आधार नहीं दिखाई पड़ता कि यह कृति "श्रीमद् भागवत के दशम स्कन्ध का उलथा मात्र है"।[1] वस्तुतः इस कृति में रचनाकार ने श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध के आधार पर कृष्ण के लीलामय रूप का निदर्शन करना चाहा है। रचनाकार के मन्तव्य के मूल में पौराणिक भावना तो है अन्यथा वह रचनात्मकता के उस जटिल संकल्प की ओर क्यों नहीं बढ़ता जो आधुनिक कृतिकार का मुख्य प्रेरक स्रोत होता है।

लल्लूलाल की प्रस्तुत रचना के संयोजन को देखने से ज्ञात होता है कि इसमें ९१ अध्याय हैं और इसमें कृष्ण के अविर्भाव से लेकर कंस-बध तथा महाभारत के नायक अर्जुन से भेंट तक का वृत्तान्त वर्णित है। इस कथा-ग्रन्थ का रचनाविधान अतिस्थूल है। हम पाते हैं कि एक कहानी स्थूल वर्णनात्मक रीति से कही जाती है और शेष कहानियाँ इस कहानी के सन्दर्भ को जोड़ती हुई, उसे आगे बढ़ाने का उपक्रम करती हैं। पुराण-शैली के अनुसार ये कहानियाँ श्री शुकदेव जी द्वारा राजा परीक्षित के प्रति कही गयी हैं।[2] इतना ही नहीं, इस कहानी की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति-पद्धति पर पौराणिक-शिल्प

१— हिन्दी गद्य-मीमांसा : रमाकांत त्रिपाठी : पृ १७०।

२— "इतनी कथा सुनाय" श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा, हे महाराज ! कंस तो इस अनीति से मथुरा में राज करने लगा और उग्रसेन

की स्पष्ट छाप है।[1] अभिव्यक्ति-पद्धति की यह दुर्बलता एक महत्वपूर्ण सीमा है जो ऐसी रचनाओं को कलात्मक योग्यता से वंचित रखती है और उन्हें साहित्यिक आदर्श की पूर्ति नहीं करने देती। आचार्य शुक्ल ने लल्लूलाल की भाषा को "काव्याभास गद्य"[2] की संज्ञा दी है, तो औचित्य का ही निर्वाह किया है। पर, हमारी दृष्टि में लल्लूलाल की रचना की सीमा भाषा की अकेली सीमा नहीं है, वह वस्तु की सीमा भी है। उस दृष्टिबोध की कमी, जो पौराणिक विषयों से रचनाकार को आगे नहीं बढ़ने देती, लल्लूलाल की सबसे महत्वपूर्ण सीमा है, जिस पर कम ध्यान दिया गया है। इस कृति पर जो भी विचार हुआ है, वह प्रायः भाषा के प्रश्न को लेकर। ग्रियर्सन के अनुसार तो लल्लूलाल ने इस कृति में व्यवहृत अपनी भाषा को गिलक्राइस्ट की अध्यक्षता में अर्जित किया।[3] डा० वार्ष्णेय ने इस भ्रामक मत का खंडन करते हुए तर्क-बुद्धि का ही उपयोग किया है।[4] पर उपर्युक्त कृति की रचनात्मक सीमाओं का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण नहीं किया गया है।

सदल मिश्र : नासिकेतोपाख्यान : १८०३

संस्कृत में वर्णित नचिकेता की कथा के आधार पर रचित, सदल मिश्र

दुख मरने, देवक जो कंस का चाचा था, उसकी कन्या देवकी जब व्याहन योग्य हुई तब विन्नैजा कंस से कहा कि यह लड़की किसको दें।

"—प्रेमसागर : लल्लूलाल।

१– इतनी बात के सुनते ही कृष्ण ने कदम्ब पर चढ़ ऊँचे सुर से ज्यौं बंशी बजाई तो सुन ग्वाल बाल और सब गायें मूँज वन को फाड़ कर ऐसे आनि मिलीं जैसे सावन भादों की नदी तुंग तुरंग को चीर समुद्र में जा मिले। —वही।

२– लल्लूलाल जी का काव्याभास-गद्य भक्तों की कथा वार्ता के काम का ही अधिकतर है।

"—हिन्दी साहित्य का इतिहास : पं० रामचन्द्र शुक्ल : पृ० ४९९।

३– "इट वाज द पीरियड आफ द बर्थ आफ द हिन्दी लैंग्वेज, इन्वेन्टेड बाइ द इंग्लिश, ऐन्ड फर्स्ट यूज्ड ऐज ए वेहिकिल आफ लिट्रेरी प्रोज कम्पोजीशन इन एट्टीन हन्ड्रेड एन्ड थ्री, अन्डर गिलक्राइस्ट्स ट्यूशन, बाइ लल्लूजी लाल, द आथर आफ प्रेमसागर।"

—द माडर्न वर्नाक्यूलर लिट्रेचर आफ हिन्दुस्तान (भूमिका) : ग्रियर्सन : पृ० २२ और १०७।

४– आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका : डा० ल० सा० वार्ष्णेय, पृ० २७२।

की यह कृति शुद्ध रूप से घटनात्मक तथा वर्णनात्मक है। वैशम्पायन और जनमेजय के संवादरूप में वर्णित यह कथा, पहले खंड में नासिकेत की उत्पत्ति और दूसरे खण्ड में उसकी यमलोक यात्रा का वर्णन करती है।

नासिकेतोपाख्यान : सदलमिश्र की इस कृति को देखते हुए इसके पौराणिक शिल्प का सहज बोध होता है। इस कहानी में वैशम्पायन मुनि राजा जनमेजय को बताते हैं कि ब्रह्मा-पुत्र उद्दालक मुनि के पास एक दिन, पिप्पलाद मुनि पधारे। उन्होंने उनके तप की व्यर्थता बताते हुए उन्हें वैवाहिक जीवन व्यतीत करने का सुझाव दिया। उद्दालक मुनि ने अपने श्वेत केशों का ध्यान कर सोचा, भला कौन उन्हें इस अवस्था में अपनी कन्या देगा। अन्ततः वे ब्रह्मा के यहां पहुँचे, जिन्होंने उन्हें आशीष दिया कि इक्ष्वाकु वंश की कोई कन्या उन्हें वरण करेगी, और वे एक योग्यपुत्र के पिता होंगे। उद्दालक लौटे तो अकस्मात ही उन्हें "बीज पतन" हो गया। उन्होंने उसे "कमल" में रखकर और "कुश" से बाँध कर गंगा के बहते जल में प्रवाहित कर दिया। संयोगवश यह कमल बहते-बहते राजा रघु की पुरी के समक्ष आ पहुँचा। राजा रघु की कन्या चन्द्रावती एक दिन अपनी सखियों के साथ गंगा-तट आयी, तो उसकी दृष्टि कमल के फूल पर पड़ी। उसने अपनी किसी सखी से वह फूल मंगाया, और उसे सूँघा ही था, कि वह बीज नाक के मार्ग से उसके पेट में चला गया और परिणामतः वह गर्भवती हो गयी। राजकुमारी के माता-पिता ने इस परिस्थिति में उसे पाकर, घर से निष्कासित कर दिया। राजकुमारी ऋषियों के तपोवन में जाकर रहने लगी। वहीं उसने एक पुत्र को जन्म दिया—क्योंकि वह नाक से जन्मा था, इसलिए उसका नाम "नासिकेत" पड़ा। राजकुमारी ने अनुभव किया कि पुत्र के जन्म से ऋषियों की सेवा-भावना में विघ्न पड़ता है अतः वह उसे "घास के बोझ" पर रखकर गंगा में प्रवाहित कर आयी। यहाँ तक का कथानक कहानी का पूर्वार्द्ध है जिसमें 'कुतूहल पूर्ण मनोरंजकता'[1] विद्यमान है।

उत्तरार्द्ध की कहानी यह है कि नासिकेत बहते-बहते, स्नान करते हुए ऋषि उद्दालक के समीप पहुँचे और उन्हीं द्वारा उनका पालन-पोषण हुआ। ऋषि ने अनुभव किया कि पितामह ब्रह्मा की भविष्यवाणी का एक पक्ष सत्य सिद्ध हुआ। दूसरी ओर राजकुमारी चन्द्रावती पुत्र विछोह से पीड़ित उद्दालक

१— "पहले भाग में हम कुतूहलवर्द्धक और मनोरंजक सामग्री पाते हैं। उसमें कहानी कला के आवश्यक तत्व समाहित हैं।

"—साहित्यचिन्तन : डा० ल०सा० वार्ष्णेय : पृ० ९०।

ऋषि के यहाँ पहुँची । और इसके अनन्तर समस्त संदर्भ से परिचित चन्द्रावती के पिता ने उसे विधिवत् उद्दालक को अर्पित कर दिया । इस प्रकार उद्दालक और चन्द्रावती अपने पुत्र नासिकेत के साथ रहने लगे । एक दिन उद्दालक ऋषि ने अपने पुत्र नासिकेत को कन्दमूलादि लेने के निमित्त वन में भेजा । वन की रमणीक नैसर्गिक सुषमा पर मुग्ध हो नासिकेत समाधिस्थ हो गए और सौ वर्षों तक इसी अवस्था में रहकर कन्दमूलादि सहित पिता की सेवा में पहुँचे । पिता ने क्रोध में आकर विवाद के बीच शाप दिया : कि नासिकेत ! तुम अभी यमलोक जाओ । नासिकेत योगबल से यम के यहाँ चले । चन्द्रावती को विलाप करते देख उद्दालक ने उन्हें वापस बुलाना चाहा पर वे माता-पिता को आश्वस्त कर यमलोक चले ही गये । वहाँ धर्मराज से वर प्राप्त कर पुनः माता-पिता की सेवा में आ उपस्थित हुए और उन्हें यम–लोक के सम्बन्ध में बहुत-सी ज्ञातव्य बातें बतायीं ।

कहानी की सम्पूर्ण रूपरेखा यहाँ हमने इस अभिप्राय से उद्धृत कर दी है कि यह स्पष्ट हो सके कि आकस्मिक तत्व की कितनी प्रधानता प्राचीन कहानी के परम्परागत शिल्प–विधान में उपस्थित है । नासिकेत के जन्म की प्रक्रिया से लेकर उनके यमलोक से प्रत्यावर्तन तक की सारी घटनाएँ आकस्मिक तत्व पर आधारित हैं । यह परम्परागत कहानी की रूढ़ि है, जिसने साहित्यिक उद्देश्य से लिखी हुई इस युग की कहानियों को भी प्रभावित किया है । आधुनिक कहानीकार यदि ऐसे किसी उपाख्यान का उपयोग अपनी कृति में करता, तो पहले उसे अतिशय कुतूहल मिश्रित संयोगभावना से मुक्ति पाने की आवश्यकता का अनुभव होता और संभवतः वह पूर्वार्द्ध की ही किसी घटना को लेकर उसे एक कल्पित सन्दर्भ प्रदान करने का उपक्रम करता । ब्रह्म ज्ञान की शिक्षा से सम्बद्ध कर रचनाकार ने अपनी कृति को जो धार्मिक अर्थ दे दिया है, वह प्राचीन कहानी–परम्परा की अन्य महत्वपूर्ण रूढ़ि है । भाषा की इतिवृत्तात्मक प्रतिक्रिया और उसकी विलम्बित लय[1] इस कहानी के शिल्प की एक तीसरी बड़ी सीमा है ।

१–"इस प्रकार से नासिकेत मुनि यम की पुरी सहित नरक का वर्णन कर फिर जौन जौन कर्म किये से जो भोग होता है सो सब ऋषियों को सुनाने लगे कि गौ, ब्राह्मण, माता पिता, मित्र, बालक, स्त्री, स्वामी, वृद्ध, गुरु इनका जो वध करते हैं वो झूठी साक्षी भरते, झूठ ही कर्म में दिन रात लगे रहते हैं, अपनी भार्य्या को त्याग दूसरे की स्त्री को व्याहते, औरों

सैयद इन्शा अल्ला खाँ : रानी केतकी की कहानी—कुछ विचारकों की दृष्टि में : हिन्दी की पहली कहानी (१८००-१८१०)

अनुमानतः इंशा ने अपनी यह महत्वपूर्ण कहानी १८००-१८१० के बीच लिखी। जो लोग इसे हिन्दी की पहली कहानी की संज्ञा देते हैं वे इसके शिल्पगत विकास और धार्मिकतारहित प्रयोजन को ही लक्ष्य करना चाहते हैं। इस कहानी की रचना करते हुए इंशा एक साहित्यिक प्रयोजन की पूर्ति करना चाहते हैं, ऐसा उन्हीं के संकल्प-संकेत[1] से प्रत्यक्ष है। यह संकेत भाषा सम्बन्धी दृष्टिकोण को समझने में ही नहीं, लेखक की रचना-प्रक्रिया को समझने में भी सहायक हो सकता है।

"रानी केतकी की कहानी" की कुल कहानी इतनी ही है कि किसी देश के राजकुमार उदैभान एक बार शिकार में किसी हिरनी का पीछा करते-करते वहाँ पहुँचे जहाँ चालीस पचास रंडियां[2] झूला झूल रही थीं। उनमें से एक थी : रानी केतकी, जिसके प्रति राजकुमार आसक्त हो उठे। फिर राजा

की पीड़ा देख प्रसन्न होते हैं और जो अपने धर्म से हीन पाप में ही गड़े रहते हैं वो माता पिता की हित-बात को नहीं सुनते, सबसे बैर करते हैं—ऐसे जो पापी जन हैं सो महा डरावने दक्षिण द्वार से जा नरकों में पड़ते हैं। "—नासिकेतोपाख्यान : सदल मिश्र।

सदल मिश्र–ग्रन्थावली : सं० नलिन विलोचन शर्मा पृ० २१।

१– "एक दिन बैठे–बैठे यह बात अपने ध्यान में चढ़ी कि कोई कहानी ऐसी कहिए कि जिसमें हिंदवी छुट और किसी बोली का पुट न मिले। तब जाके मेरा जी फूल की कली के रूप में खिले। बाहर की बोली और गंवारी कुछ उसके बीच में न हो।.........अपने मिलनेवालों में से एक कोई बड़े पढ़े लिखे पुराने धुराने, डाग, बूढ़े घाग यह खटराग लाए.........और लगे कहने, यह बात होते दिखाई नहीं देती। हिंदवीपन भी न निकले और भाखापन भी न हो। बस, जैसे भले लोग–अच्छों से अच्छे-आपस में बोलते चालते हैं ज्यों का त्यों वही सब डौल रहे और छाँव किसी की न हो। यह नहीं होने का।

—रानी केतकी की कहानी इंशा। पृष्ठ २-३। ना० प्र० सभासंस्करण।

२– "कहानी में एक शब्द अवश्य ऐसा आया है जो पाठकों को कुरुचिपूर्ण ज्ञात हो सकता है"। —विचार दर्शन : डा० रामकुमार वर्मा : पृ० ३२।

की ओर से एक ब्राह्मण दूत सम्बन्ध-प्रस्ताव लेकर रानी केतकी के पिता के यहाँ पहुँचा, जो स्वीकृत नहीं हुआ। परिणामत: लड़ाई हुई। रानी केतकी के पिता ने जोगी महेन्दर की सहायता से राजकुमार और उनके माता-पिता को हिरनी बना दिया। इधर रानी केतकी ने अपनी योगक्रिया के प्रभाव से राजकुमार की सहायता की, विजय दिलाई। अनन्तर वे विवाह सूत्र में बँधे। कुछ विचारकों की दृष्टि में इस कहानी के रचनाकार इन्शा एक नयी धारा का प्रवर्तन कर सके हैं[1] और उनकी यह कहानी हिन्दी की पहली कहानी है। कुछ विचारकर्ताओं ने इस कहानी को "कहानी" मानने से ही असहमति प्रकट की है।[2] कुछ आलोचकों ने इस कहानी पर मसनवियों और आख्यानक प्रेम काव्यों का प्रभाव माना है।[3] हमारी दृष्टि में इस कहानी को कहानी न मानना बहुत उचित नहीं होगा, क्योंकि फिर तो हमें कहानी की समस्त पिछली परम्परा को अस्वीकार करना होगा। फिर, रचना-प्रक्रिया के सम्बन्ध में जागरूकता जैसे-जैसे बढ़ती गई है, आधुनिक युग में, हम रचना के एक प्रकार को, उसके मिलते–जुलते दूसरे प्रकार से, कुछ सूक्ष्म विशेषताओं के आधार पर अलग करते गए हैं। प्राचीन साहित्य में इतना सूक्ष्म विवेक है ही नहीं। रचनाकार ने स्वयं इस "कृति" को "कहानी" की संज्ञा दी है (जैसा शीर्षक और लेखक के वक्तव्य से ज्ञात होता है), अत: इसे कहानी मानकर ही इसकी विशेषताओं एवं सीमाओं का मूल्याँकन करना उचित होगा।

इंशा की कहानी में भी संयोग तत्व की प्रधानता है। विषय की दृष्टि से यह कहानी इसी दृष्टि में आगे की कहानी मानी जा सकती है कि इसमें लौकिक श्रृंगार की, उपर्युक्त धार्मिक कहानियों की धर्मभावना की पौराणि-

---

१– इन्शा की कहानी को हम कहानी कला की दृष्टि से देखें तो यहाँ भी हम उनको नवीनधारा के प्रवर्तक के रूप में देखते हैं।"
–साहित्यचिन्तन –डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय– पृ० ७७।

२– "हिन्दी के कुछ आलोचकों ने "रानी केतकी की कहानी" को हिन्दी की पहली कहानी माना है लेकिन यह पूर्णत: अवैज्ञानिक है, यहाँ उन्होंने कहानी का तात्पर्य केवल कथा से लिया है। "–हिन्दी कहानी की शिल्प-विधि का विकास : –डा० लक्ष्मीनरायणलाल : पृ० ३८।

३– "पुरानी मसनवियों और आख्यानक काव्यों की प्रेम कहानी बहुत कुछ इसी प्रकार की होती थी।"
–विचारदर्शन –डा० रामकुमार वर्मा – पृ० ३१।

कता के स्थान पर, प्रतिष्ठा है। अन्यथा, अतिशय ऊहात्मक अलंकृति तो इस कहानी में भी विद्यमान है और वह प्राचीन कहानी के रूढ़–शिल्प का निर्वाह ही करती है।

अपने समक्ष प्रस्तुत रचनात्मक माध्यम की अपर्याप्तता का बोध इंशा के प्रयोग में स्पष्ट है। उन्होंने रोचक काव्यात्मक टुकड़ों[1] का उपयोग जहाँ तहाँ इसी बोध के परिणाम स्वरूप, अपनी कहानी में किया है। पर "उक्ति" की समान सीमाओं का उदाहरण उनके गद्यात्मक एवं काव्यात्मक वर्णनों से दिया जा सकता है।

प्रत्यक्ष है कि इन कहानियों (या कथा–प्रसंगों) में "चमत्कारपूर्ण और विस्मयादिबोधक प्रणाली"[2] का ही उपयोग किया गया है। रचना के प्रति अपेक्षित कलात्मक एवं रचना के सामाजिक उपयोग के प्रति सुनिश्चित सामाजिक चेतना इन प्राचीन कथा–प्रयोगों में कहीं उपलब्ध नहीं होती।

अन्य प्रयत्न : भारतेन्दु–युग

भारतेन्दु–युग के साथ कहानीलेखकों की एक अन्य पीढ़ी हिन्दी कहानीसाहित्य के क्षितिज पर आयी, जिसने "कहानी" की रूपविधि में सार्थक परिवर्तन किया और उसे युग के बोध की अभिव्यक्ति के लिए सक्षम माध्यम बनाने का प्रयास किया। यद्यपि रचना-प्रक्रिया के प्रति आधुनिक रचनाकारों

१–जी लगा कर केवड़े में केतकी का जी खिला।
सच है दोनों के ज़ियों को अब किसी की क्या पड़ी।
–उद्धृत : आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका : ल० सा० वार्ष्णेय पृष्ठ २७९।

० ० ०

रानी को बहुत–सी बेकली थी।
कब सूझती कुछ बुरी भली थी॥
चुपके चुपके कराहती थी।
जीना अपना न चाहती थी॥ —वही, पृष्ठ २८६।
छा गयी ठंडी साँस झाड़ों में।
पड़ गयी कूक सी पहाड़ों में॥ —वही, पृष्ठ २८६
(रानी केतकी की कहानी–इन्शा।)

२–आधुनिक साहित्य : पं० नन्ददुलारे वाजपेयी–पृ० २४०

के समान जागरूक प्रतिक्रिया इन लेखकों के कृतित्व में भी नहीं परिलक्षित होती, पर इन लेखकों की रचनायें आगे आकर सामाजिक जीवन की समस्याओं का स्पर्श करना चाहती हैं । प्राचीनता से किंचित् बंधी हुई इस युग की कहानियाँ सामाजिक और राजनीतिक चेतना का जहां–तहाँ आभास देती हैं । इस दृष्टि से कहानी के विकास का यह एक महत्वपूर्ण बिन्दु है, जिस पर रुककर विचार करना आवश्यक है । साथ ही इस वर्ग की कहानियों पर कोई मत देने से पूर्व समाजशास्त्रीय दृष्टि से उन सामाजिक, राजनीतिक तथा साँस्कृतिक परिस्थितियों का परिचय प्राप्त कर लेना, यहाँ प्रासंगिक रूप से आवश्यक जान पड़ता है–जिनकी प्रतिक्रिया का उपयोग करते हुए ये कहानियाँ लिखी गयी थीं ।

भारतेन्दु–युग की साहित्यिक शक्तियों को जिन आन्दोलनों से उत्तेजना एवं प्रेरणा मिली उनमें दयानन्द का आर्य समाज आन्दोलन, ब्राह्मसमाज का आन्दोलन, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थ द्वारा प्रवर्तित धार्मिक या आध्यात्मिक आन्दोलन आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं । साथ ही श्रीमती एनीबेसेन्ट की थियोसोफिकल सोसायटी का महत्व युग की सामाजिक शिक्षा-चेतना के निर्माण में प्रमुख है । इन व्यक्तित्वों में जो दृढ़ चेतना एवं क्रान्ति की साहसिकता लक्षित होती है उसका महत्व अविस्मरणीय है ।[1]

साथ ही, राजनीतिक क्षेत्र में १८५७ की व्यापक क्रान्ति, विश्वविद्यालयीय स्तर पर अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार, १८८५ में भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस का जन्म : अन्य महत्वपूर्ण घटनायें हैं जिन्होंने तत्कालीन रचनाकारों के मानस को आन्दोलित किया और नयी प्रेरणाओं के क्षितिज से उन्हें परिचित कराया । इस काल की कुछ कहानियाँ यदि प्राचीन संस्कारों के कुहासे से निकलने का उपक्रम करती हुई दिखाई पड़ती हैं, तो इन्हीं महान घटनाओं की प्रतिक्रिया के कारण ।

१–"इफ सम आफ मार्डन इन्डियाज़ ग्रेटमेन हैव क्लेम्स टु बी रिमेम्बर्ड मोर इन द सोशल ऐन्ड रेलीजस ऐन्ड लिट्रेरी फील्ड्स दैन इन द पोलिटिकल, द स्पिरिट आफ रेजिस्टेन्स, चैलेन्ज ऐन्ड रिवोल्ट इज़ नन द कैरेक्टरिस्टिक आफ देयर मेसेज ऐन्ड लाइफ वर्क"–द सोशियालाजी आफ रेसेज़, कल्चर्स ऐन्ड ह्यूमन प्रोग्रेस : स्टडीज़ इन द रिलेशन्स बिटवीन एशिया ऐन्ड योरो-अमेरिका : डा० वि० कु० सरकार पृ०३०२ ।

भारतेन्दु–युग की हिन्दी कहानी (जिसके विविध उदाहरण तत्कालीन पत्र–पत्रिकाओं : कविवचन सुधा, हरिश्चन्द्र मैगजीन, हरिश्चन्द्र चन्द्रिका, हिन्दी प्रदीप, ब्राह्मण आदि में प्राप्त हैं) में शिल्प सम्बन्धी कुछ पुरानी रूढ़ियों के निर्वाह के होते हुए भी राष्ट्रीय एवं सुधारवादी सामाजिक चेतना का आभास मिलता है। यह इस युग की एक बड़ी उपलब्धि है।

प्रस्तुत युग के कुछ प्रमुख कहानी लेखक है–बालकृष्ण भट्ट, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रतापनारायण मिश्र, बाबू बालमुकुन्द गुप्त, किशोरीलाल गोस्वामी, गिरजादत्त वाजपेयी, कार्तिकप्रसाद खत्री, रामचन्द्र शुक्ल, बंग महिला, यशोदानन्दन अखौरी, पार्वतीनन्दन, सूर्यनारायण दीक्षित आदि। यह सूची दूर तक बढ़ायी जा सकती है, पर यह हमारा प्रयोजन नहीं है। हम प्रस्तुत युग की रचना-प्रक्रिया पर विचार करने के लिए कुछ महत्वपूर्ण और प्रतिनिधि कहानियाँ चुन सकते हैं, जिनके द्वारा प्राचीन हिन्दी कहानी की रचनात्मक शक्ति और सीमा का मूल्याँकन सहज हो।

उपर्युक्त कहानी लेखकों के रचनात्मक प्रयत्नों को देखते हुए हम अनुभव करते हैं कि इनकी प्रेरणाओं के स्रोत इंशा, सदल मिश्र और लल्लूलाल के प्रेरणा स्रोतों से भिन्न हैं। यही कारण है कि इन लेखकों की कहानियाँ पूर्ववर्ती लेखकों के कहानी-शिल्प से भी, आँशिक रूप में आगे जाना चाहती हैं, यद्यपि उनकी संख्या बहुत अधिक नहीं है।

ग–प्रस्तुत युग की रचना–प्रक्रिया का अध्ययन

कहानी-कला के विभिन्न तत्वों पर पुनर्विचार
रचनात्मक प्रक्रिया के अध्ययन का प्रश्न

हम मानते हैं कि शास्त्रीय-समीक्षा द्वारा निर्धारित कहानी-कला के विभिन्न पारिभाषिक तत्व : कथानक, चरित्रचित्रण, वातावरण-सृष्टि, चरम कौतूहल एवं संघर्ष, संवेदना, भाषाशिल्प, प्रयोजन आदि : वे कतिपय सुविधाजनक संज्ञाएं हैं जिनके अनुसार किसी युग की कहानी का विश्लेषण करते हुए हम कहानी की रचना-प्रक्रिया से सम्बन्धित अन्य महत्वपूर्ण-समस्याओं तक पहुंच सकते हैं। रचना-प्रक्रिया इन उपर्युक्त पारिभाषिक तत्वों में सीमित नहीं होती, पर इन तत्वों के विश्लेषण से कहानी-साहित्य की रचनात्मक पद्धति की उन विशेषताओं से परिचित हुआ जा सकता है, जो प्रकारान्तर से हमें युग की विशेष रचना-प्रक्रिया के अन्य महत्वपूर्ण प्रश्नों तक ले जा सकें। अस्तु, कहानी-कला के तत्वों की दृष्टि से इस युग की कहानी (और आगामी अध्यायों

में आगे के विकास युगों की कहानी) का अध्ययन करना हमारा लक्ष्य नहीं, उपलक्ष्य ही है, पर है वह महत्वपूर्ण, क्योंकि रचनाकारों द्वारा दी हुई निजी टिप्पणियों एवं व्याख्याओं के अभाव में, उसके प्रकाश में ही, रचना-प्रक्रिया सम्बन्धी वैशिष्ट्य को समझना संभव है।

कठिनाई यह है, कि "कहानी" को उपर्युक्त तत्वों में विभाजित करते हुए उनके ठीक-ठीक स्वरूप और उनकी सही सीमा-रेखा का विश्लेषण करने की आवश्यकता बहुत कम समझी गयी है। इस कठिनाई को अधिक स्पष्ट करने के लिए "कथानक" का उदाहरण लिया जा सकता है। "कथानक" की शास्त्रीय व्याख्या करने वाले आचार्यों और समीक्षकों ने उसकी भिन्न-भिन्न आवश्यकताओं और सीमाओं को लक्ष्य करने का यत्न किया है। जैसे : अरस्तू ने कथानक में कार्य-व्यापार की एकता, अपने में पूर्णता अर्थात् आत्मनिर्भरता की अपेक्षाओं पर बल दिया है।[1] ई० एम० फार्स्टर ने कथानक में घटना की अपेक्षा बताते हुए उसमें निहित कार्य-कारण-सम्बन्ध पर बल दिया है।[2] एडविन म्योर ने कथानक-निर्माण में घटनाओं के क्रम के निर्वाह की आवश्यकता की ओर संकेत किया है।[3] एक ओर कहानी में कथानक के प्रश्न को घटना की आधारभूत निर्माणक्रिया से सम्बन्धित करने की प्रवृत्ति है, तो दूसरी ओर ऐसे भी समीक्षक हैं जो "कथानक" (प्लाट) शब्द को ही समुद्र में फेंक देना चाहते हैं कि वह पुनः अवतीर्ण न हो[4] या जो कथानक को कथासूत्र का पर्याय समझ कर उसे "पाठकों के दिमाग की उपज"[5] मानते हैं। इन धारणाओं और युक्तिओं के पीछे कोई न कोई भ्रान्ति अवश्य है। जिस सीमा का कहानी कला के, शास्त्री-समीक्षा द्वारा निर्धारित, तत्वों की असमर्थता की संज्ञा दी जा रही है वह संभवतः कहानी-कला के उचित उपयोग की असमर्थता ही है। यही कारण है कि कथानक की व्याख्या करते हुए डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा ने कथाँश और कथानक के तात्विक अन्तर को स्पष्ट करना चाहा है और संबंध योजना के ऐसे स्वरूप पर बल दिया है जिससे कथानक के भीतर आए हुए

१—पोएटिक्स ऐन्ड रेटारिक : अरिस्टाटिल : पृ० १७

२—ऐस्पेक्ट्स आफ द नावेल : ई० एम० फार्स्टर : पृ० ८२

३—द स्ट्रक्चर आफ द नावेल : एडविन म्योर : पृ० १६

४—क्रिएटिव टेकनीक इन फिक्शन : फ्रैन्सिस विपिन : पृ० ४२–४३

५—हाशिये पर : नामवर सिंह : पृ०६९ : नयी कहानियाँ : अगस्त : १९६१।

प्रभाव परिणाम के पूर्व उससे सम्बद्ध कार्य और उस कारण की सिद्धि में सहायता करने वाले एक या अनेक कारण सब स्फुटित हो जांय'।[1] तथा, डा० लक्ष्मीनारायण लाल ने "कथानक" का जन्म कहानीकार की उन अनुभूतियों से माना है जिसके धरातल अथवा मूल प्रेरणा से कहानीकार अपनी कहानी का निर्माण करने बैठता है।[2] सूक्ष्मता से विचार करने से ज्ञात होगा कि कथानक घटनाओं का संकलन नहीं है, घटनाओं का कालक्रमानुसार किया गया निर्वाह भी नहीं है, बल्कि घटनाओं के बीच का एक आभ्यंतर सम्बन्ध है जो हर श्रेष्ठ कहानी के रचनात्मक प्रयोजन का आधार होता है। उस पर ध्यान न देने के कारण ही कथानक के सम्बन्ध में इतनी भ्रान्ति प्रचलित है। जो कहानीकार या विचारक "कथा" और "कथानक" के भेद को नहीं समझ पाते वे एक या एक से अधिक पात्रों के अनुभवों तथा घटनाओं के क्रमिक अनुबन्धन को ही कथानक मान लेते हैं।[3]

रचनाकार कथानक को निषिद्ध मानकर कहानी की रचना नहीं करता, बल्कि वह उसे अपने प्रयोजन के अनुरूप अधिक से अधिक सूक्ष्म बनाता है। इसलिए कहानी-कला के तत्वों पर विचार करते हुए उसके उचित स्वरूप पर ध्यान देने की आवश्यकता है। हमारी दृष्टि में इन तत्वों की भूमि पर कहानी के रचनाविधान की सीमाओं पर ध्यान देने से कहानीकार की रचना-प्रक्रिया की सीमाओं को समझना सुविधाजनक है।

प्रस्तुत युग की कहानी का कहानी—कला के विभिन्न तत्वों की दृष्टि से अध्ययन

कथानक—

प्रस्तुत युग की कहानियों को ध्यानपूर्वक देखने से ज्ञात होता है कि इनके रचनाकारों ने कथानक-निर्माण की आवश्यकताओं को समझने का उपक्रम नहीं किया है। इस काल में रचित अधिकाँश कहानियों के कथानक स्थूल

१—कहानी का रचना-विधान : डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा : पृ० ४१ :

२—हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास : डा० लक्ष्मीनारायणलाल पृ० ३२३—२४।

३—हिन्दी कथा साहित्य की भूमिका : प्रतिनिधि कहानियां : पहाड़ी : पृ० १७।

वर्णनात्मक हैं और घटनाओं के कुतूहलपूर्ण चमत्कार पर ही आधारित हैं। इनमें कहानी के सम्पूर्ण-प्रभाव को नुकीला बनाकर प्रस्तुत करने की कलात्मक क्षमता है ही नहीं। इन्हीं या ऐसी ही कहानियों को लक्ष्य कर कथानक को कथा-सूत्र का पर्याय मान लिया जाता है और कथानक से रचना को विच्छिन्न कर लेने की समस्या को साम्प्रतिक महत्व का विषय बना दिया जाता है। यह बात हम "प्लैग की चुड़ैल"[1] और "चन्द्रलोक की यात्रा"[2] जैसी अति-साधारण कहानियों को ध्यान में रखकर नहीं, किशोरीलाल गोस्वामी की प्रसिद्ध कहानी "इन्दुमती"[3] (जिसे कुछ लोग हिन्दी की पहली साहित्यिक कहानी मानते हैं) तथा रामचन्द्र शुक्ल की प्रख्यात कहानी "ग्यारह वर्ष का समय"[4] को ध्यान में रखकर कह रहे हैं। इन कहानियों में अनेक भावप्रति-क्रियाएँ जगानेवाली घटनाओं का विधान है पर इनका कथानक इतना सपाट है कि उसे बड़ी सरलता से किसी कथासूत्र के रूप में निःशेष किया जा सकता है। घटनाओं के बीच का जो सूक्ष्म रचनात्मक सम्बन्ध आदर्श कथानक कहला सकता है, वह इन कहानियों की अतिस्थूल वर्णनात्मकता में खो जाता है। यहां तक कि इन कहानियों के कुछ अत्यन्त मार्मिक भावपूर्ण स्थल[5] स्थूल वर्णनात्मकता के दबाव में अपना प्रभाव खो बैठते हैं।

किशोरीलाल गोस्वामी की कहानी 'इन्दुमती' का कथा–सार कुल इतना है : इन्दुमती अपने वृद्ध पिता के साथ विन्ध्याचल के घने जंगल में रहती थी। जब से उसके पिता वहाँ कुटी बनाकर रहने लगे, वहीं रही, न जंगल के बाहर निकली न किसी दूसरे का मुख देख सकी। जब वह चार वर्ष की थी, उसकी माँ चल बसी। तभी उसके पिता उसे लेकर बनवासी हुए। बोधयुक्त होने पर भी वह पशुपक्षियों वृक्षावलियों और गंगा के प्रवाह के अतिरिक्त अन्य

१– ले० भगवानदास : सरस्वती, भाग ३, संख्या ९।

२– ले० केशवप्रसाद सिंह : सरस्वती हीरक जयन्ती विशेषाँक : पृ० १४७।

३– सरस्वती, भाग १, संख्या ६, जून, १९०० ई०।

४– सरस्वती, भाग ४, संख्या ९, सितम्बर, १९०३ ई०।

५– "एक दिन वह (इन्दुमती) नदी में अपनी परछाईं देखकर बड़ी मोहित हुई, पर जब उसने जाना कि यह मेरी ही परछाईं है, तब बहुत ही लज्जित हुई, यहाँ तक कि उस दिन से फिर कभी उसने नदी में अपना मुख नहीं निहारा।"

–इन्दुमती : सरस्वती भाग १, संख्या ६, पृ० १७९।

साँसारिक सुखोपकरणों से अनभिज्ञ थी। अचानक एक दिन नदी के स्वच्छ जल में अपना प्रतिबिम्ब देखकर वह अपने ही प्रति मोहित हुई पर फिर उसे इतनी लज्जा हुई कि वह कभी नदी में अपना प्रतिबिम्ब न देख सकी। एक दिन उसने एक युवक को देखा। यह पिता को छोड़ कर, पहला ही व्यक्ति था, जिसका साक्षात्कार उसने किया। व्रीड़ा के प्रभाव से उसका मुख लाल हो आया। पर वह युवक सामने आ खड़ा हुआ। बोला : हे सुन्दरी, तुम वन कन्या हो या वनदेवी हो! इन्दुमती उसे अपने साथ लायी। इन्दुमती के पिता क्रुद्ध होकर उसे प्राणदंड देना चाहते थे, पर पुत्री की प्रार्थना पर ही उसे उन्होंने क्षमा दी। अचानक ही २०, २५ हट्टे-कट्टे आदमियों ने आकर उसे बन्दी बनाया। बाद में यह जानकर कि वह युवक राजकुमार है, वृद्ध पिता ने अपनी कन्या उसे दे दी।

कथानक की दृष्टि से उपर्युक्त कथा–सूत्र पर विचार करने से रहस्य-पूर्ण संयोग-प्रधान घटनाओं के उपयोग की स्थूल सीमाओं का सहज ही अनुमान किया जा सकता है। जीवन और परिस्थितियों के बीच की सूक्ष्म सम्बन्ध–रेखा का निर्माण जिस पद्धति से कहानीकार कथानक–सृजन के क्षेत्र में करता है, उस पद्धति का उपयोग वस्तुतः इस, तथा इस प्रकार की अन्य समाकालीन कहानियों में किया ही नहीं गया है। बड़ी सरलता से उपर्युक्त कहानी का कथानक कथा–सूत्र में निःशेष किया जा सकता है जिसमें पिता के साथ रहती हुई अकेली कन्या का, अपने जीवन के प्रथम पुरुष के प्रति आकर्षित होना और आकस्मिक-संयोग से विवाहित होना आदि प्रसंग स्थूल रूप में रख दिये गए हैं। कथानक–रचना में, फार्स्टर ने एक रहस्यात्मक भंगिमा की अपेक्षा पर बल दिया था जिसका भावन करने के लिए बुद्धि का उपयोग आवश्यक प्रतीत हो।[1] ऐसी कोई रहस्यात्मक भंगिमा जो प्रतिपाद्य की प्रेरणा को आवृत्त नहीं करती, एक कौंध के साथ प्रकाशित कर देती है, इस काल की कहानियों के कथानक का अंग नहीं है। कहानी के कथानक को रहस्यात्मक घटनाओं से भर देना, बड़ी साधारण बात है, पर उसमें निहित रहस्य-सन्दर्भ को किसी नुकीले बिन्दु पर सजीव कर देना कहानी के विकसित शिल्प पर निर्भर है। इस स्थिति को हम कुछ अन्य कहानियों के प्रकाश में समझ सकते हैं। रामचन्द्र शुक्ल की कहानी "ग्यारह वर्ष का समय" के

१– "मिस्ट्री इज एसेन्शिल टु ए प्लाट, ऐण्ड कैन नाट बी अप्रीशिएटेड विदाउट इन्टेलीजेन्स।" –ऐस्पेक्ट्स आफ द नावेल : ई० एम० फार्स्टर : पृ० ८४।

कथानक की विकास-प्रक्रिया पर ध्यान देने से बात कुछ अधिक स्पष्ट हो सकती है।

"ग्यारह वर्ष का समय" कहानी में लेखक (या एक पात्र) एक दिन अपने मित्र के साथ घूमने जाता है। वे लोग नगर के पूर्व की ओर प्रकृति की शोभा के बीच बढ़ते हैं और पाते हैं कि उनके समक्ष एक ऊँची पहाड़ी है। कहानी का लेखक (या पात्र) सोचता है, कि "क्या यह वही खंडहर है जिसके विषय में अनेक दन्तकथाएँ प्रचलित हैं!" वहीं एक देवमन्दिर दीख पड़ता है। वहाँ घर के भीतर रंग-बिरंगी चूड़ियों के टुकड़े दीख पड़ते हैं। तभी वहाँ के ज्योत्स्नालोक में कोई श्वेत परिच्छदधारिणी स्त्री जल का पात्र लिए खंडहर के एक पार्श्व से दूसरे पार्श्व की ओर निकलती हुई दिखाई पड़ती है। मित्र का आग्रह स्थिति–शोध में प्रवृत्त करता है। लेखक (या पात्र) बढ़ता ही है, कि आँगन में वह स्त्री आ उपस्थित होती है और बहुत आग्रह करने पर तथा इस शर्त पर कि यह परिचय गोपन रहस्य ही बना रहेगा, अपना परिचय देती है कि कैसे जल-दुर्घटना ने घर को घेर लिया, पतिदेव कहीं गाएब हो गए, विपत्तियों ने मायके में भी साथ न छोड़ा और वह यहाँ आ गई। परिचय की कथा का शेष वृत्त लेखक (या पात्र) के मित्र ही पूरा करते हैं और यह कहते हुए : "कदाचित तुम पूछोगी कि इस समय अब वह कहाँ है ? यह वही अभागा मनुष्य तुम्हारे सम्मुख बैठा है"—रहस्य की सुखद समाप्ति करते हैं।

उपर्युक्त कथानक की विकास-प्रक्रिया को देखने से स्पष्ट है कि कहानीकार ने रचना को घटनाचक्रों की अप्रत्याशित रहस्यात्मकता से भरने की चेष्टा की है पर एक के बाद एक रहस्यपूर्ण युक्तियों का संग्रह करने से कहानी प्राणवान नहीं बन पाती और न ही अपने साहित्यिक या कलात्मक अभिप्राय की पूर्ति कर पाती है। प्रस्तुत कहानी का रहस्यात्मक कथानक इसका प्रमाण है। हम मानते हैं कि रूपगत विशेषताओं से कथा-साहित्य का और ही सम्बन्ध है[1] पर इस सम्बन्ध का निषेध करते हुए कहानी की रचनात्मक सार्थकता की उपलब्धि की आशा करना व्यर्थ है। कथानक में कुतूहल–रस की प्रतिष्ठा करने के उद्देश्य से इस युग के कहानीलेखकों ने एक से एक अप्रत्याशित रहस्यपूर्ण घटनायुक्ति का उद्दीपनात्मक उपयोग किया है, पर वे उस सूक्ष्म आभ्यंतर सम्बन्ध की रचना करने में असमर्थ रहे हैं जो कथानक को अर्थपूर्ण

१– "द क्रैफ्ट आफ फिक्शन : पर्सी ल्यूबक : पृ १०।

बताता है। इस युग की कहानियों के कथानक न तो अपने संघटनात्मक उद्देश्य की पूर्ति करते हैं, और न ही अपने रचनात्मक उद्देश्य की सिद्धि में सफल हो पाते हैं। कुल मिला कर कल्पनात्मक सृजन के नियमों का निषेध करनेवाले, इस युग की कहानी के कथानकों की सीमाएँ अनेक हैं और इन सीमाओं के मूल में प्रमुख कारण है : कहानी की सुनिश्चित रचनाधर्मिता के साहित्यिक एवं कलात्मक बोध की कमी।

चरित्र–चित्रण

चरित्र–चित्रण की स्वाभाविक पद्धति के उपयोग से कहानी में सहज विश्वसनीयता आती है, इसी दृष्टि से चरित्र के विधान में रचनाकार आवश्यक और संभव क्रियाकलापों पर ही ध्यान दे,[1] ऐसा आवश्यक और चरित्र चित्रण के सहज निदर्शन के लिए उपयोगी माना गया है। डा० श्यामसुन्दर दास के अनुसार चरित्र–चित्रण की प्रक्रिया में विश्लेषात्मक या साक्षात् तथा अभिनयात्मक या परोक्ष दोनों साधनों का उपयोग संभव है।[2] डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा ने चरित्र–चित्रण की प्रक्रिया में मनोवैज्ञानिकता के उपयोग की आवश्यकता पर बल दिया है।[3] प्राचीन हिन्दी कहानी के प्रस्तुत युग के सर्वेक्षण से ज्ञात होता है कि इस युग के कहानीकारों के पास स्वाभाविक चरित्र–चित्रण के लिए अपेक्षित यथार्थ की अनुभूति है ही नहीं जो जीवन से चुने हुए व्यक्ति को "चरित्र" की सजीवता दे सके। इस युग की कहानियों के चरित्र अद्भुत हैं और उनका व्यवहार-जगत् भी अस्वाभाविक तथा विलक्षण है पर विशेष मानवीय संवेदना जो चरित्रों को यथार्थ और अविस्मरणीय

१– ऐज इन द स्ट्रक्चर आफ द प्लाट, सो टू इन द पोर्ट्रेचर आफ कैरेक्टर, द पोएट शुड आल्वेज एम आइदर ऐट द नेसेसरी आर द प्राबेबुल। दस ए पर्सन आफ ए गिवेन कैरेक्टर शुड स्पीक आर ऐक्ट इन ए गिवेन वे, बाइ द रूल आइदर आफ नेसेस्टी आर आफ प्राबेबिलिटी............।"
–अरिस्टाटिल्स' थियरी आफ पोएट्री ऐन्ड फ़ाइन आर्ट।
–अनुवादक और व्याख्याकार : एस० एच० बुचर : पृ० ५५।

२– साहित्यालोचन : डा० श्यामसुन्दरदास : पृ० २०१।

३– "जितना ही अधिक मनोवैज्ञानिक और द्वन्द्व प्रधान वृत्तियों का चित्रण होगा, उतना ही अधिक आधुनिक अध्येता का बौद्धिक अनुरंजन होगा।"
–कहानी का रचना-विधान : डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा : पृ० १०७।

बनाती है—इनमें कहीं नहीं है। अधिक से अधिक रचनाकार किसी पात्र के अ-सहज रूप का उल्लेख कर देता है। उससे आगे बढ़ कर, उन विशेषताओं का उपयोग करने की दिशा में वह प्रयत्न नहीं करता जहाँ "चरित्रों" के सूक्ष्म सम्बन्धों से स्वयं कहानी का "चरित्र" बनता है। रानी केतकी कुँवर उदैभान के प्रति अपनी प्रेमासक्ति ज्ञापित करने के उद्देश्य से, पान की पीक से पत्र लिखती है—इस प्रकार के ऊहात्मक व्यापारों का निदर्शन करने से न तो पात्रों का चरित्र-चित्रण हो पाता है, न कहानी का सार्थक चरित्र ही निर्मित हो पाता है—इस तथ्य का ज्ञान प्राचीन कहानी लेखक को जैसे है ही नहीं। अधिकांश कहानियाँ रहस्यात्मकता से भरी हुई अप्रत्याशित घटनाओं के बीच विकसित होती है पर उनमें "चरित्र" की सभावनाएँ प्रत्यक्ष नहीं हो पातीं। चरित्र की संभावना कहीं प्रत्यक्ष हो पाती है, तो सहज घटनाओं के बीच। गिरिजादत्त बाजपेयी की कहानी "पंडित और पंडितानी"[1] इसका प्रमाण है। इस स्तर की कहानियाँ इस युग में बहुत कम लिखी गई हैं। कहा जा सकता है कि चरित्रों के संगठनात्मक विकास के मूल में जिन "मनोवैज्ञानिक तथ्यों"[2] की खोज आवश्यक है उन पर ध्यान न देने से ही इस पूर्व प्रेमचन्द-युग की कहानी चरित्र-चित्रण की दिशा में इतने पीछे है।

कहानी में चरित्र-चित्रण की क्रिया एक सूक्ष्म क्रिया है। कहानी में चरित्र का होना "रचना" के भीतर एक "रचना" का होना है।[3] इस दृष्टि से चरित्र का उचित विधान कहानीकार का एक महत्वपूर्ण रचनात्मक दायित्व है। प्रस्तुत युग की कहानियाँ प्रमाण हैं कि उनके रचनाकारों ने इस रचनात्मक दायित्व का अनुभव या निर्वाह नहीं किया है। यही कारण है कि वे चरित्र-चित्रण की सन्तुलित पद्धति का आविष्कार नहीं कर सके हैं। इस काल की कहानियों के चरित्र अभिनयशील हैं, जब कि उन्हें कहानियों की रूपात्मक विधि के अनुसार गतिशील होना चाहिए। उनकी सबसे बड़ी सीमा तो यह है

१– सरस्वती, सितम्बर, १९०३- भाग ४, संख्या ९।

२– कहानी का रचनाविधान। डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा : पृ० १००।

३– "दे आर क्रिएशन्स इन्साइड ए क्रिएशन, ऐन्ड आफुन इनहारमोनियस टूवर्ड्स इट, इफ दे आर गिवेन कम्प्लीट फ्रीडम दे किक द बुक टु पीसेज, ऐन्ड इफ दे आर केप्ट टू स्टर्नली इन चेक, दे रिवेन्ज देमसेल्व्ज बाइ डाइंग, एन्ड डिस्ट्राय इट बाइ इंटेस्टिनल डिकै"
–ऐस्पेक्ट आफ द नावेल : इ० एम० फार्स्टर : पृ० ६४।

कि वे कथानक के अनुसार गढ़ लिए गए हैं–कथानक से अलग उनका स्वतन्त्र अस्तित्व है ही नहीं।

वातावरण

कहानीकार "कहानी" में वातावरण की परिकल्पना ऐसी परिस्थिति के रूप में करता है जिसके द्वारा कथानक तथा कथानक को विकसित करने-वाले चरित्रों के अभीष्ट संवेदनात्मक लक्ष्य तक पहुँचा जा सके। डा० श्रीकृष्ण लाल ने कहानी की वातावरण–सृष्टि के प्रभाव को नाटकों के रंगमंचीय कौशल के समकक्ष बताया है।[1] प्रस्तुत युग की आरंभिक कहानियों के वातावरण-चित्र शुद्ध अलंकृत और इतिवृत्तात्मक हैं।[2] उनमें उपर्युक्त कलात्मक क्षमता विद्यमान नहीं है। स्पष्ट है कि कहानी में वातावरण की उद्‌भावना जिस रचनात्मक उद्देश्य से की जाती है उससे ऐसी कहानियों के कृतिकार अभिज्ञ नहीं हैं। वे इस सच्चाई से परिचित नहीं हैं कि उत्प्रेक्षाओं की युक्तियों का संग्रह कर देने से कहानी में वातावरण का निर्माण संभव नहीं होता।

इसी युग की विकास की कहानी में वातावरण-चित्रण के क्षेत्र में यथा-तथ्यता का निर्वाह करने का प्रयत्न[3] भी कहीं-कहीं देखा जा सकता है। कहीं

१– भूमिका : हिन्दी कहानियाँ : डा० श्रीकृष्णलाल : पृ २१।

२– "ग्रीष्म की अति अनीति देख, नृप पावस प्रचंड पशु-पक्षी, जीवजंतुओं की दशा विचार, चारों ओर से दल-बादल साथ ले लड़ने को चढ़ आया। जिस समय घन जो गरजता था सोई धौसा बजता था और वर्ण–वर्ण की घटा जो घिर आई थी सोई शूरवीर रावत थे, तिनके बीच बिजली की दमक शस्त्र की सी चमक थी, बगपाँत ठौर-ठौर ध्वजा सी फहराय रही थी, दादुर, मोर, कडखैतों की सी भाँति यश बखानते थे और बड़ी-बड़ी बूदों की झड़ी बांणों की सी झड़ी लगी थी।"

—प्रेम सागर —लल्लूलाल।

३–"इतने में देखा कि बादल उमड़ रहे हैं। चीलें नीचे उत्तर रही हैं, तबि-यत भुरभुरा उठी।–इतने में वायु का वेग बढ़ा, चीलें अदृश्य हुई। अंधेरा छाया, बूँदें गिरने लगीं, साथ ही तड़-तड़ धड़–धड़ होने लगी, देखा ओले गिर रहे हैं।"

—आर्शीवाद : बालमुकुन्द गुप्त। हिन्दी-गद्य-मीमासाः सं० रमाकांत त्रिपाठी, पृ० ३०९

कहीं किसी जीवित परिस्थिति का चित्रण [1] भी भारतेन्दु आदि की कहानियों में देखा जा सकता है। कहीं–कहीं कहानियों में किसी काव्यात्मक टुकड़े का उपयोग करते हुए वातावरण की उद्‌भावना का प्रयत्न किया गया है। जैसे, भारतेन्दु की कहानी "कुछ आप बीती कुछ जग बीती" इस सूत्र से आरम्भ होती है :

जमीने चमन गुल खिलाती है क्या क्या
बदलता है रंग आस्मां कैसे कैसे–।

जहाँ आधुनिक कहानियों में परिकल्पित या चित्रित "वातावरण" अपने सहजीवी "चरित्र" की अनुभूतियों और मनःस्थितियों का सह-भोक्ता होता है, वहाँ प्रायः वह प्राचीन कहानी में निरर्थ "प्रस्तावना" की भाँति है। किशोरीलाल गोस्वामी की "गुलबहार" [2] शीर्षक कहानी में यह टुकड़ा :

बाहर आई तो उसके साथ ही
गुल के कदम आए।
हुई रुखसत, चमन से यह तो
वह फिर कब ठहरती थी।

जिस वातावरण की रचना के प्रयोजन से बार-बार दुहराया जाता है, उसमें कोई अनुभूत्यात्मक लगाव नहीं दिखाई पड़ता, केवल कहानी का कुतूहल-रस उससे उद्दीप्त हो उठता है।

चरम कुतूहल और संघर्ष

कहानी एक कलाकृति है अतः उसके निर्माण की प्रक्रिया साधारण न होकर, विशेष ही होती है। जिन प्रत्ययों को हम कहानी का गुण मानते हैं उन सबकी रचनात्मक सार्थकता अलग होती है और उनकी सीमा भी पूर्णतः अलग होती है। कहानी में कुतूहल की प्रतिष्ठा हो, यही आवश्यक नहीं होता। कुतूहल का अधिक सूक्ष्म होकर कथानक का स्वाभाविक और मार्मिक अंग

१–"साँझ फूली हुई, आकाश के एक ओर चन्द्रमा, दूसरी ओर सूर्य, पर दोनों लाल-लाल, अजब समा बंधा हुआ, कसेरू, गंडेरी और फूल बेचनेवाले सड़क पर पुकार रहे थे।"—एक कहानी : कुछ आप बीती कुछ जग बीती : भारतेन्दु हरिश्चन्द्र :
: भारतेन्दु ग्रंथावली : तीसरा भाग, पृ० ८१३।

२–गुलबहार ? किशोरीलाल गोस्वामी : सरस्वती : भाग ३ : संख्या ७-८।

बनना अधिक आवश्यक होता है। उसी प्रकार संघर्ष कहानी की संवेदना को तीव्र बनाता है, पर वह ऐसा करने में सफल हो, इसके लिए उसे एक विश्वसनीय हेतु–भूमि पर आधारित होना पड़ता है। इस दृष्टि से विचार करने से ज्ञात होगा, कि प्रस्तुत युग की कहानियों में निहित कुतूहल-तत्व अत्यन्त स्थूल और आरोपित होता है। सपाट अभिधामूलक कथानकों की वर्णनात्मकता के बीच उपर्युक्त कुतूहल–तत्व प्रायः अपनी सार्थकता प्रमाणित नहीं कर पाता। कुतूहल का चरम क्षण कहानी में यदि हल्के रहस्यात्मक विवरणों पर आधारित हो जाय, तो उसकी रसात्मकता नष्ट हो जाती है। प्रस्तुत युग की कहानियों में इस तत्व के उपयोग की, यही परिणति है। इस युग की कहानियों में ग्रहीत समस्याओं को देखते हुए उनमें मन के सूक्ष्म संघर्ष के चित्रण की जिस प्रकार कोई संभावना नहीं दिखाई पड़ती, वैसे ही "कहानी" में भी उस सूक्ष्म संघर्ष की प्रतिष्ठा नहीं हो सकी है जो कहानी की परिणति को अधिक यथार्थ और विश्वासयोग्य बनाता है।

इस युग की एकाध कहानियों में यह प्रयोग भी किया गया है कि कैसे कुतूहल और संघर्ष का आग्रह छोड़ कर किसी मार्मिक कहानी की रचना की जा सकती है। गिरजादत्त वाजपेयी की कहानी "पंडित और पंडितानी" [1] कुतूहल और संघर्ष की प्रतिष्ठा से किसी अर्थ में रहित होकर भी, एक अत्यन्त सार्थक कहानी है। हमारी दृष्टि में यह कहानी इस युग की अद्भुत-रस प्रधान कहानी के क्षेत्र में एक सराहनीय प्रयोग है। इस कहानी का कथा-सार कुल इतना ही है:

एक पंडित जी, जिनकी अवस्था ४५ वर्ष की है, मेज पर झुके कुछ लिख रहे हैं। उनसे कुछ दूर पंडितानी, जिनकी अवस्था २० वर्ष है, कुछ पढ़ रही हैं। पंडितानी पंडित जी को आकर्षित करने के लिये खांसती हैं। पंडित जी कार्यरत होने के कारण ध्यान नहीं देते। उन्हें लेख समाप्त करने की चिन्ता है। पंडतानी तोता पालने का प्रस्ताव रखती हैं। पंडित जी चुप हैं, और चुप इस लिये भी हैं कि तोता पालना उन्हें अरूचिकर प्रतीत होता है। पंडितानी तर्क करती हैं। फिर, पंडित जी प्रेमवश मान जाते हैं और वचन देते हैं कि एक नहीं छः तोते उन्हें लाकर देंगे। पंडितानी प्रसन्न हो उठती हैं, और पंडित जी जल्दी–जल्दी अपना लेख पूरा कर डालते हैं।

आश्चर्य है कि कहानी की रचनात्मक संभावनाओं पर विचार करने वाले समीक्षकों ने भी इस कहानी के रचनात्मक कौशल पर ध्यान नहीं दिया

१–सरस्वती, भाग ४, संख्या ९, पृ० १३६, सितम्बर, १९०३।

है। संभवतः इसलिए कि यह एक प्राचीन कहानी है और इसमें अत्यन्त सहज कथा-शिल्प का उपयोग किया गया है। हमारी दृष्टि में यह अमित रचनात्मक संभावनाओं से युक्त कहानी है, जिसकी सार्थकता कुतूहल और संघर्ष-तत्व के निषेध से नहीं, उनके सूक्ष्म ऋजु उपयोग से निष्पन्न हुई है। यह कहानी किसी आधुनिक कहानी लेखक की होती तो इसमें विषमवय के व्यक्तियों की रुचियों के मनोवैज्ञानिक संघर्ष की कल्पना कर ली जाती, प्रतिपादित किया जाता कि तोता पंडितानी की अतृप्त कामना का प्रतीक है और इसी प्रकार इसमें सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक प्रतीकात्मकता का निवास मान लिया जाता, पर क्योंकि यह एक प्राचीन कहानी है, अतः इसके सूक्ष्म कौशल पर ध्यान नहीं दिया गया है जो तुर्गनेव के कथा-शिल्प की भाँति [1] सहज स्फूर्त है या प्रेमचन्द की आयासहीन श्रेष्ठ कहानियों की भाँति प्रभावपूर्ण है।

इसमें सन्देह नहीं कि पूर्व प्रेमचन्द-युग की अधिकाँश कहानियों में प्रयुक्त कुतूहल–तत्व अत्यन्त स्थूल है और संघर्ष या तो है ही नहीं, या अतिशय बाह्य है।

भाषा और शैली

अलंकृत और सहज, दोनों प्रकार की भाषा का प्रयोग प्राचीन युग की हिन्दी कहानियों में किया गया है। पर कहानी की भाषा के लिए जो स्फूर्त प्रवाह अपेक्षित है, उसका अनुभव इस युग की कहानियों को पढ़ते हुए नहीं होता। भाषा व्यक्ति और परिस्थिति के एक संश्लिष्ट सम्बन्ध को बहन करती है, यह चेतना प्रस्तुत काल के कहानी लेखकों में नहीं के बराबर है। इसके अभाव में, इन कहानीकारों की रचनाएं अधिक से अधिक उक्ति का आकर्षण दिखा पाती हैं, भाषा का नहीं। निर्माणकालीन भाषा से इससे अधिक आशा की भी नहीं जा सकती। अलंकृति के विविध-स्तर [2] प्रस्तुत काल की कहा–नियों में सहज ही देखे जा सकते हैं।

१–',तुर्गनेव वाज नेवर शाई आफ एपियरिंग इन हिज पेजेज ऐज द रेफ्लेक्टिव स्टोरीटेलर इम्पार्टिग द फ्रूट्स आफ हिज,आब्जर्वेशन टु द रीडर"- –द क्रैफ्ट आफ फिक्शन : पर्सी ल्यूबक : पृ० १२१।

२–(क) "हाय रे उनके उभार के दिनों का मुहानापन–उठती हुई कोपल की कली पहने, जैसे बड़े तड़के धुधलके हरे भरे पहाड़ों की गोद से सूरज की किरनें निकल आती हैं।

कहानियों में भाषा की उत्कृष्टता का विचार संवादों की दृष्टि से भी किया जाता है। प्रस्तुत काल की कहानियों में संवाद या तो हैं ही नहीं, इतिवृत्त ही हैं, या वे कथा में इस प्रकार घुल-मिल गये हैं कि उनकी व्यक्तिगत सत्ता नष्ट हो गयी है।

प्रस्तुत युग की कहानियों में धार्मिक पौराणिक कथाओं और लोक वार्ताओं की शैली से लेकर फारसी की मसनवी शैली और उर्दू की किस्सागोई सब का सम्मिलित प्रभाव विद्यमान है। वर्णानात्मकता और विस्तार बहुलता : इस युग की कहानी—शैली की प्रमुख सीमाएं हैं।

संवेदना तथा उद्देश्य

संवेदना, मनोविज्ञान के अध्येता के लिए एक पारिभाषिक संज्ञा है, जिसे हम मन की चेतना की उस सविशेष अवस्था के रूप में ग्रहण करते हैं जिसमें वस्तुओं का आत्यन्तिक बोध न होकर गुणों (या मूल्यों) का बोध होता है।[1] साहित्यिक आलोचना में हम इस शब्द का व्यवहार संवेदनशीलता (सेन्सिबिलिटी) के अर्थ में करते हैं और संवेदनशीलता की संश्लिष्ट एकोन्मुखता को श्रेष्ठ कहानी का आदर्श मानते हैं। इन्द्रिय बोध की सूक्ष्म संवेदना के उपयोग से कहानीकार कहानी को एक सृजनात्मक मूल्य प्रदान करता है। प्रत्यक्ष है कि संवेदना का यह सूक्ष्म और सार्थक उपयोग प्राचीन कहानी के घटना-बहुल इतिवृत्तात्मक ढाँचे के भीतर सम्भव नहीं था। भारतेन्दु-युग के कुछ कहानीकारों की निबन्धात्मक कोटि की कहानियों में सामाजिक संवेदना अवश्य दिखाई देती है जो समाज के सामाजिक जीवन की प्रत्यक्ष जागरूकता का ही पर्याय है।

—रानी केतकी की कहानी : इंशा। उद्धृत : आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका : ल० सा० वार्ष्णेय : पृ० २८५

(ख) "महाराज। जिस काल बाला बारह वर्ष की हुई तो उसके मुखचन्द्र की ज्योति देख पूर्णमासी का चन्द्रमा छवि छीन हुआ, बालों की श्यामला के आगे अमावस्या की अंधेरी फीकी लगने लगी उसकी चोटी सटकाई लख नागिन अपनी केंचुली छोड़ सटक गई। भौंह की बकाई निरख धनुष धकधकाने लगा, आँखों की बड़ाई चंचलताई पेख मृगमीन खंजन खिसाय रहे।"—प्रेम सागर : लल्लूलाल। उद्धृत आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका : ल० सा० वार्ष्णेय पृ० ४१०

१– हिन्दी साहित्य कोश : पृ० ७९६।

प्राचीन कहानियों में बहुमत उन कहानियों का ही है जिनकी उद्देश्य-भावना रूढ़िपोषक है। कुछ ही कहानियाँ इस दृष्टि से अपवाद मानी जा सकती हैं जिनकी उद्देश्य-भावना स्वच्छन्दतामूलक हो। उद्देश्य-भावना के इन द्विविध रूपों का अस्तित्व प्राचीन हिन्दी कहानी में निःसंदिग्ध रूप से है। स्वाभाविक रूप से, जिन कहानियों की उद्देश्य-भावना रूढ़िपोषक है उसमें इतिवृत्तात्मक निष्प्राणता पायी जाती है और ऐसी कहानियाँ कथानक, चरित्र वातावरण के सम्बन्धों द्वारा जिस संवेदनात्मक परिणाम तक विकासकालीन आधुनिक कहानियाँ पाठक को पहुँचाती हैं, वहाँ तक नहीं जा पाती हैं। कहानी के ऐतिहासिक विकास के अध्ययन से ज्ञात होता है कि परिपाटी—विहित स्थूल रूढ़िपोषक उद्देश्य-भावना का यह क्रम किसी न किसी रूप में प्रेमचन्द के समय तक चलता ही रहता है।

अन्तर्दृष्टि का अभाव प्रस्तुत युग की कहानियों की बहुत बड़ी सीमा है। इसके परिणामस्वरूप इस काल की कहानियाँ प्रायः निष्प्राण अद्भुत वृत्तान्तों का संकलन होकर रह गयी हैं। संभवतः अद्भुत तत्व की सृष्टि, इनमें से अधिसंख्य कहानियों का प्रयोजन भी है, जिसे बँगलावाले, अद्भुत कौतुक-रस कहते हैं। प्रस्तुत युग की कहानियों की यह सीमा प्रेमचंद-युग के आरम्भिक साहित्यिक प्रयत्नों में भी परिलक्षित होती है। ज्वालादत्त शर्मा की "विधवा" "कौशिक" की कहानी "रक्षाबन्धन" ऐसी ही कहानियाँ हैं, जिनमें प्रयोजन दैवघटनाओं की संयोगात्मकता की सृष्टि में सीमित[1] दिखाई देता है।

घ— उपलब्धियाँ और सीमाएँ

संयोगतत्व की सीमा

निःसंदिग्ध रूप से, स्वाभाविकता की सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती। फिर भी, स्वाभाविकता नकारात्मक मूल्य नहीं है, गुणात्मक मूल्य है। रचना की प्रकृति में कुछ ऐसी विशेषताएँ होती हैं जिन्हें हम "स्वाभाविक" की संज्ञा प्रदान करते हैं। कहानी एक निश्चिय साहित्य-रूप है, उसकी एक निश्चित प्रकृति होती है। इस दृष्टि से, कहानियाँ स्वाभाविक भी होती हैं और अस्वाभाविक भी। प्रचलित अर्थ में जिन कहानियों में आकस्मिकता की अतिशयता होती है, जिन कहानियों में चमत्कारपूर्ण वैलक्षण्य का आत्यंतिक आग्रह होता है, उन्हें हम "अस्वाभाविक" मानते हैं। निश्चय ही, कहानी में

१— आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास : डा० श्रीकृष्ण लाल : पृ० ३२६।

या किसी भी कला-कृति में चित्रित वास्तविकता विशुद्ध तथ्याश्रित नहीं होती और हम अनुभव करते हैं कि रचनाकार जिस वास्तविकता का सृजन करता है वह "वास्तविकता" का भ्रम (इल्यूजन) ही होता है, पर कहानी में यदि निरन्तर संयोग ही घटित होते रहें तो उनका "संयोगत्व" भी जाता रहता है, कथारस की सृष्टि में भी बाधा होती है, तथा रहस्य का वह सहज पुट रचना में आ ही नहीं पाता जो रचना का सूक्ष्म रचनात्मक धर्म होता है। संयोग या आकस्मिकता (क्वाइनसिडेन्स) का सहज उपयोग रचनाकार अपनी कृति में कर सके, यह बात उसके प्रयोजन पर निर्भर करती है। इसीलिए पर्सी ल्यूबक सभी प्रश्नों को छोड़ कर केवल प्रयोजन (प्वाइन्ट आफ व्यू) के प्रश्न पर विचार करते हैं।[1]

प्रस्तुत युग की कहानियों में संयोग-तत्व या आकस्मिकता का आत्यान्तिक आग्रह परिलक्षित होता है क्योंकि इस युग के रचनाकारों ने उसे ही कला का परम आदर्श मान लिया है। इस भूमिका में इस युग की कहानियों को देखने से ज्ञात होता है कि इस युग की कहानी की सीमाएँ एक उचित रचनात्मक दृष्टिकोण एवं परिप्रेक्ष्य के अभाव की सीमायें हैं। गद्य की प्रतिष्ठा के साथ कहानी नामक साहित्य-रूप का तथा उसकी विभिन्न पद्धतियों का विकास–यह इस युग की अकेली उपलब्धि है।

आकस्मिकता के कौतुक की प्रतिष्ठा

संयोग-तत्व या आकस्मिकता के आग्रह की सीमा स्वीकार करते हुए यहाँ यह भी स्वीकार करना होगा कि जिन कथा–पद्धतियों का परिग्रहण इस युग की कहानियों ने किया, उन्होंने भी संयोगत्व के उपर्युक्त आग्रह की पुष्टि की। संस्कृत की धार्मिक पौराणिक गाथा, कथा या वार्ता–शैली से लेकर प्रेमाख्यानक मसनवियों की शैली तक : इन सभी कथात्मक पद्धतियों ने "आकस्मिकता" के "कौतुक" की ही प्रतिष्ठा की।

नीति या आदर्श की पक्षधरता

नीति या आदर्श की पक्षधरता, इस युग की कहानी की अन्य प्रमुख

१– द क्रैफ्ट आफ फिक्शन : पर्सी ल्यूबक, पृ० २५१।

सीमा है, जिसे प्रतिष्ठित करने के लिए स्वाभाविक रूप से कहानी "अस्वाभाविक संयोग" की ओर मुड़ जाती है। जीवन की सीधी और सामान्य प्रक्रिया के भीतर असम्भव घटनाओं का निर्माण प्रायः इस युग की कहानियों में दया, परोपकार, करुणा, ममता, अपरिग्रह, आदि उदात्त मूल्यों की सार्थकता प्रमाणित करने के उद्देश्य से किया गया है। कथानक, चरित्र और वातावरण आदि कहानी के प्रमुख तत्वों में किसी का विन्यास सहज रूप में प्राचीन कहानी में नहीं हो पाया है– यह सीमा अनेक कारणों से हिन्दी के प्राचीन अन्य साहिय-रूपों में भी बनी हुई है।

अतिरंजना या अतिरंजित कल्पना से ही प्राचीन कहानियां आरम्भ और समाप्त होती हैं। "रानी केतकी की कहानी" हो या "भूतों वाली हवेली"[1] की कहानी, या "विचित्र चोरी"[2] अथवा "गुमनाम चिट्ठी[4] की कहानी– इनकी संवेदना "माधवानल कामकंदला"[3] जैसी प्राचीन कथाओं की संवेदना से भिन्न नहीं है, जिसमें वाताल पाताल से अमृत प्राप्त कर मृत व्यक्ति को जिला देते हैं।

प्राचीन युग की आदर्श–कहानियों की नीतिवादिता अपनी संवेदना में "पौराणिक" आख्यान सहित्य के निकट है जिसका प्रयोजन है: इतिहास तथा कल्पना के सामंजस्य से धार्मिक आदर्शमूल्यों की प्रतिष्ठा।

दो कहानियों पर विचार

शिल्प सम्बन्धी सीमाओं को देखते हुए स्पष्ट ज्ञात होता है कि प्राचीन युग की मूल कहानी और उसकी भूमिका या प्रस्तावना के बीच का अन्तराल भी प्राचीन कथा–संस्कारों का परिणाम ही है। इस दृष्टि से हम यहाँ इस युग की दो प्रमुख कहानियों पर विस्तार से विचार करना चाहेंगे। वे कहानियाँ हैं: क— राजाशिवप्रसाद सितारेहिन्द कृत "राजा भोज का सपना" और ख— बाबू बालमुकुन्द गुप्त कृत "मेले का ऊँट"।

१– ले० लाला पार्वतीनन्द, सरस्वती भाग ४, संख्या ५ से ८ तक।
–२ त्रिवेणी: (जासूस: १९३२ में प्रकाशित ३ कहानियों का संग्रह): –गोपालराम गहमरी।
–३ वही।
४– ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन: सत्येन्द्र: पृ० ४३६।

राजा भोज का सपना

"राजा भोज का सपना" शीर्षक, राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द की कहानी का आरम्भ अतिप्राचीन कथाओं की भाँति है। सभी घटना-प्रसंगों की परिणति नीतिमूलक है। और वह उस सहज मानवीय संवेदना का साक्षात्कार नहीं कराती जो आधुनिक कहानियों में सबसे महत्वपूर्ण मानी जाती है। कहानी का आरम्भ इस प्रकार है: "वह कौन सा मनुष्य है जिसने महाप्रतापी राजा महाराज भोज का नाम न सुना हो। उसकी महिमा और कीर्ति तो सारे जगत् में व्याप रही है। बड़े–बड़े महिपाल उसका नाम सुनते ही काँप उठते और बड़े-बड़े भूपति उसके पाँव पर अपना सिर नवाते। सेना उसकी समुद्र की तरङ्गों का नमूना और खजाना उसका सोने चाँदी और रत्नों की खान से भी दूना। उसके दान ने राजा कर्ण को लोगों के जी से भुलाया और उसके न्याय ने विक्रम को भी लजाया। कोई उसके राज्य भर में भूखा न सोता और न कोई उघाड़ा रहने पाता। जो सत्तू माँगने आता उसे मोतीचूर मिलता और जो गजी चाहता उसे मखमल दी जाती। पैसे की जगह लोगों को अशर्फियाँ बाँटता और मेह की तरह भिखारियों पर मोती बरसाता। एक एक श्लोक के लिए ब्राह्मणों को लाख-लाख रुपया उठा देता और सवा लक्ष ब्राह्मणों को षट्रस भोजन कराके तब आप खाने को बैठता। तीर्थयात्रा, स्नान, दान और ब्रत–उपवास में सदा तत्पर रहता। उसने बड़े-बड़े चाँद्रायण किये थे और बड़े-बड़े जंगल-पहाड़ छान डाले थे।"

प्रत्यक्ष है कि यह राजा भोज, अर्थात् कहानी के मुख चरित्र का "परिचय" है और किसी अर्थ में कहानी की "भूमिका" है। ध्यान दें, तो ज्ञात होगा कि भूमिका का स्थानापन्न तो यह परिचयात्मक विवरण हो नहीं सकता क्योंकि मुख्य अभीष्ट तो राजा भोज के स्वप्न का वर्णन है। और चरित्र के परिचयात्मक विवरण का विचार कला की दृष्टि से करें तो लगेगा कि इतने अधिक विवरणों के उल्लेख से राजा भोज के उस स्वाभाविक चरित्र के विकास में बाधा ही पड़ती है जो स्वयं इतने ख्यात-कीर्ति हैं कि परिचय की अपेक्षा नहीं रखते।

कहानी में चरित्र की प्रतिष्ठा अधिक सूक्ष्म और अनायास रूप में की जानी चाहिए, उपर्युक्त विवरण इस नियम की उपेक्षा करता है।

कहानी में प्रवेश करने से ज्ञात होता है कि भूमिका तो कहानी के निम्नलिखित विवरण में है:

"एक दिन शरद ऋतु में संध्या के समान सुन्दर फुलवाड़ी के बीच स्वच्छ पानी के कुंड के तीर जिसमें कुमुद और कमलों के बीच जल पक्षी किलोलें कर रहे थे, रत्नजटिल सिंहासन पर कोमल तकिए के सहारे चित्त बैठा हुआ वह महलों की सुन्दरी कलसियां लगी हुई संगमर्मर की गुमजियों के पीछे से उदय होता हुआ पूर्णिमा का चन्द्रमा देख रहा था और निर्जन एकान्त होने के कारण मन ही मन में सोचता था कि अहो ! मैंने अपने कुल को ऐसा प्रकाश किया जैसे सूर्य से इन कमलों का विकास होता है। क्या मनुष्य और क्या जीव जन्तु मैंने अपना सारा जन्म इन्हीं का भला करने में गंवाया और ब्रत-उपवास करते-करते फूल से शरीर को काँटा बनाया। जितना मैंने दान किया उतना तो कभी किसी के ध्यान में भी न आया होगा। जो मैं ही नहीं, तो फिर और कौन हो सकता है ? मुझे अपने ईश्वर पर दावा है, वह अवश्य मुझे अच्छी गति देगा।"

विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि उपर्युक्त भूमिका में भी कहानी का मुख्य प्रसंग नहीं व्यंजित हो सका है। मितव्ययिता भाषा का ही नहीं, सम्पूर्ण कला-रचना का आदर्श गुण है, इस रहस्य से अपरिचित लेखक ने कहानी के इन अनावश्यक विवरणों का प्रयोग चरित्र के "उद्दीपन" के रूप में किया है। मुख्य प्रतिपाद्य और भूमिका के बीच की यह दूरी प्राचीन कहानियों के अस-फल शिल्प का ही उदाहरण प्रस्तुत करती है।

"राजा भोज का सपना" कहानी में, उपर्युक्त भूमिका के अनन्तर चोब-दार के प्रवेश का उल्लेख है। तभी दीवान आकर निवेदन करता है : पृथ्वी-नाथ सड़क पर वे कूँए जिनके वास्ते अपने हुक्म दिया था बन कर तैयार हो गए और आम के बाग भी सब जगह लग गए। जो पानी पीता है, आपको असीस देता है और जो उन पेड़ों की छाया में विश्राम करता आपकी बढ़ती दौलत मनाता है।"

राजा अपनी अमलदारी भर में, जहाँ–जहाँ सड़कें हैं, कोस–कोस पर कुंए खोदवा कर सदाव्रत बैठाने और जल्द ही दुतरफा पेड़ लगवाने का आदेश देते हैं। इतने में दानाध्यक्ष आकर निवेदन करता है : "धर्मावतार ! वह जो पाँच हजार ब्राह्मण हर साल जाड़े में रजाई पाते हैं तो डेवढ़ी पर हाजिर हैं।" राजा पाँच के बदले पचास हजार को, रजाई की जगह शाल-दुशाले दिये जाने की अनुमति देते हैं।

तभी इमारत के दारोगा आकर "मुजरा" करते हैं और "खबर" देते

हैं कि "महाराज ! उस बड़े मन्दिर की, जिसके जल्द बना देने के वास्ते सरकार से हुक्म हुआ है आज नींव खुद गई, पत्थर गढ़े जाते हैं और लुहार लोहा भी तैयार कर रहे हैं ।"

इस पर महाराज तिउरिया बदल कर दरोगा को खूब घुड़कते है: "अरे मूर्ख वहाँ पत्थर और लोहे का क्या काम है ? बिल्कुल संगमर्मर और संगमूसा से बनाया जावे और लोहे के बदले उसमें सब जगह सोना काम में आवे जिसमें भगवान भी उसे देखकर प्रसन्न हो जावें और मेरा नाम इस संसार में अतुल कीर्ति पावे ।"

यह सुनकर सारा दरबार ही पुकार उठता है कि "धन्य महाराज ! क्यों न हो ! जब ऐसे हो तब तो ऐसे हो । आपने इस कलिकाल को सतयुग बना दिया……"। आदि । कहानी में ही संकेत है कि व्यास ने फिर कथा आरंभ की, कीर्तन आरम्भ हुआ । चाँद सिर पर चढ़ आया । घड़ियाली ने निवेदन किया कि आधी रात निकट है । ब्यास कथा कहते थे, राजा को ऊंघ आती थी । वह रनवास में गया । जड़ाऊ पलंग और फूलों की सेज पर सोया । रानियाँ पैर दाबने लगीं । राजा की आँखें झप गयीं और उसने स्वप्न देखा ।

कहानी का मुख्य प्रतिपाद्य जहां पाठक के सामने आता है वहाँ उसका उत्साह समाप्त-सा हो जाता है । प्राचीन कहानियों की इस सीमा का प्रतिनिधि उदाहरण प्रस्तुत करने वाली इस कहानी के सन्दर्भ में विचारणीय है कि "स्वप्न वर्णन" (अर्थात् मुख्य प्रतिपाद्य) के लिए इतना आडम्बर क्यों एकत्र किया गया । राजा के आत्म यश या वर्ग से सम्बद्ध स्वगत चिन्तन के इस प्रदीर्घ वर्णन की क्या उपयोगिता है । हमारी दृष्टि में, आधुनिक कहानीकार इस विषय पर कहानी लिखता तो उसकी कहानीं चोबदार के प्रवेश से ही आरंभ होती । उस अवस्था में कहानी अधिक सजीव और प्रभावपूर्ण होती तथा भूमिका और मूल कहानी के बीच का दुर्बह व्यवधान पाठक को इस सीमा तक नहीं खटकता ।

मेले का ऊंट

तुलनात्मक दृष्टि से विचार करें तो ज्ञात होगा कि बाबू बालमुकुन्द गुप्त की यह कहानी पूर्व चर्चित राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द की कहानी "राजा भोज का सपना" से पृथक और अपने संवेदनात्मक प्रयोजन में अधिक "सूक्ष्म" और "व्यंगपूर्ण" है । यही कारण है कि अनावश्यक विस्तार के होते

हुए भी "राजा भोज का सपना" कहानी में "विषय" इतना मूर्तिमान नहीं हो पाता, जितना इस अति संक्षिप्त कहानी में हो पाता है।

"मेले का ऊंट" कहानी इस प्रकार आरम्भ होती है :

"भारत मित्र-सम्पादक ! जीते रहो-दूध बताशे पीते रहो। भाँग भेजी सो अच्छी थी। फिर वैसी ही भेजना। गत सप्ताह अपना चिट्ठा आपके पत्र में टटोलते हुए "मोहन मेले" के लेख पर निगाह पड़ी। पढ़ कर आपकी दृष्टि पर अफसोस हुआ। पहली बार आपकी बुद्धि पर अफसोस हुआ था। भाई आपकी दृष्टि गिद्ध की सी होनी चाहिए ("व्यंग" की भूमिका ध्यान देने योग्य है), क्योंकि आप सम्पादक हैं……।" ठीक इसके पश्चात् लेखक मूल प्रतिपाद्य पर आता है :

"मोहन मेले में आपका ध्यान दो एक पैसे की एक पूरी की तरफ गया।…… यह क्या देखने की बात थी ? तुमने व्यर्थ बहुत बातें देखीं, काम की एक भी देखते ? दाईं ओर जाकर तुम ग्यारह सतरों का एक पोष्टकार्ड देख आए, पर बाईं तरफ बैठा हुआ ऊंट भी तुम्हें दिखाई न दिया। बहुत लोग उस ऊंट की ओर देखते और हंसते थे। कुछ लोग कहते थे कि कलकत्ते में ऊंट नहीं होते, इसी से मोहन मेले वालों ने इस विचित्र जानवर का दर्शन कराया। बहुत-सी शौकीन बीबियाँ, कितने ही फूल बाबू ऊंट का दर्शन करके खिलते दाँत निकालते चले गए। तब कुछ मारवाड़ी बाबू भी आए और झुक-कर उस काठ के घेरे में बैठे हुए ऊंट की तरफ देखने लगे। एक ने कहा—"ऊंटड़ों है", दूसरा बोला—"ऊंटड़ों कठेते आया ?" ऊंट ने भी यह देख दोनों होठों को फड़काते हुए थूथनी फटकारी। "यहीं लेखक एक प्रतीकात्मक व्यंग का उपयोग करता है और कहानी का अन्त ऊंट को समझाते हुए कहता है : "बलबलाना बन्द करो। यह बावला शहर नहीं जो तुम्हें परमेश्वर समझे।……किसी की पुरानी बात को यारू खोलकर कहने से आज कल के कानून से हतक-इज्जत हो जाती है। तुम्हें खबर नहीं कि अब मारवाड़ियों ने "एसोसिएशन" बना ली है। अधिक बलबलाओगे तो वह रिजील्यूशन पास करके तुम्हें मारवाड़ से निकलवा देंगे। अतः तुम उनका कुछ गुणगान करो जिससे वह तुम्हारे पुराने हक को समझें और जिस प्रकार लार्ड कर्जन ने किसी जमाने के ब्लैक होल को उस पर लाट बनवाकर और उसे संगमरमर से मढ़-वाकर शानदार बना दिया है उसी प्रकार मारवाड़ी तुम्हारे लिये मखमली कोठी, जारी की गद्दियाँ, हीरे पन्ने की नकेल और सोने की घन्टियाँ बनवाकर तुम्हें बड़ा करेंगे और अपने बड़ों की सवारी का सम्मान करेंगे।"

प्रत्यक्ष है कि "ऊंट" कहानी का प्रतिपाद्य नहीं है, वह तो केवल प्रतीक है, प्रतिपाद्य व्यंग की अभिव्यक्ति का साधन या माध्यम भर है। आश्चर्य है कि कहानी का ऐतिहासिक एवं विश्लेषणात्मक विकास का अध्ययन प्रस्तुत करनेवाले आलोचकों और अध्येताओं ने इस प्रकार की सूक्ष्म संवेदना प्रवण कहानियों के रचना–विधान पर ध्यान नहीं दिया है, जिन पर प्राचीन कथा-संस्कारों का प्रभाव अत्यल्प है।" पुरानी कहानियों में गंभीरतर अर्थ"[1] का अन्वेषण आलोचक का एक महत्वपूर्ण-कर्तव्य है जिसकी पूर्ति की दिशा में कम ध्यान दिया गया है।

उपर्युक्त कहानियों की तुलनात्मक विशेषताओं (एवं लक्षणों) के सन्दर्भ में प्राचीन कहानियों की रचना–प्रक्रिया के सम्बन्ध में विचार करें तो उसकी कुछ स्पष्ट सीमायें दिखाई देंगी।

प्राचीन कहानी की रचना-प्रक्रिया की सीमायें

प्राचीन कहानियों के रचनाविधान में कलात्मक चेतना का उपयोग नहीं के बराबर किया गया है। कहानी एक निश्चित प्रकार की कला-कृति है– उसका एक निश्चित रचनात्मक प्रयोजन होता है–यह चेतना प्राचीन कहानियों के कृतिकारों में विद्यमान नहीं है। कहा जा सकता है कि प्राचीन कहानी अनेक रहस्यपूर्ण प्रसंगों का विवरण तो देती है पर वह "बिन्दु" अंकित नहीं कर पाती जिसमें कहानी के रचनात्मक विकास की संभावना है।

प्राचीन कहानियों का शिल्प-विधान लोक कथा-शिल्प के निकट है : उसके निर्माण में धार्मिक पौराणिक कथाओं की परम्परा से लेकर उर्दू-फारसी की मसनवी शैली की आख्यान–परम्परा तक का सम्मिलित प्रभाव है।

प्राचीन कहानियों के कथानक घटना के चमत्कारपूर्ण कुतूहल पर अथवा अतिशय संयोगात्मकता की भूमि पर आधारित हैं। इन कथानकों की घटना-बहुलता के बीच सूक्ष्म सम्बन्ध-रेखा का विकास ही नहीं हो सका है जो रचनाधर्मी "कथानक" का आदर्श है।

प्राचीन कहानियों में चरित्र-चित्रण की स्वाभाविक पद्धति आविष्कृत

१–आतमनेपद : अज्ञेय : पृ० २२७।

ही नहीं हो सकी है। कृत्रिम कथानकों से भिन्न, इन कहानियों में वर्णित चरित्रों का स्वतन्त्र व्यक्तित्व निर्मित ही नहीं हो सका है।

प्राचीन कहानियों में उद्भावित "वातावरण" प्रायः उनकी अर्थहीन प्रस्तावनाओं की भांति है। उनके साथ कृतिकारों का कोई अनुभूत्यात्मक सम्बन्ध बन ही नहीं सका है।

कुल मिलाकर प्राचीन कहानियों के घटनाबहुल इतिवृत्तात्मक ढाँचे के भीतर उस आधुनिक संवेदना का विकास नहीं हो पाया है जो प्रेमचन्द के उदय के साथ आगामी युग की कहानी में मूर्त होती है।

३

प्रेमचंद-युग की हिन्दी-कहानी

क– नवीन या आधुनिक कहानी (पूर्वार्द्ध)

प्रेमचंद-युग में आकर कहानी पहली बार अपने पाठक से सजग अध्ययन की माँग करती है। यथार्थ सन्दर्भों से युक्त होने के कारण, इस समय तक आते-आते, कहानी की परिभाषा ही बदल गई है। यहाँ तक कि कवि—कहानीकारों ने भी यथार्थ का आश्रय लिया है—चाहे वह भावात्मक ही क्यों न हो! परिस्थितियों के वाह्य रूपों का विश्लेषण करते-करते अचानक ही भीतरी अन्तर्द्वन्द्वों के चित्रण का प्रयत्न इस काल के कहानीकारों में दिखाई पड़ने लगता है। मानव-व्यवहार को अधिक समीप से देखने और चित्रित करने का प्रयत्न भी इस समय के आरम्भ से ही लक्षित होता है। रचनात्मक दृष्टि से यह समय एक नये सहानुभूतिपूर्ण विवेक के उदय का समय है। और, इस दृष्टि से यह कथन अत्युक्तिपूर्ण न होगा कि रचनात्मक-प्रक्रिया के प्रति एक असचेष्ट सचेष्टता भी इस काल के कृतित्व में प्रतिबिम्बित होती है। इस कथन के साथ हमारा यह आग्रह नहीं है कि इस काल के आरम्भ से निरन्तर, और सभी लेखकों में, यह रचनात्मक जागरूकता और उपरिनिर्दिष्ट सभी विशेषतायें प्राप्त ही होती हैं। वस्तुत: ऐसा संभव भी नहीं है और वह भी ऐसे युग में, जो आधुनिक दृष्टिबोध के उदय का ही युग है। परन्तु इन विशेषताओं की उपेक्षा करके इस काल के रचनात्मक साहित्य की सही पहचान नहीं की जा सकती।

प्रेमचंद–युग, हमारे देश के राजनीतिक एवं सामाजिक उथलपुथल का युग है। पुराने आदर्श मानव-व्यवहार से छूटने लगे हैं और नये स्थिर नहीं हो सके हैं। हमारे देश के राजनीतिक एवं सामाजिक जीवन के कुछ महत्वपूर्ण पक्षों का निरूपण पहली बार इस युग के कथा–साहित्य में मिले, तो चकित होने की कोई बात नहीं। इससे पहले की कहानी के भावबोध में कल्पना, भावुकता और अतिरंजना की प्रवृत्ति थी और भाषा में अनावश्यक

असतर्क अलंकरण और ऊहापोह था—और इन सबके लिए भिन्न परिस्थितियाँ उत्तरदायी थीं। सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों का तनाव ज्यों-ज्यों हमारे मन पर बढ़ता गया, भाषा यथार्थ परिदृश्य के अनुकूल और अधिक विश्वसनीय होती गई। प्रेमचंद जब जीवन के यथार्थ के स्वाभाविक चित्रण को आख्यायिका का ध्येय बताते हैं,[1] तो कहानी के आधुनिक रूप को ही हमारे सामने रखते हैं। परन्तु इस युग की कहानी में उपलब्ध जीवन-यथार्थ के चित्रण की अपनी सीमाएँ भी हैं, उसी प्रकार, जैसे इस युग की कहानी में प्राप्त मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की भी अपनी सीमायें हैं। यह अवश्य है कि इन सीमाओं को ठीक-ठीक हम उत्तर–प्रेमचंद युग की कहानी में लक्षित होने वाली प्रवृत्तियों और उनसे पहले प्रेरणाओं के प्रकाश में ही समझ सकते हैं।

ख— प्रेमचन्द–युग की रचनात्मक चेतना प्रेरणाओं के स्रोत

ऐतिहासिक परिस्थितियां

प्रेमचंद युग की रचनात्मक चेतना का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि इस युग के कृतिकारों की संवेदशीलता में बड़ा तीव्र और गहन परिवर्तन उपस्थित हुआ है। यह परिवर्तन कई ऐतिहासिक परिस्थितियों के दबाव का परिणाम है। इस दृष्टि से इन पर विचार कर लेना प्रासंगिक महत्व का होगा। समय की दृष्टि से तो प्रत्यक्ष ही है कि प्रेमचंद–युग का साहित्य प्रथम महायुद्ध के बाद का साहित्य है। ऐतिहासिक परिस्थितियों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि यद्यपि भारतवर्ष की जनता सीधे इस युद्ध में सम्मिलित नहीं थी, पर उस पर इस युद्ध का आर्थिक प्रभाव बहुत गहरा पड़ा, क्योंकि भारत जिस साम्राज्यवादी शासन के अधीन था, वह युद्ध के परिणामों से अछूता न था। भयानक आर्थिक मन्दी ने भारत की जनता को अत्यधिक प्रभावित किया था और वह निराश हो चली थी। यह लक्षण शुभ था कि १९१४ से पूर्व की

१— "वर्तमान आख्यायिका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और जीवन के यथार्थ और स्वाभाविक चित्रण को अपना ध्येय समझती है। उसमें कल्पना की मात्रा कम और अनुभूतियों की मात्रा अधिक होती है। इतना ही नहीं बल्कि अनुभूतियां ही रचनाशील भावना से अनुरंजित होकर कहानी बन जाती हैं।" —साहित्य का उद्देश्य : प्रेमचंद : पृ० ४१।

हिन्दू राष्ट्रीयता बृहत्तर राष्ट्रीय चेतना में परिणत हो गयी थी। तिलक जेल जा चुके थे और जब वे जून, १९१४ में छूटे, पुनः होमरूल का आन्दोलन लेकर संघर्ष–पथ में आ गए। तिलक और ऐनीबेसेन्ट ने राष्ट्रीय चेतना को तीव्रतर करते रहने का बड़ा प्रयत्न किया। गोखले की "नरमदलीय" नीति इसमें बाधक थी। जब १९१५ में गोखले की मृत्यु हुई, काँग्रेस के समक्ष विकट संकट आया। नरमदलीय लोग उसे जैसे-तैसे चला रहे थे। तिलक काँग्रेस से बाहर थे। उनकी उग्र चेतना के लिए अब तक काँग्रेस में स्थान न था। १९१५ के ही काँग्रेस अधिवेशन में ऐसे वैधानिक संशोधन हुए कि तिलक के लिए काँग्रेस के नेतृत्व का द्वार खुला।

इन्हीं परिस्थितियों के बीच कांग्रेस और मुसलिम लीग के बीच एकता लाने के उद्देश्य से कुछ महत्वपूर्ण प्रयत्न हुये। सरकार शासन सुधार की बात चलाने लगी थी और लोग जब तब आशान्वित हो उठते थे। पर तिलक के नेतृत्व–काल तक काँग्रेस की सीमा यह थी कि उसमें बुद्धिजीवी वर्ग का ही प्रतिनिधित्व हो पाया था। तिलक की मृत्यु (१९२०) के बाद काँग्रेस का नेतृत्व जब गाँधी जी के हाथ में आया, एक व्यापक परिवर्तन भारतीय जन–मानस में लक्षित हुआ। कांग्रेस में निम्न मध्यवर्ग का प्रतिनिधित्व हुआ और राष्ट्रीय जागरण का नया अध्याय खुला। साहित्य को जीवन के निकट आने का अवसर मिला। १९१९ में रौलट बिल के प्रस्तुत होते ही गाँधी जी तिलमिला उठे थे और सत्याग्रह की घोषणा कर चुके थे। अब तो व्यापक जन–आन्दोलनों का आरम्भ हुआ। हिन्दू-मुसलमानों में राष्ट्रीय भावना के आग्रह से भाई–चारा दिखलाई पड़ा। सरकारी नौकरियों से लोग इस्तीफा देने लगे। स्वदेशी वस्तुओं का व्यवहार, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार, कौंसिल और चुनाओं का बहिष्कार, छूत–अछूत के भेद का विरोध : उपर्युक्त आन्दोलन के ये कई पक्ष थे। किसान-मजदूर आ गये थे। तभी १९२२-२३ में साम्प्रदायिक दंगे होने लगे और राष्ट्रीय आन्दोलन को बड़ा धक्का लगा। गाँधी जी को गहरा मानसिक कष्ट हुआ। पर आन्दोलन दबा नहीं। १९२८ में जब साइमन कमीशन सामने आया तो देशव्यापी आन्दोलन हुआ। अंग्रेजों ने नृशंस दमन का सहारा लिया। लाठियाँ बरसीं, गोलियाँ चलीं पर आन्दोलन दबा नहीं। पं० नेहरू अब तक राजनीति में आ गये थे। आन्दोलन का प्रभाव बढ़ता जा रहा था। युवकों–मजदूरों में समान उद्वेग था। देश में पहले से व्याप्त मन्दी के कारण मजदूरों को ब्रिटिश उद्योगपतियों ने दबाया तो वे और

भी उबले। अंग्रेजी साम्राज्यवादी शोषण की पद्धतियाँ अधिक सूक्ष्म हो गयी थीं। १९३० में पूर्ण स्वाधीनता की माँग की गयी। कुछ परिणाम न हुआ। उसी समय भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन हुआ। काँग्रेस से काँग्रेस–समाजवादी और साम्यवादी दल अलग हुए। दमन की प्रतिक्रिया इससे गहरी ही हुई। १९३० में नेहरू और गाँधी गिरफ्तार हुए। १९३१ में पूर्ण स्वाधीनता की पहली वर्षगाँठ के दिन सभी मुक्त हुए। गाँधी–इरविन समझौते की बात चली, और निष्फल हुई। १९३२ तक दमन के आघात और भी नृशंसता-पूर्ण हो गए थे। इसी वर्ष गाँधी जी ने यरवदा जेल में आमरण अनशन प्रारंभ किया। महाजनी सभ्यता और पूँजीवाद : साम्राज्यवादी शोषण में समान योग दे रहे थे। १९३६ में ही प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई और इसी वर्ष प्रेमचंद का देहान्त हुआ—जो इस युग की समस्त राष्ट्रीय उथल–पुथल के प्रति निरन्तर सचेत रहे।

मानसिक परिस्थितियां

प्रेमचंद–युग की रचनात्मक–प्रक्रिया के प्रेरक तत्वों में इस युग के व्यक्तियों की मानसिक परिस्थितियों को पृथक रूप से महत्व देने की आवश्यकता प्रतीत होती है। स्वतंत्रता से पूर्व के संघर्ष और अनिश्चय में अनेक असंगतियाँ थीं जो तत्कालीन व्यक्तियों की मानसिक परिस्थितियों का निर्माण कर रही थीं। ये असंगतियाँ जैसे गाँधीवाद में प्राप्त होती हैं, वैसे ही, प्रेमचंद-युग के रचनात्मक साहित्य में भी। इस युग के कृतिकारों के रचनात्मक मानस में यह असंगति प्रत्यक्ष है कि एक ओर वे परम्परागत नैतिक तथा सुधारवादी मूल्य मर्यादाओं से अनुशासित होते हैं और दूसरी ओर नये मानव–विवेक के आधार पर परिस्थितियों के मोह-भंग की प्रतिक्रिया में सुख–दुःख के आभ्यंतर कारणों की खोज करना चाहते हैं। आधुनिक मनुष्य जिस प्रकार के विरोधी उपादानों का सम्मिश्रण है, उसका उदय प्रेमचंद–युग में ही हो चला था। निस्संदेह प्रेमचंद–युग के अन्तिम वर्षों में ही उसकी पहचान स्पष्ट हो सकी।

सामाजिक मनोविज्ञान का उपयोग

परिस्थितियों के प्रति सजगता और आत्मसजगता–दो वस्तुएँ हैं। प्रस्तुत युग के लेखक परिस्थितियों के प्रति जागरूक अवश्य हैं पर वे परवर्ती लेखकों की भाँति आत्मसजग नहीं हैं। अतः इनका उद्देश्य समाज के साधारण मनोविज्ञान में प्रवेश कर अपने उपयोग की सामग्री प्राप्त करना है। अपने

मानस में प्रवेश कर उसके उद्वेलन की अनुभूति प्राप्त करने एवं उसे चित्रित करने की रचनात्मक व्याकुलता प्रस्तुत युग के लेखकों की रचना–प्रक्रिया का अंग नहीं है, यद्यपि धीरे–धीरे यह व्याकुलता प्रस्तुत युग के कृतिकारों के रचनात्मक मानस को प्रभावित करती गयी है।

प्रस्तुत युग की कहानियों के अध्ययन से प्रत्यक्ष है कि इनके सृजन-कर्ताओं की प्रेरणा का स्रोत सामाजिक तथा व्यावहारिक मनोविज्ञान है। सामाजिकता और वैयक्तिकता व्यक्तित्व के विकास की एक ही प्रक्रिया के दो पक्ष हैं।[1] पर इन रचनाकारों ने अपनी कहानियों में व्यक्त चरित्रों के सामाजिक पक्ष पर अधिक बल दिया है और प्रायः "व्यक्ति" की निजी संवेदनाओं और अनुभूतियों के चित्रण में वे पीछे रह गए हैं। कथावस्तु, चरित्र, वातावरण और संवेदनाओं का चित्रण करते हुए इस काल के कहानी लेखकों ने जिस प्रकार के सामाजिक मनोविज्ञान का उपयोग किया है, वह अपनी प्रकृति में अत्यन्त सहज और अजटिल है। उसका उपयोग घटनाओं की सृष्टि में नहीं, पात्रों की "मनोगति"[2] दिखाने के लिए किया, गया है यही इस युग की रचनात्मक शक्ति है।

यथार्थ की चेतना और आदर्श का प्रश्न

उपर्युक्त ऐतिहासिक परिस्थितियों एवं सामाजिक प्रेरणाओं पर ध्यान देने से ज्ञात होता है कि प्राचीन संस्कारों की रूढ़ि के प्रति विद्रोह और यथार्थ की चेतना के अनुरूप नवीन संस्कारों के बीजारोपण[3] का प्रयास इस युग की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। पर, आदर्श–यथार्थ का संघर्ष इस युग में निरन्तर बना हुआ है। उदात्त मानव–मूल्यों की प्रतिष्ठा प्रसाद और प्रेमचन्द के साहित्य की समान विशेषता है। मानवशास्त्र का ज्ञान प्राप्त करने की आकाँक्षा इस युग के कृतिकारों को यदि यथार्थ की ओर बढ़ाती है तो आदर्श की चेतना आत्मपरिष्कार की ओर प्रेरित करती है। इस युग के कृतिकारों ने यथार्थ की चेतना को बाह्य यथार्थ से भिन्न अर्थ देने का प्रयत्न भी किया है।

१–" द साइकाँलोजी आफ सोसायटी : मारिस जिन्सवर्ग : पृ० १६६।

२–"अब हम कहानी का मूल्य उसके घटना-विन्यास से नहीं लगाते। हम चाहते हैं, पात्रों की मनोगति स्वयं घटनाओं की सृष्टि करे।"
–प्रेमचन्द : मानसरोवर : भाग १ : भूमिका : पृ० ११।

३–हिन्दी साहित्य की भूमिका : हजारीप्रसाद द्विवेदी : पृ० १४६।

इस युक्ति के पीछे भी आदर्श की प्रेरणा है। "वेदना से प्रेरित होकर जब साधारण के अभाव और उनकी वास्तविक स्थिति तक पहुंचाने का प्रयत्न यथार्थवादी साहित्य करता है,[1]" यह विचार व्यक्त करते हुए प्रसाद ने यथार्थवाद को आदर्श–भाव से सम्बद्ध करना चाहा और प्रेमचन्द ने तो "आदर्शोन्मुख यथार्थवाद" की प्रतिष्ठा ही अपने कृतित्व के माध्यम से की है।

ग–प्रस्तुत युग के कहानी लेखक : उनका कृतित्व

आधुनिक हिन्दी कहानी परम्परा का आरम्भिक विकास प्रमुख रूप से प्रेमचन्द एवं जयशंकर प्रसाद की कहानियों में दिखाई पड़ता है। इस विकास में प्रेमचन्द का योग इतना व्यापक और महत्वपूर्ण है और उनका कथासाहित्य इतना विविध और विस्तृत है कि उन्हें आधार मानकर ही हम हिन्दी कहानी के क्रमिक विकास का अध्ययन करते हैं और उनके युग को उनकी संज्ञा से सम्बद्ध करते हैं। अस्तु,

प्रेमचन्द-युग के अग्रणी कहानी लेखक स्वयं प्रेमचन्द एवं प्रसाद हैं। सम्पूर्ण युग पर इन दोनों लेखकों के कृतित्व का प्रभाव है, यद्यपि इन दोनों लेखकों की चिन्ताधारा और रचनापद्धति एक दूसरे से सर्वथा भिन्न है। इसी अन्तर को ध्यान में रखते हुए डा० लक्ष्मीनारायणलाल ने प्रेमचन्द को आदर्शोन्मुख यथार्थवादी परम्परा का प्रतीक और प्रसाद को भावमूलक परम्परा का अधिष्ठाता कहा है।[2] परन्तु इस अन्तर को इतने स्थूल रूप में देखने से भ्रामक निष्कर्षों पर भी पहुंचा जा सकता है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि इस काल के प्रमुख एकाधिक लेखकों की रचनापद्धति और प्रक्रिया का विश्लेषण किया जाय और इस आधार पर पूरे युग की रचनात्मक प्रक्रिया की विशिष्टताओं और सीमाओं को समझने का प्रयत्न किया जाय।

१–काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध : जयशंकर प्रसाद : पृ० १२२।

२–"प्रेमचन्द मूलत : आदर्शोन्मुख यथार्थवादी परम्परा के प्रतीक थे। प्रसाद भावमूलक परम्परा के अधिष्ठाता थे। तुलनात्मक दृष्टि से प्रसाद की भावमूलक परम्परा को अपेक्षाकृत कम कहानीकारों ने अपनाया और प्रेमचन्द की यथार्थवादी परम्परा में इस युग के अधिक से अधिक कहानीकार आए। व्यापक रूप में विकास-युग इन्हीं दोनों की कलाओं के अनुसरण का फल है।"–हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास : : डा० लक्ष्मीनारायण लाल : पृ० ७१

विकास-क्रम से हिन्दी कहानी का अध्ययन करें तो ज्ञात होगा कि प्रसाद की पहली कहानी "ग्राम" १९११ में और प्रेमचन्द की पहली हिन्दी कहानी (क्योंकि इससे पूर्व की प्रेमचन्द की सभी कहानियाँ उर्दू में ही थीं) "पंचपरमेश्वर" १९१६ में प्रकाशित हुई थी। इन दोनों कहानियों के रचना-काल के बीच में प्रकाशित मुख्य कहानियाँ "कानों में कंगना" (राजा राधिका-रमण प्रसाद सिंह), रक्षा बन्धन (विश्वम्भरनाथ शर्मा "कौशिक") तथा "उसने कहा था" (चन्द्रधर शर्मा गुलेरी) आदि हैं। इन्हीं कहानी लेखकों, और इन्हीं कहानियों की रचना–विधि के अध्ययन से इस युग के प्रेरणा–स्रोतों से परिचित होना सम्भव हो सकता है।

प्रेमचन्द : अध्यापक से लेखक

प्रेमचन्द का स्थान हिन्दी कहानीकारों में सर्वोपरि है। उनकी रचनात्मक चेतना का विकास जहाँ देश के स्वराज्य आन्दोलन की प्रतिक्रिया के अनुसार हुआ, वहीं उनके निजी जीवन-संघर्ष का प्रभाव भी उस पर कम नहीं पड़ा। प्रेमचन्द की मानसिक रचना इस प्रकार नहीं हुई थी कि वे परि-वेश के संघर्ष तथा राष्ट्रीय हलचलों की प्रेरणा से अछूते रहते। प्रेमचन्द की रचनात्मक–चेतना के अध्ययन से पता चलता है कि उनके मन में आरम्भ से ही कोई उलझाव न था। १९१४ के आस–पास की उनकी कहानियों में सामा-जिक संघर्ष की चेतना का बोध यद्यपि स्पष्ट नहीं था, पर संघर्ष में उनकी आस्था निरन्तर थी। वक्तव्यों, सम्पादकीय टिप्पणियों और पत्रों में वे यह आस्था व्यक्त करते ही रहते थे। १९१५–१६ में हिन्दू मुसलिम एकता के देशव्यापी प्रयत्नों में उनका सक्रिय रचनात्मक योग था। १९१५ के बाद की प्रेमचन्द की कहानियों को देखने से ज्ञात होता है कि वस्तुओं, व्यक्तियों और परिस्थितियों की जो चेतना उन्होंने "प्रत्यक्षीकरण" द्वारा प्राप्त की थी, उसे "स्मृति" द्वारा सजीव किया। उनकी रचना–प्रक्रिया का यह विकास "कजाकी" जैसी कहानियों में स्पष्ट है। कजाकी में अपनी ही बात बच्चे के मुंह से कह-लाते हुए उन्होंने संकेत किया है कि उनकी अकाल-प्रौढ़ता परिस्थितियों के तीखे संघर्ष का ही परिणाम थी।

प्रेमचन्द के रचनात्मक विकास की प्रक्रिया के मूल में एक अन्य संघर्ष भी दिखाई पड़ता है जो उनके "अध्यापक" और "लेखक" के बीच चलता रहता था। अध्यापक उनके लिए शासन-व्यवस्था का अंग होने के कारण जीविका की भाँति था। उससे मुक्त होकर वे अपने को सीधे राष्ट्रीय संग्राम

में रख सके थे। स्वाराज्य आन्दोलन की स्वाभाविक चेतना से प्रेरित होकर जो कहानियां प्रेमचन्द ने लिखी हैं उनमें उपर्युक्त संघर्ष का स्पष्ट आभास है। "विचित्र होली" इसी स्तर की कहानी है।

आन्दोलन की तीव्रता : लेखक का उत्साह

प्रेमचन्द के रचनात्मक उत्साह के पीछे आन्दोलनों के तीव्रतर होने की प्रेरणा थी। राष्ट्रीय हलचलों ने प्रेमचन्द के मन को जितना हिलाया, उतना उनके समकालीन किसी अन्य लेखक को नहीं। प्रसाद की दार्शनिक और काव्यात्मक चेतना (प्रेमचन्द जिसके पक्षधर कभी नहीं हुये) जहाँ उन्हें राष्ट्रीय संघर्ष का समाधान, भीतर गंभीर मानस में ढूँढ़ने या अतीत की स्वाधीन चेतना के भीतर ढूँढ़ने के लिये प्रेरित करती थी, वहाँ सुदर्शन और कौशिक की अन्तर्दृष्टि की अपनी सीमायें थीं। आन्दोलनों के प्रति प्रेमचन्द की चेतना अवसर की चेतना न थी, भीतरी और रचनात्मक थी।

आन्दोलन की चेतना में जब असंगति दिखाई देती है या परिस्थितियों से लड़ते-लड़ते जब प्रेमचन्द थक जाते हैं, एक अवसाद की छाया उनके साहित्य में दिखाई देती है। रचनात्मकता को मूल बस्तु माननेवाले प्रेमचन्द इस अवसाद को भी अपनी रचनाओं द्वारा सारगर्भित बना देते हैं।

रचना के प्रति दृष्टिकोण तथा रचनात्मक विकास

प्रेमचन्द ने कहानी के प्रति सारा दृष्टिकोण ही बदल दिया। उनसे पहले की कहानी में या तो शुद्ध कल्पना-विलास होता था या नीति और उपदेश के स्थूल सूत्र होते थे। प्रेमचन्द ने एक ओर यदि कहानी में मनोरंजन और मानसिक तृप्ति की आवश्यकता बताई,[1] तो दूसरी ओर उससे चरित्र

१—"हम कहानी ऐसी चाहते हैं कि वह थोड़े शब्दों में कही जा सके। उसमें एक वाक्य, एक शब्द भी अनावश्यक न आने पावे, उसका पहला ही वाक्य मन को आकर्षित कर ले और अन्त उसको मुग्ध किए रहे और उसमें कुछ चटपटापन हो-कुछ ताजगी हो, कुछ विकास हो, उसके साथ ही कुछ तत्व भी हो, तत्वहीन कहानी से चाहे मनोरंजन भले ही हो जाय मानसिक तृप्ति नहीं होती। यह सच है कि हम कहानियों में उपदेश नहीं चाहते। लेकिन विचारों को उत्तेजित करने के लिए, मन के सुन्दर भावों को जाग्रत करने के लिए कुछ न कुछ अवश्य चाहते हैं। वही कहानी सफल होती है, जिसमें इन दोनों में से-मनोरंजन और मानसिक तृप्ति में से एक अवश्य उपलब्ध हो।"—साहित्य का उद्देश्य : प्रेमचन्द : पृ० ४५।

निरूपण की संभावना की ओर संकेत किया,[1] और अन्ततः उन्होंने कहानी का आधार अनुभूति को बताया, घटना को नहीं ।[2]

प्रेमचन्द की मान्यता को उनकी कहानियों के प्रकाश में ही देखना उचित होगा । इस दृष्टि से विचार करने पर प्रेमचन्द के रचनात्मक विकास के तीन क्रमिक स्तर दिखाई देते हैं । उनके रचनात्मक विकास के प्रथम चरण में १९१७ और १९२० के बीच की कहानियाँ आती हैं जो "सप्तसरोज" और "प्रेमपचीसी" आदि में संकलित हैं । इस काल की कहानियों की सीमाएँ अनेक हैं और उनमें लेखक की अपरिपक्वता के स्पष्ट संकेत भी हैं । लम्बे कथानकों वाली इन कहानियों में अनावश्यक घटनात्मक विस्तार मिलता है । लेखक की अनपेक्षित टिप्पणियाँ और भूमिकायें भी इनके एकात्मक प्रभाव में बाधक बनती हैं । चरित्रों में आदर्शपरायणता आरोपित कर दी गई प्रतीत होती है । इस काल की कहानियाँ है– सौत, पंचपरमेश्वर, नमक का दरोगा, बड़े घर की बेटी, रानी सारंधा आदि । वह संवेदनात्मक अनुभूति इन कहानियों में बहुत कम मिलती है, जिसके प्रभाव से चरित्र बाह्य आचरण से अलग भी महत्वपूर्ण इकाई बन पाते हैं ।

"बड़े घर की बेटी" उपरिनिर्दिष्ट अनेक सीमाओं का उदाहरण प्रस्तुत करने वाली कहानी है जिसमें कहानी सपाट है, जिसमें घटित होनेवाला व्यापार स्वाभाविक न होकर चमत्कारपूर्ण है और एक आकस्मिक प्रभाव से जिसकी दिशा बदल जाती है । परिणाम यह कि "बड़े घर की बेटी" पाठकों

१–"कहानी में बहुत विस्तृत विश्लेषण की गुंजाइश नहीं होती । यहाँ हमारा उद्देश्य सम्पूर्ण मनुष्य को चित्रित करना नहीं, वरन् उसके चरित्र का एक अंग दिखाना है । यह परमावश्यक है कि हमारी कहानी से जो परिणाम या तत्व निकले, वह सर्वमान्य हो और उसमें कुछ बारीकी हो ।" —वही, पृ० ४६ ।

२– "कहानी जीवन से बहुत निकट आ गई है । उसकी जमीन अब उतनी लम्बी चौड़ी नहीं है । उसमें कई रसों, कई चरित्रों और कई घटनाओं के लिए स्थान नहीं रहा । वह अब केवल एक प्रसंग का, आत्मा की एक झलक का सजीव हृदयस्पर्शी चित्रण है । इस एकतथ्यता ने उसमें प्रभाव, आकस्मिकता और तीव्रता भर दी है । अब उसमें व्याख्या का अंश कम, संवेदना का अंश अधिक होता है ।.......... खुलासा यह कि कहानी का आधार अब घटना नहीं, अनुभूति है ।" –वही, पृ० ४६–४७ ।

की दृष्टि में एक आदर्शवादी सामान्य परिणति की कहानी है। ऐसी ही कहानी प्रेमचन्द लिखित लम्बी भावात्मक कहानी "आगापीछा" भी है। कहानी में प्रेम और विवाह की विषमता और वेश्या की पुत्री के प्रति समाज की अकारण घृणा का निदर्शन है और कहानी का अन्त नायक की पीड़ा और मृत्यु के बीच एक भावुक विह्वलता के उल्लेख के साथ होता है। कहानी का अन्त देखने से लेखक ही की सीमा का अनुमान किया जा सकता है।[1] इस सीमा को ध्यान में रखते हुए इसकी तुलना विश्वम्भरनाथ शर्मा "कौशिक" की "स्वाभिमानी नमक हलाल" कहानी से की जा सकती है जिसमें मुनीम एक आकस्मिक प्रयोग से विपत्ति के अवसर को सदा के लिए टाल देता है।[2]

प्रेमचन्द के दूसरे विकास-स्तर की कहानियाँ १९२० और ३० के बीच की कहानियाँ हैं। इसीकाल की कुछ कहानियाँ प्रमाणित करती हैं कि प्रेमचन्द की रचना-पद्धति और किसी अर्थ में उनके समस्त रचनात्मक दृष्टिकोण में कितनी जल्दी, और कितना अधिक परिवर्तन हुआ। वज्रपात, शतरंज के खिलाड़ी, मुक्ति का मार्ग, माता का हृदय आदि कहानियों में कथानक संगठित हो गए हैं और उनमें वह अनावश्यक विस्तार नहीं है जिसके प्रभाव से कहानी में विवरण ही विवरण दिखाई देते हैं, वह मनोवैज्ञानिक अनुभूति प्रस्फुटित ही नहीं होती जो वस्तुतः रचना का आदर्श है। इन कहानियों में वर्णित परिस्थितियों

१– "श्रद्धा की आँखें रोते-रोते लाल हो रही थीं। उसे ऐसा मालूम हुआ मानों भगतराम उसके सामने प्रेमालिंगन का संकेत करते हुए मुस्करा रहे हैं। वह अपनी दशा, काल, स्थान, सब भूल गई। जख्मी सिपाही अपनी जीत का समाचार पाकर अपना दर्द, अपनी पीड़ा भूल जाता है। क्षण भर के लिए मौत भी हेय हो जाती है। श्रद्धा का भी यही हाल हुआ। यह भी अपना जीवन प्रेम की निठुर वेदी पर उत्सर्ग करने के लिए तैयार हो गयी, जिस पर लैला और मजनूँ, शीरीं और फरहाद— एक नहीं, हजारों ने अपनी बलि चढ़ा दी।"

—आगापीछा : प्रेमचन्द : मानसरोवर : चतुर्थ भाग : पृ० १२९।

२– "अकस्मात् उनके हाथ थर्राए, और हुंडी हाथ से छूटकर अंगीठी में जा गिरी। जब तक लोगों का ध्यान उसकी ओर जाय-जाय, तब तक वह जल कर राख हो गयी। भुगतान माँगनेवाले के चेहरे का रंग उड़ गया। इधर चुन्नूमल का चेहरा मारे प्रसन्नता के खिल उठा।"

स्वाभिमानी नमक हालल : कौशिक : चित्रशाला : पृ० २०।

के अध्ययन से यह बात स्पष्ट दिखाई देती है कि लेखक आदर्श को आरोपित नहीं करना चाहता, उसे यथार्थ के भीतर से दिखाना चाहता है। इसी विकासकाल की दो-चार ऐसी कहानियाँ हैं जो अपने रचनात्मक विधान में बड़ी सूक्ष्म और कलात्मक बन पड़ी हैं। उदाहरण के लिए हम "शान्ति" नामक कहानी को ले सकते हैं। कहानी के कथानक, वातावरण और परिस्थिति आदि को देखते हुए सबसे पहले हमें कहानी के शीर्षक पर विचार करना चाहिए। हिन्दी की प्रारम्भिक कहानियों के पाठक को भ्रम हो सकता है कि "शान्ति" सम्भवतः व्यक्तिवाचक संज्ञा है अर्थात् कहानी के किसी प्रमुख चरित्र का नाम है जब कि वस्तुस्थिति यह है कि "शान्ति" इस कहानी में न केवल एक मनोदशा है, बल्कि बड़ी ही सूक्ष्म मनोदशा है और वह गोपा नामक स्त्री की अपार व्यथा का ही रूप है।[1] देवनाथ की मृत्यु के बाद भी, उनकी पत्नी कितने स्वाभिमानपूर्ण उत्तरदायित्व के साथ अपना घर संभालती है और कितने उछाह से, कष्ट सहकर अपनी कन्या सुनीता को बड़े घर में व्याहती है—यह कहानी का पूर्वपक्ष है और कहानी के मुख्य संवेदनात्मक प्रभाव की सृष्टि में इस पक्ष का योग अत्यन्त नगण्य है। सुनीता की अपने पति से निभ नहीं पाती और उसके घर से चले जाने के बाद भी वह अपनी माता की छाया में नहीं आती—बल्कि अपनी आत्ममृत्यु से समस्त पारिवारिक यातनाओं को स्वाभिमान-पूर्ण उत्तर देकर जीवन-क्रिया समाप्त करती है— यह कहानी का अन्तिम और प्रधान पक्ष है। शान्ति की अनुभूति सुनीता की माँ गोपा को होती है और वह भी इस विचार से कि उसने स्वाभिमान के साथ अपना कर्तव्य निर्वाह किया—कहानी की इस परिणति में कितनी गहरी मनोवैज्ञानिक अनुभूति विद्यमान है, यह बताने की आवश्यकता नहीं। ध्यान देने की बात तो यह है कि शान्ति सुख और सन्तोष का विषय न होकर, अपार व्यथा का ही रूप है। कहानी का मर्म इसी संकेत में निवास करता है। कहानी के बाह्य तत्वों के विवेचन से इस मर्म की अनुभूति प्राप्त कर सकना कठिन है।

प्रेमचन्द के तृतीय विकास काल की कहानियाँ मनोविश्लेषणात्मक हैं। समय की दृष्टि से ये कहानियाँ ३०, और ३६, के बीच की हैं अर्थात् प्रेमचंद

१— "मैं ऊपर जाकर लेटा, तो मेरे दिल का बोझ बहुत हलका हो गया था, किन्तु रह रह कर यह सन्देह हो जाता था कि गोपा की यह शान्ति उसकी अपार व्यथा का ही रूप तो नहीं है।"

—मानसरोवर —भाग १ : पृ० १०३।

के रचनात्मक उत्कर्षकाल की कहानियाँ हैं। ये कहानियाँ सजीव चरित्रों के सच्चे सम्बन्धों की कहानियाँ हैं। पूस की रात, कफ्न, नशा, कुसुम, मिस पद्मा, अलग्योझा आदि कहानियाँ इसी विकास-स्तर की कहानियाँ हैं। आधुनिक कहानी से जिस कलात्मक श्रेष्ठता की अपेक्षा हम करते हैं वह इन कहानियों में सहज ही उपलब्ध है। आदर्शों का आतंक इन कहानियों पर नहीं है,[1] अतः नीतिकथाओं की-सी एकरसता इनमें नहीं मिलती। इन कहानियों में प्रेमचन्द इस सीमा तक जागरूक दिखाई पड़ते हैं कि वे मुख्य संकेतार्थ को भी सूक्ष्म व्यंजना द्वारा उपस्थित करते हैं। अभिव्यक्ति का यह संयम प्रेमचन्द-काल के लेखकों में ही नहीं, वर्तमान कहानी–लेखकों में भी कम दिखाई पड़ता है। प्रेमचन्द एक विशेष सहानुभूतिपूर्ण विवेक द्वारा अपनी इन कहानियों में चरित्रों की दुर्बलताओं का निरूपण करते हैं। उदाहरण के लिए "नशा" नामक कहानी में ईश्वरी की वैभवप्रियता के प्रभाव से ही उसके मित्र का मनोविज्ञान किस प्रकार दूषित हो उठता है, इसकी ओर संकेत है। परिस्थितियों के अनुसार बदलते हुए मानव-व्यवहार को इस चरित्र के द्वारा अत्यन्त कुशलता से दिखाया गया है। पं० नन्ददुलारे वाजपेयी ने संभवतः प्रेमचन्द के इसी गुण को 'साधारण विवेक'[2] कहा है जो हमारी समझ में उनका सहानुभूतिपूर्ण विवेक है। यही प्रमुख विशेषता प्रेमचन्द की अन्य श्रेष्ठ कहानियों पूस की रात, कफन आदि की सफलता के मूल में भी है। चरित्रों की दुर्बलताओं के लिए जो परिस्थितियाँ उत्तरदायी हैं उनकी ओर संकेत करने से इन कहानियों का प्रभाव ही भिन्न प्रतीत होता है। प्रेमचन्द की मानसिक प्रक्रिया का पहला धरातल क्रियात्मक है, दूसरा भावात्मक, तथा तीसरा ज्ञानात्मक। उनकी संवेदना, तर्क, कल्पना, स्मृति आदि के योग से तो निर्मित

१–"यहाँ चरित्रों की आदर्शवादी मान्यताएँ सब बहुत पीछे छूट गईं, क्योंकि वे सब झूठी थीं, उपदेशात्मक थीं। यहाँ के चरित्र कहानी के चरित्रों की भाँति अपने सच्चे रूप में आए।"

–हिन्दी कहानियों की शि० वि० का विकास :

डा० ल० ना० लाल : पृ० १५५।

२– साधारण विवेक, अनुभव की प्रौढ़ता, आत्मविश्वास और कथा का स्वाभाविक सौंदर्य प्रेमचन्द की ऐसी विशेषतायें हैं, जो उन्हें हिन्दी कहानियों का श्रेष्ठ निर्माता सिद्ध करती हैं।"

–आधुनिक साहित्य –न० दु० वाजपेयी –पृ० २४९।

है ही, वस्तु या अनुभव के सम्पूर्ण प्रत्यक्षीकरण में उसका सक्रिय योग है। प्रेमचन्द के जीवन संघर्ष की कथा, निरन्तर लड़ते–जूझते हुए चरित्र की कथा है। इस स्तर पर विचार करने से लगता है कि "पूस की रात" कहानी के हलकू किसान तथा ऐसे अन्य चरित्र स्वयं प्रेमचन्द के सजीव प्रतिबिम्ब हैं।

जयशंकर 'प्रसाद'

प्रसाद की कहानियों के आधार पर उनकी रचना-प्रक्रिया का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि प्रेम-सौन्दर्य की जो भावात्मक चेतना उनके व्यक्तित्व का अंग थी, वही उनकी कहानियों का अंग भी हैं। हाँ, उसे मनोवैज्ञानिक अन्तःसंघर्ष की समानान्तरता में रखकर अपनी कहानियों को एक रचनात्मक अर्थ उन्होंने दे रखा है।

जयशंकर प्रसाद की कहानियां मूलतः भावमूलक (रोमाण्टिक) और आदर्शवादी हैं। उदात्त मानव–मूल्यों के प्रति विशेष प्रकार का आग्रह उनकी अधिसंख्य कहानियों के मूल में है। समीक्षकों ने इसके लिए प्रसाद के कवि–मन पर पड़े हुए बौद्ध–दर्शन एवं भारतीय अतीत-संस्कृति के प्रभाव को उत्तरदायी बताया है। विशेष प्रकार की करुणा और निष्पृह त्याग की भावना सम्भव है, इन्हीं कारणों से प्रसाद की कहानियों में आई हो, पर स्वाभाविक प्रेम–भावना एवं करुणा की ऐसी छाप भी उनकी कहानियों पर है जिसे सहज भाव से देखा जा सकता है। कतिपय कहानियों में प्रसाद ने सामाजिक तथा नैतिक रूढ़ियों के प्रति विद्रोह–भावना का परिचय भी दिया है। उनका यह दृष्टिकोण उनके उपन्यासों में मुख्य रूप से विकसित हो सका है। इतिहास के अतीत से ग्रहीत कहानियों में 'प्रसाद' ने उदात्त सांस्कृतिक आदर्शों एवं श्रेष्ठ मानव–मूल्यों की प्रतिष्ठा की है। पर सब मिलकर 'प्रसाद' की कहानियाँ रोमाण्टिक और भावमूलक ही हैं। इस तथ्य की परीक्षा उनकी कुछ प्रमुख कहानियों के प्रकाश में ही की जा सकती है।

भावुकता के आग्रह से ही प्रसाद की कहानियों में वातावरण के भावपूर्ण चित्रण पर जोर है।[1] उदाहरण के लिए हम "आकाशदीप" कहानी के बीच का यह अंश ले सकते हैं—

१– "प्रसाद की कहानियों में वातावरण के भावपूर्ण चित्रण पर जोर है जिससे

"सामने जलराशि का रजत शृङ्गार था। वरुण बालिकाओं के लिए लहरों से हीरे और नीलम की क्रीड़ा शैलमालायें बना रही थी और वे मायाविनी छलनाएँ अपनी हँसी का कलनाद छोड़कर छिप जाती थीं। दूर-दूर से धीवरों की वंशी की झनकार उनके संगीत सी मुखरित होती थी।[1]"

कुछ कहानियों का आरम्भ भी इसी प्रकार की भावुकतापूर्ण वातावरण-सृष्टि द्वारा होता है, जैसे 'विसाती" कहानी का आरम्भ इस प्रकार होता है—

"उद्यान की शैला-माला के नीचे एक हरा–भरा छोटा–सा गाँव है। बसन्त का सुन्दर समीर उसे आलिंगन करके फूलों के सौरभ से उसके झोपड़ों को छू भर देता है। तलहटी के हिमशीतल झरने उसको अपने बाहुपाश में जकड़े हुए हैं। उस रमणीय प्रदेश में एक स्निग्ध–संगीत निरन्तर चला करता है।[2]"

इसी प्रकार "दासी" कहानी में "बसन्त की चाँदनी रात अपनी उज्ज्वलता में महल के मीनारों और गुम्बदों तथा वृक्षों की छाया में लड़खड़ाती" हुई बिखाई देती है[3] और 'व्रतभंग' कहानी में उपवन के सौध मन्दिर में अगरु, कस्तूरी और केशर की चहल–पहल" के बीच "वीणा, वंशी और मृदंग की स्निग्ध ध्वनि"[4] बिखरती रहती है। ये समस्त वातावरण चित्र प्रसाद के मानसिक संस्कारों और उनके प्रत्यक्षानुभवों के फल हैं।

प्रसाद के वातावरण-चित्रों में व्यक्त प्रेम और सौन्दर्य की उष्ण गन्ध उनके उस संवेदनशील मन का रहस्य खोलती है जो काशी की प्रसिद्ध सौन्दर्यपुरी में चलने वाले सौन्दर्य-प्रेम–व्यापारों को नित्य देखता रहता था। उनकी कहानियों में बेला, नीरा, फिरोजा, रोहिणी जैसे चरित्रों की रूपदीप्ति की पहचान उपर्युक्त परिवेश से ही ग्रहीत जान पड़ती है। प्रसाद ने इन

पाठक कथासूत्र को पकड़ कर सहज वेग से आगे नहीं बढ़ता, बल्कि परि-दृश्यों की सौन्दर्य-छटा में उसका मन उलझता, रमता चलता है।"
—हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष : शिवदान सिंह चौहान : पृ० १८०।

१– आकाशदीप : जयशंकर प्रसाद : पृ० ७।
२– वही, पृ० १८५।
३– आँधी : प्रसाद : पृ० ६०।
४– वही, ७८।

चरित्रों को सजीवता देकर अपनी हार्दिकता प्रकट की है। उनकी रचना-प्रक्रिया का उनकी इन मानसिक प्रक्रियाओं से गहरा योग है। अल्हड़पन, चञ्चलता और हंसी से निर्मित प्रतिमाओं की पुनर्रचना उन्हें विशेष संतुष्टि देती हैं।

प्रसाद की कहानियों के रचनात्मक गठन का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि उनके चरित्रों में अन्तर्निहित घात-प्रतिघात कथा के विकास का प्रमुख माध्यम है। इसलिए उनकी प्रत्येक कहानी की संवेदना में चरित्रों का संघर्ष, प्रमुख तत्व है। 'आकाशदीप' तथा 'पुरस्कार' आदि कहानियाँ इसके लिए प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। 'आकाशदीप' में चम्पा और बुद्धगुप्त दोनों के मन में एक दूसरे के प्रति अतिशय स्नेह और आत्मीयता की भावना है। तभी कहीं से यह शंका आकर चम्पा के मन में बस जाती है कि बुद्धगुप्त ही सम्भवतः उसके पिता का घातक है और फिर वह अपने मन के संघर्ष से कभी मुक्त नहीं होती। बुद्धगुप्त के कहने पर : "मैं तुम्हारे पिता का घातक नहीं हूँ चम्पा ! वह एक दूसरे दस्यु के शस्त्र से मरे।" वह कहती है : "यदि मैं इसका विश्वास कर सकती ! बुद्धगुप्त ! वह दिन कितना सुन्दर होता, वह क्षण कितना स्पृहणीय ! आह ! तुम इस निष्ठुरता में भी कितने महान् होते !"[1]

कुतूहल, संघर्ष, चरम-सीमा की तीव्रता और संवादों के कलात्मक विधान द्वारा प्रसाद अपनी कहानियों में नाटकीयता ला सकने में सफल हो सके हैं। नाटकों की तरह उनकी कहानियाँ भी बीज, विकास और फलागम इन अवस्थाओं के क्रम से विकसित होती हैं। उदाहरण के लिए 'आकाशदीप' कहानी के आरम्भिक संवाद-अंश में 'बीज' नामक अवस्था देखी जा सकती है, क्योंकि यह अंश दोनों मुख्य चरित्रों को एक दूसरे के सम्पर्क में लाने वाला है और पूरी परिस्थितियों से परिचित कराने वाला है। चम्पा के प्रेम और कर्तव्य के द्वन्द्व में 'विकास' की अवस्था है और कहानी की दुःखान्त परिणति 'फलागम' की अवस्था को प्रत्यक्ष करती है। इस कहानी की इन्हीं विशेषताओं को लक्ष्य कर डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा इसे एकांकी की संवेदना के निकट मानते हैं।[2]

१—आकाशदीप : जयशंकर प्रसाद : पृ० १४।

२—"यह कहानी इतनी संवाद और क्रिया-बहुल मिलती है कि यदि बीच-बीच में रंगमञ्च सम्बन्धी निर्देश लगा दिए जाँय तो एक सुन्दर एकाङ्की

प्रसाद की रचना-पद्धति की एक बड़ी सीमा है—काव्यात्मकता, जो उनकी कहानियों को यथार्थ की भूमि से किञ्चित अलग रहती है और प्रेमचन्द की रचनात्मक चेतना से उन्हें भिन्न श्रेणी की रचनात्मक चेतना का कहानीकार सिद्ध करती है। उनकी कथावस्तु का संगठन, संघर्ष का नुकीलापन, सांकेतिक अर्थवत्ता—ये सभी विशेषतायें काव्योचित भावुकता और अलंकृत भाषा के साहचर्य से कभी-कभी अपना प्रभाव खो बैठती है। प्रसाद की रचनात्मक-प्रक्रिया के विकास की दिशा प्रेमचन्द से कितनी भिन्न है, इसका अनुमान कर सकना कठिन नहीं है।

कवि एवं कहानीकार प्रसाद की समस्त रचनात्मक-प्रक्रिया के निर्माण में एक ही प्रकार के भावनात्मक आदर्श कार्य करते हुए दिखाई देते हैं। "काव्य और कला : तथा अन्य निबन्ध" में प्रसाद ने काव्य को आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति की संज्ञा देते हुए अपने सारे रचनात्मक प्रयोजन की व्याख्या कर दी है। उन्होंने काव्य को एक श्रेयमयी प्रेय रचनात्मक ज्ञान-धारा कहा है और संकल्पात्मक अनुभूति की व्याख्या में उन्होंने रचनाकार की असामान्य मानसिक अवस्था[1] पर बल दिया है। प्रसाद की तुलना में प्रेमचन्द की बाह्यार्थ निरूपणी रचनात्मक दृष्टि ने जनसाधारण की गहरी भावनाओं और सामाजिक प्रतिक्रियाओं को समझने का यत्न किया है। इस आधार पर हम देखते हैं कि प्रसाद और प्रेमचन्द की रचनाप्रक्रिया का मौलिक अन्तर यह है कि प्रसाद का रचनात्मक प्रयोजन व्यक्ति के भावगत् अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण करना है और व्यक्तितत्व को स्वीकार करते हुये उसके भावजगत् में निहित प्रेम, करुणा सहानुभूति, ईर्ष्या आदि वृत्तियों का अध्ययन करना है,

---

तैयार हो जाय। उसमें जो परिच्छेदों का आरम्भ है वह भी किसी-न-किसी प्रकार की प्राकृतिक सुषमा से संयुक्त है। परिच्छेदारम्भ के ये प्रकृति-चित्र रंगमञ्चीय पटों का काम देते हैं।"

—कहानी का रचना विधान : डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा (सं० १९५६) पृ० १००

१—"आत्मा की मनन-शक्ति की वह असाधारण अवस्था, जो श्रेय सत्य को उसके मूल चारुत्व में सहसा ग्रहण कर लेती है, काव्य में संकलपात्मक मूल अनुभूति कही जा सकती है।"

—काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध : जयशंकरप्रसाद : पृ० ३८।

जबकि प्रेमचन्द की सृजन–प्रक्रिया में भावनात्मक प्रवृत्तियों के 'आघात–प्रत्याघातों की महत्ता' कम है।[1] प्रसाद जहाँ श्रेय और प्रेय के सामंजस्य में रत हैं, वहीं आदर्श और यथार्थ के सामंजस्य पर बल देते हैं और फिर परिस्थितियों के तीव्र आघात से शुद्ध यथार्थ की ओर उन्मुख होते हैं। प्रेमचन्द के निजी पत्रों को देखने से ज्ञात होता है कि उनके जीवन का कठिन दैन्य भी उनकी मानसिक प्रतिक्रियाओं को एक भिन्न गति एवं दिशा की ओर ले जाता रहा है। यथार्थ की जो धारणा प्रसाद के मन में थी उसने उनकी रचना–प्रक्रिया को प्रभावित किया है। यथार्थ की विशेषताओं में 'लघुता की ओर साहित्यिक दृष्टिपात' को प्रधान मानते हुये प्रसाद लिखते हैं "लघुता से मेरा मतलब है साहित्य के माने हुये सिद्धान्त के अनुसार महत्ता के काल्पनिक चित्रण से अतिरिक्त व्यक्तिगत जीवन के दुख और अभावों का वास्तविक उल्लेख।[2] प्रत्यक्ष है कि इस धारणा के अनुसार प्रेमचन्द के यथार्थ-बोध को जगानेवाली जितनी संभावनायें थीं उनमें से बहुत कम प्रसाद के जीवन में थी।

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी

प्रेमचन्द एवं प्रसाद के लगभग साथ ही गुलेरी जी हिन्दी–कहानी के क्षेत्र में आये। पर उनकी स्थिति उनके समकालीन अन्य कहानीकारों से इस अर्थ में सर्वथा भिन्न है कि उन्होंने कुल तीन कहानियाँ लिखीं और उनमें भी केवल एक कहानी 'उसने कहा था' के लिए अमर हुये। उनकी अन्य दो कहानियाँ 'सुखमय जीवन' और 'बुद्धू का कांटा' है। 'उसने कहा था' नामक कहानी में गुलेरी जी ने जिस संगठित रूप-विधान का निर्वाह किया है वह श्रेष्ठ कहानी के कलात्मक आदर्शों के अनुकूल है। कथानक-निर्माण और सम्पूर्ण प्रभाव की सांकेतिक व्यञ्जना के विशेष उपयोग के कारण यह कहानी

१—"..................जब मनुष्य अपना व्यक्तित्व खोकर समूह का, भीड़ का, एक छोटा-सा अंग बन जाता है, तब प्रेमचन्द जी का क्षेत्र शुरू होता है। इस क्षेत्र में एक व्यक्ति के मानसिक आघात–प्रत्याघातों की महत्ता-बहुत कम रह जाती है क्योंकि वह समष्टि का एक छोटा-सा और अधिकाँश दशाओं में तो नगण्य सा भाग बन जाता है।"

—प्रेमचन्द की देन : चन्द्रगुप्त विद्यालंकार : पृ० १०१।

२—काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध : प्रसाद : पृ० १२०।

आश्चर्यजनक रूप से पूर्ववर्ती कहानी से प्रथक् है। इस कहानी के द्वारा इसकी रचना-पद्धति को समझना सरल है, पर लेखक की रचनात्मक–प्रक्रिया के बारे में ठीक–ठीक विचार कर सकना कठिन ही है। यह कहानी अपने रचना-विधान की दृष्टि से इतनी नयी है कि यह सोचकर आश्चर्य होता है कि गद्य की भाषा और 'कहानी' नामक विधा के उस निर्माणकाल में इतनी सजीव और मार्मिक कहानी की रचना किस प्रकार हो सकी। स्वप्न विधान के द्वारा अतीत की रोमाञ्चक घटनाओं को स्मृतिपटल पर अंकित करने की जो प्रणाली इस कहानी में अपनायी गयी है वह आगे चलकर कितनी तेजी से ग्रहण की गई, यह बताने की आवश्यकता नहीं। निश्चय ही, कहानी की रूपात्मक विशेषताओं के अन्तर में प्रवेश करने की क्षमता गुलेरी जी में थी। यदि उन्होंने दूसरे कहानी लेखकों की तरह संख्या में भी अधिक कहानियाँ लिखी होतीं तो उनकी रचना-प्रक्रिया का विश्लेषण अधिक सरलता से किया जा सकता था। इस एक सफल कहानी के आधार पर हम इतना तो मान ही सकते हैं कि गुलेरी जी सूक्ष्म चरित्र-चित्रण का महत्व कहानी में स्वीकार करते थे और कहानी के कथानक का विकास चरित्र-चित्रण द्वारा ही करना चाहते थे। 'उसने कहा था' कहानी की परीक्षा इस निष्कर्ष पर की जाय तो सहज ही जाना जा सकता है कि अपने समय में प्रचलित चरित्र-चित्रण की स्थूल पद्धति से वे सन्तुष्ट नहीं थे। इस कहानी में बालक लहना सिंह जब बालिका की ओर से 'कुड़माई' के सम्बन्ध में यह उत्तर पाता है कि "हाँ हो गई।"............"कल, —देखते नहीं यह रेशम से कढ़ा हुआ सालू।" विक्षिप्त–सा घर की राह लेता है, रास्ते में एक लड़के को मोरी में ढकेल देता है, एक छावड़ी वाले की दिन भर की कमाई खोता है, एक कुत्ते पर पत्थर मारता है, एक गोभीवाले के ठेले में दूध उड़ेल देता है और सामने नहाकर आती हुई किसी बैष्णवी से टकराकर अन्धे की उपाधि पाता है। तब कहीं घर पहुँचता है। लहनासिंह के इन नाना क्रियाकलापों से उसके निराश विक्षिप्तपन के जो भावसूत्र उद्घाटित होते हैं वे अन्य किसी माध्यम द्वारा सम्भव नहीं है।

'सुखमय जीवन' और 'बुद्धू का काँटा'—गुलेरी जी की इन कहानियों में प्रेम के साधारण हल्के प्रसंग हैं और शिल्प की दृष्टि से भी ये कहानियाँ अत्यन्त साधारण कोटि की है। एक ही लेखक की रचनाओं में भाव-बोध और अभिव्यक्ति दोनों दृष्टियों से इतना अधिक अन्तर साधारणतया देखने में

नहीं आता। 'सुखमय जीवन' नामक कहानी के कुछ स्थल[1] इंशा अल्ला खाँ और उनके समकालीन लेखकों की भाषा का स्मरण कराते हैं। एक ही लेखक के रचनात्मक स्तर की ऐसी विषमता स्वतन्त्र अध्ययन का विषय हो सकता है।

प्रेमचन्द की रचना–प्रक्रिया से प्रभावित कहानीकार

विश्वम्भरनाथ शर्मा "कौशिक"

प्रेमचंद की रचना-पद्धति और सृजनात्मक चेतना से प्रभावित लेखकों में "कौशिक" का नाम अग्रगण्य है। 'कौशिक' भी पहले प्रेमचन्द की भाँति उर्दू में कहानियाँ लिखा करते थे। उनकी पहली हिन्दी कहानी "रक्षा बन्धन" सन् १९१३ में प्रकाशित हुई थी। उनकी प्रमुख कहानियाँ : "ताई", "इक्के-वाला", "वह प्रतिमा", "अशिक्षित का हृदय" आदि को पढ़ने से ज्ञात होता है कि "कौशिक" ने "कथानक–प्रधान" कहानियों के निर्माण में ही अपनी सृजन प्रेरणा का उपयोग किया, जिनकी श्रेणी कलात्मक कहानियों के बीच साधारण मानी जाती है।[2] कौशिक उन कहानी लेखकों में हैं जो कहानी में वर्णित कथा-प्रसंगों एवं सम्बद्ध घटना-सूत्रों को अपर्याप्त मानकर स्वयं बीच–बीच में टिप्पणी देते चलते हैं। उनकी मानसिक चेतना में उस अन्तर्दृष्टि का अभाव दिखाई देता है जो परिवेश के प्रति कृतिकार की अनुभव-चेतना को अधिक उभार देती है।

कौशिक की मानसिक प्रक्रिया समस्याओं को ऊपर-ऊपर ग्रहण करने

१–(क) "प्यारी कमला, तुम मुझे प्राणों से बढ़ कर हो, प्यारी कमला, तुम मुझे अपना भ्रमर बनने दो। मेरा जीवन तुम्हारे बिना मरुस्थल है, उसमें मन्दाकिनी बनकर बहो ! मेरे जलते हुए हृदय में अमृत की पट्टी बन जाओ। –(सुखमय जीवन)–गुलेरी जी की अमर कहानियाँ
–सं० शक्तिधर गुलेरी –पृ० १६–१७

(ख) "बस, पाठक ! ऐसी आँखें मैंने कभी नहीं देखी थीं। मानों वे मेरे कलेजे को घोलकर पी गयीं।" वही, पृ० १३।

२– "कथानक–प्रधान कहानी सबसे अधिक साधारण श्रेणी की कहानी है।"
–आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास (१९००-१९२५ ई०)
–डा० श्रीकृष्ण लाल : पृ० ३२९।

वाली भावात्मक प्रक्रिया है। वह प्रेमचंद की भाँति सक्रिय और प्रसाद की भांति ज्ञानात्मक नहीं हो पायी है। वे जिन चरित्रों के माध्यम से समस्याओं को उठाते हैं, उनके व्यक्त आचरण तथा आदर्श का वर्णन तो कर लेते हैं, पर उनकी अप्रकट मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया और मानसिक ग्रन्थियों का सूक्ष्म चित्रण करने में असमर्थ रहते हैं। वातावरण-सृजन का भी उद्दीपनात्मक उपयोग तो वे कर लेते हैं, उसे परिस्थितियों के भोक्ता चरित्रों के अनुभवों का सहजीवी "आश्रय" नहीं बना पाते।

सुदर्शन

सुदर्शन प्रेमचंद की रचनात्मक प्रक्रिया से प्रभावित अन्य प्रमुख कहानीकार हैं जिन्होंने साधारण शिल्प का निर्वाह करते हुए "आदर्शवाद" की प्रतिष्ठा में ही योग दिया है। उर्दू से ही, हिन्दी के क्षेत्र में आने के कारण इनकी कहानियों में सहज "रवानी" दिखाई देती है। सुदर्शन भी पुराने कहानीकारों की भाँति जब किसी समस्या को उठाते हैं, तो वक्तव्य-सा देने लगते हैं [1] मंगल-प्रकाश की कामना से उनकी रचनात्मक चेतना अभिभूत तो है, [2] पर वह स्वाभाविक रूप से उनकी कहानियों में यथार्थ का बोध बन कर व्यक्त नहीं होती। सुदर्शन की मानसिक प्रक्रिया भी मूलतः भावात्मक ही है। उस पर युग के यथार्थ बोध की वह आघातपूर्ण प्रतिक्रिया नहीं दिखाई देती जो प्रेमचन्द की रचना-प्रक्रिया की स्वाभाविक विशेषता है। साथ ही एक समझौतावादी मध्यवर्गीय अवसर-चेतना सुदर्शन को कठिन रचनात्मक संकल्प की ओर बढ़ने से रोकती रही है।

ज्वालादत्त शर्मा

प्रेमचन्द की रचनात्मक चेतना से प्रभावित ज्वालादत्त शर्मा की रचनाओं में संयोगात्मक-पद्धति के उपयोग द्वारा "कथानक" को प्रभावपूर्ण बनाने का प्रयत्न स्पष्ट दिखाई देता है। सुदर्शन और कौशिक की भाँति शर्मा जी भी मनुष्य का हृदय परिवर्तन दिखाना चाहते हैं।[3] परन्तु हृदय परिवर्तन

१– कायापलट : सुदर्शन सुमन : सुदर्शन : पृ० १८५।

२– भूमिका : चार कहानियां : सुदर्शन : पृ० ६।

३– कौशिक, सुदर्शन और ज्वालादत्त की कहानियाँ इस अर्थ में घटनाप्रधान और भावात्मक या सुधारात्मक ही कही जा सकती हैं कि उनके भीतर

दिखाने के लिए परिस्थितियों के जटिल सन्दर्भ में चरित्रों के भीतर जितनी हलचल दिखानी होती है उतनी न दिखा सकने के कारण ज्वालादत्त शर्मा का यह प्रयत्न कहानियों में खप नहीं पाता। यह अक्षमता ज्वालादत्त शर्मा की ही भाँति अन्य प्रेमचन्द–युग के लेखकों में भी प्रायः दिखाई देती है। रचना-प्रक्रिया की चेतना इनकी कहानियों में स्पष्ट नहीं है और इसका मुख्य कारण परिस्थितियों के सम्पूर्ण परिचय का अभाव ही है।

भगवतीप्रसाद वाजपेयी

वाजपेयी जी ने प्रेमचन्द की कहानी-कला सम्बन्धी विशेषताओं का प्रभाव ग्रहण करते हुए कहानी में मानसिक प्रवृत्तियों का अंकन करने का प्रयत्न किया है। शरत् का प्रभाव भी इन पर है पर उतना व्यापक नहीं, जितना प्रेमचन्द का। खाली बोतल, अंधेरी रात, मैना, हारजीत, इन्द्रजाल आदि कहानियाँ इनकी रचनात्मक प्रक्रिया और पद्धति की दृष्टि से पढ़ी जा सकती हैं। इन कहानियों में रोमान्टिक कल्पना का आग्रह स्पष्टतया दिखाई देता है और वही लेखक की रचनात्मक प्रेरणा का आधार प्रतीत होता है। मानव चरित्र के मनोवैज्ञानिक अन्तर्द्वन्द का निरूपण इनका लक्ष्य है,[1] यद्यपि उसे इनकी रचनात्मक प्रकिया में सम्यक प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं हो सकी है। प्राचीन रचना-शिल्प की अन्तर्बाधाओं से मुक्ति का प्रयत्न वाजपेयी जी की कहानियों में लक्षित नहीं होता। वाजपेयी जी की रचना-प्रक्रिया के अध्ययन से स्पष्ट ज्ञात होता है कि उन्हें इस सत्य का अभिज्ञान नहीं है कि चरित्रों के सम्बन्धों को स्पष्ट रूप में अपने मन में समझना एक बात है और उसे निर्भ्रान्त रूप में "रचना" में व्यक्त करना एक भिन्न बात है।

विश्वम्भरनाथ जिज्जा, जी० पी० श्रीवास्तव, राजा राधिकारमण-प्रसाद सिंह, गोविन्दवल्लभ पन्त आदि

विश्वम्भरनाथ जिज्जा भाव पक्ष की दृष्टि से यद्यपि प्रसाद की पर-

---

लम्बे समय की योजना रहती है और पात्रों या चरित्रों का हृदय परिवर्तन ही कहानियों का परिणाम होता है।"

—आधुनिक साहित्य —नन्ददुलारे वाजपेयी —पृ० २४८।

१– "रोमान्टिक कल्पनाओं की वाजपेयी जी की कथाओं में कमी नहीं है पर चारित्रिक और मनोवैज्ञानिक वैचित्र्य का उद्घाटन, उनकी नवीनतम

म्परा के निकट प्रतीत होते हैं, फिर भी सम्पूर्ण रचनात्मक प्रक्रिया की दृष्टि से वे प्रेमचन्द के निकट ही हैं। इनकी कहानियाँ स्वाभाविक वर्णन शैली में लिखी गई हैं और इनकी परिसमाप्ति आकस्मिक संयोगात्मक घटनाओं में होती है। उदाहरणतः इनकी "विदीर्ण हृदय" नामक महत्वपूर्ण कहानी में जाने कब से वियुक्त दो सखियाँ मिलती हैं और एक दूसरे को आप बीती सुनाती हैं। और, अन्त में विश्राम करते-करते उनकी मृत्यु हो जाती है। रचनात्मक चेतना का अभाव इस युग के अनेक कहानीकारों में प्राप्त होता है और इस दृष्टि से वे ऐतिहासिक स्थान के ही अधिकारी हैं। जी० पी श्रीवास्तव हास्य रस के थोड़े-से लेखकों में हैं। "पिकनिक", "झूठमूठ" आदि में इन्होंने घटनात्मक संयोग द्वारा हास्य की निष्पत्ति कराने की चेष्टा की है। रचना-विधि की दृष्टि से इनकी कहानियाँ भी प्रेमचन्द की कहानी-परम्परा के निकट ही हैं। राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह इतिवृत्तों के प्रति अधिक मोहमग्न दिखाई पड़ते हैं। गोविन्दवल्लभ पन्त की कहानियों में उनकी सोद्देश्यपूर्ण आदर्शवादिता ही प्रत्यक्ष हो सकी है। इन कहानीकारों की रचनात्मक सीमाओं के अध्ययन से हम जान सकते हैं कि वस्तु और शिल्प, रचनात्मक दृष्टिकोण, कृतिकार और विषय या परिस्थिति-इनके सम्बन्धों को वे ही कहानीकार किसी रचनात्मक परिणाम तक ले जा सके हैं जिनकी ग्रहणशील संवेदना अधिक विकसित और परिपक्व थी और जो बाह्य, और आभ्यंतर, नैतिक और बौद्धिक दृष्टियों का सामंजस्य प्राप्त कर सके थे।

प्रसाद की रचना–प्रक्रिया से प्रभावित कहानीकार

चतुरसेन शास्त्री

चतुरसेन शास्त्री प्रसाद की रचनात्मक प्रक्रिया से प्रभावित कहानी लेखकों में अग्रगण्य हैं। इतिहास का रोमाँटिक धरातल प्रसाद की भाँति ही इन्हें प्रिय रहा है और अधिकाँश कहानियों की रचना इसी धरातल से हुई है। शास्त्री जी की आरंभिक रचनात्मक स्फूर्ति ने राजपूत चरित्रों के वीर-दर्प को अपना उपजीव्य बनाया था। आगे चल कर इनकी कहानियों में अधिक सामा-

---

आख्यायिकाओं में प्रधानता पाता जा रहा है।"

–भूमिका : खाली बोतल –नन्ददुलारे बाजपेयी।

जिक पीड़ा का चित्रण हो सका। शास्त्री जी की रचना-प्रक्रिया का विकास उनकी आन्तरिक चेतना का परिचायक है। अपने और अपने पात्रों के बीच एक जीवित सम्बन्ध [1] बनाते हुए शास्त्री जी ने भिन्न-भिन्न विषयों पर अपनी कहानियाँ लिखी हैं और अपने कथा-शिल्प का परिष्कार करना चाहा है। शास्त्री जी की मानसिक चेतना पर टूटती हुई सामंती संस्कृति के अवशेषों की स्पष्ट छाप है। इस प्रभाव का परिणाम यह है कि उनके कथानक, कथाचरित्र, वातावरण, संवाद सब में एक औपचारिक शिल्प का उपयोग प्रत्यक्ष है।

विनोदशंकर व्यास

"प्रसाद" की भावुकता से प्रभावित होने के कारण विनोदशंकर व्यास प्रसाद-संस्थान के कहानीकार माने जाते हैं। १९३२ तक लिखी गई अपनी ५० कहानियों का संग्रह प्रस्तुत करते हुए उन्होंने लिखा है : "कल्पना की विशाल भूमि पर कहानियों की अगणित रेखाएँ अंकित की जा सकती हैं।"[2] इनका यह कथन ही इनकी भावात्मक रचना-प्रक्रिया की ओर एक संकेत है। आक-

---

१– "मैं नहीं जानता कि चोटी के लेखकों की क्या शैली है, परन्तु अपनी एक कमजोरी तो मैं कहूँगा ही कि अपनी कहानी के साथ मैं बहुत काल तक रहता हूँ। मैं उसमें डूबता हूँ। उसे घुल-मुलकर डालता हूँ। फिर उसे रस्सी की भाँति उमेठ डालता हूँ।। इसके बाद उसे रुई की तरह धुनता हूँ। कहानी के साथ ही अपने हृदय और मस्तिष्क की भी मैं यही गति बना डालता हूँ। फिर कहानी और मैं एक हो जाते हैं।·········कहानी के पात्रों की जब इच्छा होती है, मुझसे सलाह लेते हैं और कहीं मेरी गाड़ी अटकती है, तो मैं उनकी सलाह लेता हूँ।"

—बाहर-भीतर : आचार्य चतुरसेन : पृ० १४।

२– "संसार में मानव-समाज की उत्पत्ति के साथ ही कहानियों का आरम्भ हुआ है। जीवन के प्रत्येक अंग में कहानी छिपी हुई है। मनुष्य के मस्तिष्क की गुप्त-से-गुप्त बातें और उसकी उमंग, अभिलाषा तथा रहस्य-ये सभी कहानियों के विषय हैं। इसके अतिरिक्त भूत, प्रेत, पशु-पक्षी, समुद्र, पहाड़, वायु और वृक्ष—सभी जड़-चेतन कहानियों के उत्पत्ति-स्थान हैं। निद्रित अवस्था के अज्ञात स्वप्नों के डोरे में कहानियां बाँधी जाती हैं। यही नहीं, कल्पना की विशाल भूमि पर कहानियों की अगणित रेखायें अंकित की जा सकती हैं।"

—पचास कहानियाँ : श्री विनोदशंकर व्यास : भूमिका : पृ० १।

स्मिक नहीं है कि व्यास जी ने अपनी प्रतिनिधि कहानियों के इस संकलन को प्रसाद जी की स्मृति के प्रति अर्पित किया है। वस्तुतः व्यास जी ने अपनी सारी रचनात्मक संवेदनाएँ प्रसाद जी के व्यक्तित्व और साहित्य से ग्रहण की हैं।

व्यास जी की अलंकृत काव्यात्मक भाषा पर भी प्रसाद का प्रभाव स्पष्ट है इसके प्रमाण के लिए एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा—

"नीलाकाश में मेघों से छिपा हुआ चन्द्रमा निकल पड़ता है, चकोर उसकी प्रतीक्षा करता है, भ्रमर फूलों का रस लेता है, पतंग दीपक का आलिंगन करता है। उसी तरह मानव की तरुण अवस्था में प्रेम-तंत्री बज उठती है। उसकी झंकृति व्याकुल हो जाती है। वह हृदय को अनमना कर देती है और मनुष्य को पागल बनाकर सैकड़ों राहों में घुमा देती है।[1]

व्यास जी की कहानियाँ प्रसाद जी की कहानियों की भाँति ही प्रेम प्रधान हैं, यों उनमें संवेदनाओं का वैसा तनाव और चरित्रों के मनोगत भावों में वैसा अन्तर्द्वन्द्व नहीं दिखाई पड़ता जैसा प्रसाद जी की कहानियों में प्राप्त होता है।

राय कृष्णदास

राय कृष्णदास की कहानियाँ भावप्रवणता और काल्पनिकता पर आधारित हैं जो प्रायः लेखक को इतिहास के मनोरम अतीत–पक्ष की ओर ले जाती हैं। यही वह बिन्दु है, जहां उनकी कहानियाँ प्रसाद की कहानियों की संवेदना और रचनात्मक प्रक्रिया के निकट पड़ती हैं। प्रतीक–पद्धति को आधार मानकर कहानियाँ लिखनेवालों को जिन समस्याओं का सामना करना पड़ता है— उनमें प्रमुख हैं विषय–वस्तु और अभिप्रेत के सामंजस्य की समस्या। इस बात की शंका बराबर बनी रहती है कि कहीं प्रतीक वस्तु को अभिप्रेत से पृथक न कर दें। कहना न होगा कि प्रतीकों के चुनाव और निर्वाह की दृष्टि से इनकी कहानियाँ सफल बन पड़ी हैं। गहुला, प्रसन्नता की प्राप्ति, अन्तःपुर का आरम्भ, कला और कृत्रिमता आदि कहानियों में ये विशेषताएं देखी जा सकती हैं। मानव स्वभाव के निर्मायक सूक्ष्म स्तरों में से कुछ विशेष स्तरों का चुनाव करते हुए राय कृष्णदास और उनके समानधर्मा लेखकों ने रचनाप्रक्रिया को शुद्ध भावनात्मक गति प्रदान की है।

१–पचास कहानियाँ : श्री विनोदशंकर व्यास : भूमिका पृ० ४६।

स्वतन्त्र रचना–प्रक्रिया के कहानीकार

वेचन शर्मा "उग्र"

प्रस्तुत युग के लेखकों में कुछ ऐसे विद्रोही प्रकृति के लेखक भी हैं जिन्होंने पूर्व स्थापित और प्रचलित मर्यादाओं को छोड़ कर नयी दिशायें बनाने की चेष्टा की। ऐसे लेखकों के रचनात्मक विकास की प्रक्रिया प्रसाद एवं प्रेमचन्द-जैसे युगप्रवर्तक लेखकों की रचनात्मक प्रक्रिया से सर्वथा भिन्न रही है। उग्र इस वर्ग के प्रतिनिधि और किसी अर्थ में अपने ढंग के अकेले उदाहरण हैं। "हिन्दी के प्रथम और प्रमुख राजनीतिक कहानीलेखक"[1] "उग्र" पर जो लोग प्रसाद की रचना-प्रक्रिया का सीधा प्रभाव स्वीकार करते हैं, वे उग्र की जीवन-प्रक्रिया और उनके विद्रोही मानसिक संस्कारों की पृष्ठभूमि पर उचित ध्यान नहीं देते हैं।

उग्र की रचना–प्रक्रिया के विभिन्न स्तरों को देखने से उनके विक्षोभ और विद्रोह–भाव का सहज ही अनुमान किया जा सकता है। आरम्भ से ही उग्र ने जीवन और परिवेश के कुरूप सत्यों को देखा है और उनसे निरन्तर विक्षुब्ध रहे हैं। सामाजिक और व्यक्तिगत स्तर पर अनुभूत मिथ्या आडम्बरों को देखकर वे निरन्तर चिन्तित होते रहे हैं। "अपनी खबर" शीर्षक संस्मरणात्मक आत्मकथा में उग्र ने अपनी मानसिक प्रतिक्रियाओं का जितना सही विश्लेषण किया है, वह उनके नैतिक साहस का ही परिचायक है और उनकी विद्रोहभावना की पृष्ठभूमि समझने की उचित दिशा देता है। उग्र के इन संस्मरण-सूत्रों से उस परिस्थिति और वातावरण का परिचय प्राप्त होता है जिसमें उग्र के व्यक्तित्व का विकास हुआ। वेश्याबाजारों के बीच जीवन पर्यन्त रहने वाले "बच्चा गुरू" जैसे व्यक्तियों के अन्तरंग में प्रवेश कर उग्र ने अपने समय के टूटते हुए आदर्शों का जो चित्र खींचा है, वह निर्मम यथार्थ बोध की सच्ची प्रतिक्रिया का परिचायक है। सन् १९३० के गहरे राजनीतिक विद्रोह-काल में फिल्मों में जाकर आठ वर्ष तक मस्ती से लिखने वाली उग्र की रचनात्मक प्रतिभा आरम्भ से ही विद्रोहशील रही है।[2]

१–आधुनिक साहित्य : नन्ददुलारे वाजपेयी : पृ० २४९।

२–"मैंने सोचा-परे करो इस हिन्दी को। चरने दो उन्हें जिन्हें चर्रा रही है मेरी चर्चा-चलो बम्बई चलें, जहाँ अपार समुद्र के तट पर कोई पारसीक

उग्र की सारी मानसिक चेतना के मूल में निहित ग्रन्थियों को देखने से ज्ञात होता है कि परिस्थितियों की आरम्भिक प्रतिक्रिया से उत्पन्न "हीन भावना"[1] ने भी उग्र के विद्रोह-भाव, तथा मर्यादाओं का अतिक्रमण करनेवाली अतियथार्थवादी दृष्टि को तीव्रतर बनाने में योग दिया।

उग्र जी की कहानियाँ तीन प्रकार की हैं : क-व्यंजनात्मक या प्रतीकात्मक, ख-भावुकतापूर्ण, ग—सामाजिक। तथा, उनकी अधिसंख्य कहानियों में ज्वलन्त यथार्थ की निर्मम अभिव्यक्ति प्राप्त होती है। "मोको चुनरी की साध" उग्र जी की रचनाविधि को समझने के लिए उपयुक्त कहानी है, जिसमें एक आठ वर्ष की कन्या का विवाह होता है। कन्या "मोको चुनरी की साध" पंक्ति बार-बार गाती-रटती मंडप में घूमती है। संयोग, कि उसके वर को, वहीं बारात में साँप डंस लेता है और वह विधवा हो जाती है। वह रोती है, बीमार पड़ जाती है, पर "चुनरी" की साध उसके मन में बनी ही रहती है। किसी अर्थ में इस कन्या का चरित्र प्रतीक ही है जो परिस्थिति के व्यंग को प्रकाशित करता है।

घ— पूर्व प्रस्तुत अध्ययन के सन्दर्भ में प्रस्तुत युग की कहानी का कलात्मक तत्वों की दृष्टि से मूल्यांकन

कठिनाई यह है कि "कहानी" के सम्बन्ध में विचार करते हुए प्रेमचन्द काल तक "कहानी" को "गल्प" के निकट का एक "साहित्य—रूप" माना गया और प्रेमचन्द के बार—बार कहने पर भी, कि कहानी का अन्तिम उद्देश्य मनोरंजन नहीं हैं, प्रायः कहानी के सम्बन्ध में गम्भीरता से विचार नहीं किया गया। फिर, आरंभ में समीक्षकों ने कहानी के रचना-तन्त्र के सम्बन्ध में जिस ढंग से विचार करना आरंभ किया, वह सुविधाजनक होने के कारण आगे भी मान्य हो गया, जब कि प्रेमचन्द-युग के उत्तरार्द्ध की ही कहानी में कहानी कला की आधार—भूमि बदल गयी थी। कथानक के प्रभाव की तुलना में वक्तव्य का आभास महत्वपूर्ण हो गया था। कहानी के चरित्रों में पाठकों को अपनी प्रतिच्छाया दिखाई पड़ने लगी थी। वातावरण का उपयोग कथानक को

नारी हाथ में नारिकेल, चन्द्रमुखी, सूर्योपासन रत होगी।"—अपनी खबर : बेचन शर्मा "उग्र" पृ० १३४।

१—"अलबत्ता "जन्मजात बिका" का बिल्ला—जैसा नाम तौक की तरह गले मढ़ा गया—बेचन !"—वही, पृ० १८।

सजाने में नहीं, यथार्थ के निकट लाने में किया जाने लगा था। और कहानी का अनुभव-परक ग्रहण किया जाने लगा था। कहानी में बिखरी हुई घटनाओं के बीच की प्रतिमा (इमेज) की पहचान स्पष्ट होने लगी थी। पर कुछ प्रयत्नों को अपवाद मान लिया जाय तो अधिकाँश आलोचकों ने कहानी-कला के तत्वों की जो रूढ़ि बना ली, उसमें आगे कोई परिवर्तन नहीं किया। आज आवश्यकता प्रेमचन्द–युग तथा आगे की कहानी के आधार पर कहानी-कला के पूर्वचर्चित तत्वों की उपयोगिता के पुनर्मूल्याँकन की है। यदि ये तत्व किसी सीमा तक कहानी की रचनात्मक प्रक्रिया को आयत्त करने में सहायक होते हैं तो उनका महत्व असंदिग्ध रूप से माना जाना चाहिए अन्यथा अन्य महत्व-पूर्ण तत्वों की खोज की जानी चाहिए। यहाँ, हमारे प्रयत्न की यही दिशा है।

कथानक

कथानक-निर्माण विधि का विकास देखने के लिये सबसे सुविधापूर्ण और वैज्ञानिक पद्धत्ति यह हो सकती है कि हम किसी समय के एक ही लेखक की एकाधिक कहानियों के कथानकों की तुलनात्मक परीक्षा करें। यह प्रयत्न ऐसे लेखक की रचनात्मक-प्रक्रिया के विकास की प्रकृति समझने में भी सहायक हो सकता है। प्रेमचंद-युग के कथानक-निर्माण की विधि का विकास देखने के लिए हम प्रेमचंद के दो विकास-युगों की दो कहानियों की तुलनात्मक परीक्षा कर सकते हैं। यहां हम प्रेमचंद के प्रारम्भिक–विकास-काल की कहानी "बड़े घर की बेटी" और उन्हीं के अन्तिम विकास काल की कहानी "पूस की रात" पर विचार करना चाहेंगे।

"बड़े घर की बेटी" कहानी का कथानक विस्तृत, इतिवृत्तमूलक तथा वर्णनात्मक है। आधुनिक कहानी की संवेदना उसकी सपाट वर्णनात्मकता के कारण इस कहानी में आ ही नहीं सकी है। कहानी के आरम्भ में ही [1] इस सपाट वर्णनात्मकता का रूप दृष्टव्य है। जो सार्थक सांकेतिकता कहानी के "वक्तव्य" या "अभिप्रेत" को आधुनिकता प्रदान करती है वह यहाँ परि-

---

१–"बेनीमाधव सिंह गौरीपुर गांव के जमीदार और नम्बरदार थे। उनके पितामह किसी समय बड़े धनधान्य सम्पन्न थे। गाँव का पक्का तालाब और मन्दिर जिनकी अब मरम्मत भी मुश्किल थी, उन्हीं के कीर्तिस्तम्भ थे। कहते हैं, इस दरवाजे पर हाथी झूमता था, अब उसकी जगह एक बूढ़ी भैंस थी जिसके शरीर में अस्थिपंजर के सिवा और कुछ शेष न रहा।"–मानसरोवर–भाग ७–पृ० १४२।

लक्षित नहीं होती। इसके विपरीत "पूस की रात" कहानी के आरंभ में ही [1] अत्यन्त साँकेतिक रूप में, परिस्थिति की यथार्थता मूर्त हो उठी है। यह कहानी प्रमाण है कि परवर्ती विकास-काल की कहानियों में प्रेमचंद के कथानक भी अधिक सूक्ष्म, संगठित बन पड़े हैं। वे घटनाओं की सृष्टि करने के स्थान पर किसी मनोवैज्ञानिक परिस्थिति की सृष्टि करते हैं। सपाट, घटनाश्रित कथानक के स्थान पर सूक्ष्म अनुभूतिपरक और स्वावलम्बी कथानक के निर्माण का यह प्रयत्न कोई प्रयोग या अन्वेषण नहीं है बल्कि जीवन में प्रत्यक्ष होनेवाली परिस्थितियों की नयी सचेतन पहिचान है। गोर्की ने साहित्य में यथार्थ की प्रतिष्ठा के प्रश्न पर विचार करते हुए इसी "पहिचान" पर बल दिया है। [2] इसी प्रकार, कौशिक की दो कहानियों : "स्वाभिमानी नमक हलाल" और "वह प्रतिमा" के कथानकों की संवेदना में महान अन्तर है। "स्वाभिमानी नमक हलाल"–इस कहानी में कथानक घटना वैचित्र्य के जितना ही निकट है, "वह प्रतिमा" शीर्षक कहनी घटना और उसके वैचित्र्य से उतनी ही दूर है और एक सूक्ष्म लाक्षणिकता से अनुप्राणित है। कथानक का आरम्भ भी मानसिक व्याकुलता के एक संकेत से होता है।[3] तथा, सम्पूर्ण कहानी एक संकेतात्मक पद्धति द्वारा अभिव्यक्त हो सकी है। चमेली के प्रति उसके पति का आचरण अंत तक असन्तोषप्रद रहता है कि राजयक्ष्मा ने उसके सौन्दर्य के सभी गुण चुरा लिए हैं। अन्तिम समय में जब वह बुलाती है तो मानों मृत्यु के आगमन

१–"हल्कू ने आकर स्त्री से कहा-सहना आया है, लाओ, जो रुपये रखे हैं उसे दे दूं, किसी तरह गला तो छूटे।

मुन्नी झाड़ू लगा रही थी। पीछे फिर कर बोली-तीन ही तो रुपये हैं, वे दोगे तो कम्बल कहाँ से आवेगा ? माघ पूस की रात हार में कैसे कटेगी ? उससे कह दो कि फसल पर रुपये देंगे। अभी नहीं।"

२–"आइ रिपीट दैट देयर इज नो नीड फार "इन्वेन्शन" बिकाज देयर आर फीचर्स दैट हैव एक्जिस्टेन्स इन रियलिटी—" –आन लिट्रेचर : मैक्सिम गोर्की—पृ० १७०।

३–"स्मृति-वह मर्मस्पर्शी स्मृति, जो हृदयपृष्ठ पर करुणोत्पादक भावों की उस पक्की और गहरी स्याही से अंकित की गई है, जिसका मिटना इस जन्म में कठिन ही नहीं, प्रत्युत असंभव है। आह वह स्मृति कष्टदायिनी होने पर भी कितनी मधुर और प्रिय है।"–वह प्रतिमा : चित्रशाला : कौशिक : पृ० १०७।

से चमेली खिल उठती है।......पर अब क्या हो सकता था : जीने की लालसा से युक्त होते हुए भी वह मृत्यु के लक्ष्य तक आ पहुंची थी।[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रेमचन्द युग की कहानी में कथानक निर्माण के सारे प्रयत्न एक स्तर के नहीं हैं। निरन्तर कथानक–निर्माण पद्धति में मनोवैज्ञानिक स्वाभाविकता का विस्तार होता गया है और इस कारण एक ही लेखक की भिन्न-भिन्न कहानियों में कथानक-सृजन के भिन्न–भिन्न स्तर दिखाई पड़ते हैं। प्रसिद्ध मराठी लेखक ना० सी० फड़के ने ललित कथा के मूल में संघर्ष के बीज की अपेक्षा बताते हुए कथानक के विविध प्रकारों की सम्भावना की ओर इंगित किया है।[2]

कथानक और संघर्ष-बीज

संघर्ष के बीज की कथानक में अपेक्षा-इस प्रश्न पर विचार करने के लिए प्रस्तुत युग की कुछ अतिप्रसिद्ध कहानियां चुनी जा सकती हैं। जैसे, प्रेमचन्द की कहानी "कफन' या प्रसाद की कहानी "मधुआ"। कोरी आदर्शवादी परिणति दिखानेवाली कहानियों के संघर्षहीन कथानक से ये कहानियाँ भिन्न हैं, इसमें सन्देह नहीं। पर इससे भी अधिक महत्व की बात यह है कि इन कहानियों के कथानकों का चयन रचनाकारों की सर्जनात्मक प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण अंग है और इस आधार पर भी इन कथानकों के संघर्ष–बीज की उपयोगिता का मूल्याँकन किया जाना चाहिए। "मधुआ" जैसी कहानियों के कथानक-निर्माण के पीछे जो सोद्देश्यता मिलती है वह लेखक की रचना प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण अंग है। किसी लेखक द्वारा किसी विशेष कथानक का चयन और विशेष भूमिका में उस कथानक का सजीव उपयोग–ये प्रश्न

१–"तुम्हारी इन बातों से मुझे मृत्यु से भय मालूम होता है। हृदय में जीने की उत्कट लालसा उत्पन्न होती है।—नाथ, मेरा अन्त समय दुखदायी न बनाओ। तुम यही कहो कि मैं तुमसे घृणा करता हूं।" वही, पृ० ११८।

२–"ललित कथा के मूल में संघर्ष का बीज होना चाहिए। कथावस्तु इस बीज की अच्छी वृद्धि एवं विस्तार है और जब कि संघर्ष की विविध जातियां होती हैं, इस लिए कथावस्तु के भी विविध प्रकार हो सकते हैं।"

—प्रतिभा साधन : ना० सी० फडके : अनु० श्रीपाद जोशी : पृ० १०६।

सीधे कहानी की रचना–प्रक्रिया से सम्बद्ध हैं, और यही कारण है कि वे उपेक्षणीय नहीं हैं ।[1]

"मधुआ" कहानी एक आदर्शमूलक परिणति की कहानी है पर उसकी कथानक में निहित, संवेदना प्रसाद की अन्य कहानियों से भिन्न है। सात-सात दिन चने–चबेने पर जीवन बिताकर शराब पीने की उत्कट लालसा से युक्त शराबी [2] कैसे कहानी के अन्त में एक दुर्भाग्य–हत बालक के लिए कैसे परिश्रम करके जीने की समस्या हल करने की आवश्यकता [3] स्वीकार कर लेता है, "मधुआ" इसी की कहानी है। "मधुआ" कहानी के कथानक का रस "चमत्कार" में नहीं, संघर्ष के यथार्थ में सन्निहित है।[4] पर, यह न माना जाय कि प्रसाद की भावभूलक कहानियों के कथानकों में संघर्ष का बीज नहीं है। किसी भी लेखक की भावमूलक कहानी में संघर्ष के बीच का अभाव केवल इस कारण नहीं होता कि कहानी "भावमूलक" कथानक के आधार पर निर्मित हुई है। "प्रसाद" की कहानी "पुरस्कार" एक भावमूलक कहानी है पर उसका कथानक आदि से अन्त तक एक तीव्र संघर्ष से अनुप्राणित है।

१–"फार ए राइटर आफ शार्ट स्टोरीज राइट्स देम इन द वे ही थिंक्स बेस्ट, अदर वाइज ही वुड राइट देम डिफरेन्टली"
—द शार्ट स्टोरी : प्वाइन्ट्स आफ व्यू : सामरसेट माम : पृ० १२२।

२–"सरकार ! मौज-बहार की एक घड़ी, एक लम्बे दुखपूर्ण-जीवन से अच्छी है। उसकी खुमारी में रुखे दिन काट लिये जा सकते हैं।"
मधुआ : आँधी : प्रसाद : पृ० ३६।

३–"शराबी एक क्षण भर चुप रहा। फिर चुपचाप जलपान करने लगा। मन ही मन सोच रहा था–यह भाग्य का संकेत नहीं तो और क्या है ? चलूँ फिर सान देने का काम चलता करूं। दोनों का पेट भरेगा। वही पुराना चरखा फिर सिर पड़ा। नहीं तो, दो बातें किस्सा-कहानी इधर-उधर की कह कर अपना काम चला ही लेता था ! पर अब तो बिना कुछ किये घर नहीं चलने का।"—वही, पृ० ४२।

४–"पहली कहानी का रस चमत्कार में था, आज की कहानी का रस चरित्र चित्रण, भावों के उतार-चढ़ाव और विचारों के विश्लेषण समस्याओं के उद्घाटन और उनके हलके सुझाव में है।"
—काव्य के रूप : गुलाबराय : पृ० २१३।

कभी-कभी कथानक के किसी अप्रत्याशित बिन्दु पर पृष्ठभूमि में निहित संघर्ष सजीव और साकार हो उठता है । पर ऐसा कहानी में किया जा सके, इसके लिए परिपक्व, रचनात्मक एवं कुशल शिल्प की अपेक्षा होती है । प्रेमचंद की अति-प्रसिद्ध कहानी "कफन' के कथानक के बीच में अचानक ही संघर्ष मूर्त हो उठता है यद्यपि स्वयं प्रेमचंद ने संकेत किया है कि इस संघर्ष के मूल कारण परिस्थिति में पहले से ही विद्यमान थे ।[1]

कथानक में संघर्ष-बीज तथा अन्य प्रसंग-साम्य-धर्म यथा विरोध-धर्म

प्रस्तुत विश्लेषण का निष्कर्ष यह कि १, संघर्ष का होना कथानक की प्रभावात्मकता के लिए आवश्यक है और २, संघर्ष की प्रतिष्ठा करने वाले लेखक के सामने प्रस्तुत प्रश्न यह नहीं होना चाहिए कि संघर्ष कहाँ है, आरम्भ में या मध्य में, या अन्त में-बल्कि यह होना चाहिए कि संघर्ष क्यों है । किस उद्देश्य से है ? मूल कथानक में है या अवान्तर प्रसंगों में है ? कहानी की चरम परिणति पर इस संघर्ष का प्रभाव क्या पड़ता है ? संघर्ष कहानी में साम्यधर्म का पोषक है या विरोध धर्म का ? ना० सी० फड़के के अनुसार, कथा में प्रधानता घटित होने वाली घटना की अनुकूलता जिन प्रसंगों में पाई

१–"कैसा बुरा रिवाज है कि जिसे जीते जी तन ढाँकने को चीथड़ा भी न मिले, उसे मरने पर नया कफन चाहिए ।"

"कफन लाश के साथ जल ही तो जाता है ।"

"और क्या रखा रहता है ? यही पाँच रुपये पहले मिलते, तो कुछ दवा-दारू कर लेते ।"

'दोनों एक दूसरे के मन की बात ताड़ रहे थे । बाजार में इधर-उधर घूमते रहे । कभी इस बजाज की दूकान पर गये, कभी उसकी दूकान पर । तरह-तरह के कपड़े, रेशमी और सूती देखे, मगर कुछ जंचा नहीं । यहां तक कि शाम हो गई । तब दोनों न जाने किस दैवी प्रेरणा से एक मधुशाला के सामने आ पहुंचे और जैसे किसी पूर्व निश्चित व्यवस्था से अन्दर चले गए । वहाँ जरा देर तक दोनों असमंजस में खड़े रहे । फिर घीसू ने गद्दी के सामने जाकर कहा–साहुजी, एक बोतल हमें भी देना ।'

—कफन और शेष रचनाएं—प्रेमचन्द : पृ० १०–११ ।

जाय उनमें साम्यधर्म मानना चाहिए और प्रतिकूलता जिन प्रसंगों में लक्षित हो उनमें विपरीत धर्म मानना चाहिए ।[1]

इसी प्रकार, रचना-प्रक्रिया की दृष्टि से कथानक की मीमांसा करते हुए इसकी परीक्षा की जानी चाहिए कि क्यों विशेष प्रकार के कथानक विशेष-युग की कहानियों में प्रयुक्त हुए। ऐसा करते हुए हम किसी विशेष युग के लेखकों के मानस की विशेष निर्माण-प्रक्रिया को समझ सकते हैं। अकारण ही नहीं, श्रेष्ठ कहानीलेखकों की कहानियों के कथानकों की निर्माण-प्रक्रिया जटिल होती है। कथानक-निर्माण के सहयोगी प्रसंगों में ऐसी असम्बद्धता पायी जा सकती है जो केवल हेतु हो, पर परिणाम जान पड़ती हो ।[2]

भूमिका पर आश्रित कथानक और लक्ष्यात्मक कथानक

प्रस्तुत युग की कहानियों के कथानकों की निर्माण-प्रकिया का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि आरंभिक कहानियों के कथानक भूमिका पर आश्रित हैं, पर विकास-काल की कहानियों के कथानक लक्ष्यात्मक हैं। प्रेमचन्द की कहानी "बड़े घर की बेटी" का कथानक भूमिका पर आश्रित है और उन्हीं की विकास की कहानी "कजाकी" का कथानक लक्ष्यात्मक है। "बड़े घर की बेटी" के कथानक की भूमिका इस प्रकार है :

"बेनीमाधव सिंह गौरीपुर गाँव के जमीदार और नम्बरदार थे। उनके पितामह किसी समय बड़े धनधान्यसम्पन्न थे। गाँव का पक्का तालाब और मन्दिर जिनकी अब मरम्मत भी मुश्किल थी उन्हीं के कीर्ति स्तंभ थे। कहते

१--प्रतिमा--साधना : न० सी० फडके : अनु० श्रीपाद जोशी : पृ० १०८।

२--"कथावस्तु का अन्तिम अंश कागज पर लिखा तो जाता है सबसे आखिर में, परन्तु वह लेखक के मन में तैयार रहना चाहिये सबसे पहले। क्योंकि वह अन्तिम प्रसंग या शीर्ष--बिन्दु······आता तो है आखिर में, परन्तु वास्तव में देखा जाय तो वही प्रसंग पहले की सारी गुत्थियों···का कारण होता है। कार्य-कारणों की परम्परा को कालप्रवाह की उलटी दिशा में देखने की आदत हमें होती है और इसलिए जो "पहले" घटित होता है उसे हम "बाद" में घटित होने वाले का कारण समझते हैं। परन्तु प्रसंगों के कालानुक्रम को नजर अन्दाज करके उसकी ओर उल्टी दिशा में भी देखा जा सकता है।"--प्रतिमा-साधना : फड़के : पृ० १११।

हैं, इस दरवाजे पर हाथी झूमता था, अब उसकी जगह एक बूढ़ी भैंस थी जिसके शरीर में अस्थिपंजर के सिवा और कुछ शेष न रहा था।"[1]

तथा "कजाकी" कहानी का कथानक सीधे आरंभ होता है : लक्ष्यात्मक रूप से :

"मेरी बाल स्मृतियों में कजाकी एक न मिटनेवाला व्यक्ति है। आज चालीस साल गुजर गए, लेकिन कजाकी की मूर्ति अभी तक आँखों के सामने नाच रही है।[2]

कथानक-निर्माण में सतर्कता की अपेक्षा

प्रस्तुत युग की कहानी की विकास-प्रक्रिया के अध्ययन-क्रम में हम इस सत्य से परिचित होते हैं कि जितना ही लेखक का मानस प्रबुद्ध और जागरूक होता जाता है, कथानक-निर्माण की प्रक्रिया में वह उतना ही अधिक सतर्क होता जाता है। सुदर्शन ने अपनी कुछ कहानियों की भूमिका लिखते हुए इस सत्य को स्वीकार किया है।[3] तथा उन्होंने उन आंतरिक कठिनाइयों की ओर संकेत किया है जो कई-कई दिन तक कहानी का निर्णीत रूप सामने नहीं आने देतीं। निश्चय ही, प्राचीन कहानी के रचनाकार के सम्मुख ऐसी कोई कठिनाई नहीं रही होगी।

१– मानसरोवर : भाग ७ : पृ० १४२।

२– मानसरोवर : भाग ५ : पृ० १४५।

३– "जिस समय मैंने इस पुस्तक की कहानियाँ लिखीं, उस समय मेरी आयु अठारह-उन्नीस वर्ष से ज्यादा न थी। उस समय लिखने का इतना जोश था, कि जब लिखने बैठता था तो कहानी को एक ही बैठक में समाप्त करके उठता था। आज अगर कोई मुझसे कहे कि कहानी आरम्भ करो और समाप्त करके उठो तो मैं इसे सजा और सख्ती समझूँ। मगर उस समय यह सजा और सख्ती न थी, मजा और मनोरंजन था। मैं एक ही बैठक में कहानी समाप्त करके खुश होता था। उन दिनों मुझे कथानक सोचने और खोजने की जरा भी जरूरत न पड़ती थी। इरादा किया, लिखूँ, और कथानक सामने आकर खड़ा हो गया। अब कहानी लिखनी हो तो कई कई दिन हैरानी और परेशानी में बीत जाते हैं कि क्या लिखूँ? और कैसे लिखूँ? –पुष्पलता : सुदर्शन : पृ० ५।

कथानक में घटना-तत्व की नगण्यता

कथानक-निर्माण में इस सविशेष सतर्कता का उपयोग आधुनिक कहानी की निर्माण–प्रक्रिया को प्राचीन "कहानी" से पृथक करता है। प्राचीन कहानी में कथानक का ढाँचा आरम्भ से ही निर्णीत और सपाट होता था। उसमें रहस्यमय या साँकेतिक मोड़ और संघर्ष-प्रतिक्रिया के लिए अवकाश ही नहीं था। आधुनिक "कहानी" में इस दृष्टि से घटना तो नगण्य होती है[1] कि कहानी की "रचना" से सम्बन्धित अन्य महत्वपूर्ण विशेषताओं का कलात्मक उपयोग कर सकने की संभावना बनी रहे।[2] उदाहरण के लिए प्रेमचन्द की कहानी "मनोवृत्ति" के कथानक पर विचार कर सकते हैं। घटना-तत्व की नगण्यता इस कहानी की अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा अर्थपूर्ण विशेषता है। किसी अर्थ में इस कहानी में कोई घटना-विधान है ही नहीं। एक सुन्दर युवती, प्रात:काल गाँधी पार्क में विल्लौर के बेंच पर गहरी नींद में सोई हुई पाई जाती है। बूढ़े-जवान जो भी गुजरते हैं–ठिठक जाते हैं–युवक रहस्य-भाव से मुस्कराते हुए, बृद्ध जन चिन्ता-भाव से सिर हिलाते हुए और युवतियाँ लज्जा से आँखें नीची किए हुये। सभी अपनी-अपनी "मनोवृत्ति" से टीका करते हैं :

कोई कहता है–वेश्या है।

कोई कहता है–मुझे तो कुल वधू-सी लगती है।

और, किसी के हृदय पर यह रूप "जीवन पर्यन्त के लिए अंकित हो जाता है।"

अन्त में, पता चलता है कि टीका करनेवालों में युवती के पति भी थे और ससुर भी। कहानी यहीं समाप्त होती है।

विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि घटना की यह नगण्यता "कथानक" के सम्पूर्ण प्रभाव को तीव्रतर बनाती है–उसमें बाधा नहीं उपस्थित

१– "अब हम कहानी का मूल्य उसके घटना-विन्यास से नहीं लगाते।"
–प्रेमचन्द : मानसरोवर : भाग १ : प्राक्कथन : पृ० ११।

२– "·········बड़ी से बड़ी और छोटी से छोटी घटना भी, यदि एक नर्म चरित्र का उद्घाटन नहीं करती, मानव व्यवहार में परिवर्तन का कारण नहीं बनती, इसी मनुष्य में से एक अभिनव मनुष्य ढूंढ़ कर निकाल नहीं लाती, तो कला के निकट उसका कोई अस्तित्व नहीं।"
–घटना की खोज : श्रीकान्त वर्मा : कहानी–४ : पृ० ७२।

करती। घटना की नगण्यता के फलस्वरूप कहानी वक्तव्य-निर्भर हो पाती है। पर घटना और वक्तव्य में अनिवार्यतः परस्पर विरोध हो ही, ऐसी बात नहीं है। रचनात्मक मर्म से अभिज्ञ कहानी लेखकों की कृतियों में इसके उदाहरण प्राप्त हो सकते हैं कि घटना (निश्चय ही, सूक्ष्म घटना, कहानी के छोर पर स्थिर घटना) ही कहानी का अभिप्रेत या वक्तव्य भी हो। जीवन एवं परि-स्थितियों के बीच के सूक्ष्म सम्बन्धों की पहचान को कुशल लेखक चाहे तो एक सूक्ष्म, नगण्य घटना के आघात द्वारा व्यक्त कर सकता है–जैसा प्रेमचन्द ने "मनोवृत्ति" शीर्षक कहानी में या "कफन" शीर्षक कहानी में किया है। इसी प्रक्रिया में घटना की नगण्यता कहानी के लिए अधिक सार्थक[1] हो सकती है। कथानक से कहानी की पृथकता की ओर ई० एम० फार्स्टर ने इसी दृष्टि से संकेत किया है।[2] इस सूक्ष्म प्रक्रिया का उपयोग न कर पाने वाले कहानीकार घटनाबहुल कहानियों में भी अन्ततः कोई संवेदनात्मक प्रभाव उत्पन्न नहीं कर पाते। सुदर्शन की "दो मित्र थे"[3] शीर्षक कहानी की तुलना "मनोवृत्ति" कहानी से करते हुए इस अन्तर को सहज ही जाना जा सकता है।

कथानकों में वैविध्य

प्रस्तुत युग की विशेषता ही मानी जायगी कि उसमें रचित कहानियों के कथानक घटना-प्रधान, चरित्र-प्रधान, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक–विविध प्रकार के हैं। यह शुभ है कि इस विविधता ने हिन्दी कहानी के वस्तु-जगत् को अधिक व्यापक बनाया और यथार्थ की विविधता के अनुकूल कथा-शिल्प को अधिक ऋजु बनाने का यत्न किया। अन्यथा कोरी विविधता शुद्ध कला के लिए एक नकारात्मक लक्षण ही है। महत्वपूर्ण बात

१– "·········एक समर्थ कहानीकार किस प्रकार जीवन की छोटी-से-छोटी घटना में अर्थ के स्तर-स्तर उद्घाटित करता हुआ उसकी व्याप्ति को मानवीय सत्य की सीमा तक पहुँचा देता है·········ऐसे अर्थगर्भत्व को मैं सार्थकता कहता हूँ।" –नयी कहानी : सफलता और सार्थकता –नामवर सिंह : कहानी विशेषांक : पृ० १४।

२– एस्पेक्ट्स आफ द नावेल : ई० एम० फार्स्टर : पृ० ८२-८३।

३– चार कहानियाँ : सुदर्शन : पृ० १०३।

यह है कि प्रस्तुत युग की कहानियों के कथानकों को देखने से कहानीकारों की रचना-प्रक्रिया और युग की मनोवैज्ञानिक चेतना का जितना सही-सही पता चलता है, वैसा प्राचीन कहानी में बहुत कम संभव था। प्रेमचन्द की कहानियों के कथानक में व्यक्त परिस्थितियों का ऐसा प्रतीकात्मक अर्थ व्यक्त होता है कि उसके प्रकाश में सम्पूर्ण युग की चेतना का अनुमान किया जा सकता है। उदाहरण के लिए प्रेमचन्द की कहानी "आत्माराम" के कथानक में तोते के उड़ जाने का प्रसंग एक प्रतीकात्मक संकेत बनकर आता है।[1] "तोता" इस कहानी के कथानक में प्रेमचन्द-युग के मनुष्य के स्वप्नों, आकाँक्षाओं का केन्द्रीयप्रतीक है और उसके उड़ जाने का आघात एक विशेष युग की ऐतिहासिक निराशा के आघात की उपज है। प्रेमचन्द की ही एक अन्य कहानी "सुहाग की साड़ी" में गौरा के मन का अन्तर्द्वन्द्व स्वतंत्रता से पूर्व के व्यक्ति के मन का अनिश्चयपूर्ण अन्तर्द्वन्द्व है। प्रत्यक्ष है, कि इस युग की कहानियों के कथानकों के अध्ययन से विशेष कहानीकारों की विशिष्ट रचना–प्रक्रिया के प्रेरकतत्वों का और सामाजिक पृष्ठभूमि का आभास मिलता है। साथ ही, कुछ कहानीकारों की रचनात्मक चेतना की सीमाओं का भी पता चलता है। उदाहरणों के रूप में सुदर्शन की "कवि का त्याग,[2] 'सच का सौदा'[3] 'प्रेम का पापी'[4] आदि कहानियों का उल्लेख किया जा सकता है। इन कहानियों के कथानक कहानीकार के मन के निर्णीत स्थूल सुधारवादी आग्रह के कारण रचनात्मक संभावनाओं का उपयोग नहीं कर सके हैं।

कहानी : चरित्र–चित्रण की सीमाएँ

चरित्र-चित्रण

सामान्य रूप से देखने पर चरित्र-चित्रण कहानी और उपन्यास दोनों

१– "एक दिन संयोगवश किसी लड़के ने पिंजरे का द्वार खोल दिया। तोता उड़ गया। महादेव ने सिर उठाकर जो पिंजरे की ओर देखा तो उसका कलेजा सन्न हो गया। तोता कहाँ गया? उसने फिर पिंजरे को देखा, तोता गायब था। महादेव घबराकर उठा और इधर–उधर खपरैलों पर निगाह दौड़ाने लगा।" –आत्माराम : प्रेमपचीसी : प्रेमचन्द्र : पृ० ६।

२– सुदर्शन सुधा : सुदर्शन : पृ० १३।

३– सुदर्शन सुधा : सुदर्शन : पृ ४१।

४– वही, पृ० ९७।

के लिए अनिवार्य तत्व प्रतीत होगा। परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से विचार करें तो सहज ही इस स्थिति से परिचित हो सकते हैं कि चरित्रों के सम्यक् विधान के लिए "उपन्यास" में जितनी संभावना होती है, उतनी "कहानी" में नहीं। कहानीकार के लिए चरित्र की सम्पूर्णता को चित्रित कर सकना संभव ही नहीं है। वह तो किसी महत्वपूर्ण चरित्र के जीवन के किसी एक विशेष रूप को, विशेष कोण से कहानी में रूपायित करना चाहता है और इस दृष्टि से वह वस्तु और चरित्र में अभेद स्थापित करना चाहता है तथा साथ ही चरित्र के सार्थक और निजी वैशिष्ट्य को मूर्तिमान करना चाहता है। इस विरोधाभास का समाधान जो लेखक जितने ही अच्छे रूप में ढूंढ़ लेता है उसकी रचनात्मक कल्पना चरित्र-प्रतिभा के निर्माण में उतनी ही सफल हो पाती है।[1] प्रेमचन्द युग की कहानी में चरित्र पहली बार रचनाकारों के संश्लिष्ट अनुभवों के सहायक मूल्य बनकर आते हैं। प्रेमचन्द से पूर्व की कहानी की रचना-प्रक्रिया के अध्ययन से हमें उस युग के चरित्र-विधान की इस सीमा का प्रत्यक्ष अनुभव होता है कि चरित्रों का कथानक के साथ, कृत्रिम सम्बन्ध ही निर्मित हो सका है। प्रेमचन्दयुग की कहानी में पहली बार चरित्रों का कथानक के साथ वास्तविक सम्बन्ध निर्मित हो पाया है।

प्रेमचन्द-युग की कहानी में "चरित्र"

प्रेमचन्द-युग की अधिसंख्य कहानियां चरित्रों को आधार मानकर लिखी गई हैं। प्रेमचन्द की, माँ, बेटों वाली विधवा, बड़े भाई साहब, सुभागी, मैकू, बड़े घर की बेटी, बूढ़ी काकी, कौशिक की ताई, वह प्रतिमा, नास्तिक प्रोफेसर, प्रसाद की, मधुवा, ममता, पुरस्कार, चूड़ीवाली, नूरी, सुदर्शन की "स्त्री का हृदय"–आदि कहानियों में "कथानक" "चरित्र" पर आधारित हैं। अतः प्रस्तुत युग की रचना-प्रक्रिया को समझने के लिए इन कहानियों की चरित्र–

१– "केन्द्रीय कल्पना निश्चित हो जाने पर बढ़िया ढंग से उसका परितोष एवं विकास करने का बड़ा भारी उत्तरदायित्व कथालेख को अपने सिर पर लेना पड़ता है। यह विकास "चरित्रचित्रण" एवं "कथारचना" की सहायता से करना होता है और लेखक के इन दो उपांगों में लेखक जितनी प्रवीणता प्राप्त करेगा, उतनी उसकी रचना मनोहारी बनती जायेगी।" प्रतिभा-साधना : फड़के : अनु० श्रीपाद जोशी : पृ० ९१।

चित्रण-पद्धति से परिचित होना आवश्यक है। इस दृष्टि से, इस युग की कहानियों का अध्ययन करें तो आरम्भिक कहानियों की चरित्र-चित्रण–पद्धति और विकास की कहानियों की चरित्र-चित्रण–पद्धति में एक निश्चित अन्तर दिखाई देगा। उदाहरण के लिए, इस युग के सर्वाधिक महत्वपूर्ण कहानीकार प्रेमचन्द की आरम्भिक कहानियों में चरित्र-चित्रण के नाम पर आचरण और व्यवहार के ऊपरी धरातल का विवरणात्मक उल्लेख करने की प्रवृत्ति है। धीरे-धीरे कहानी-शिल्प के विकास के साथ प्रेमचन्द ने यह विशेषता उपलब्ध की है कि वे चरित्र को विशेष कोण से देख सकें। विकास के साथ इसके स्पष्ट संकेत भी प्रेमचन्द की कहानियों में हैं कि चरित्र-चित्रण की आदर्शवादी मान्यताएँ आरम्भ की कहानियों में ही बची रह गयी हैं [1] और चरित्र यथार्थ होकर सामने आने लगे हैं।

प्रसाद की कहानियों के चरित्र भावमूलक एवं आदर्शवादी हैं जिनकी सक्रियता भावना में अधिक है, वाह्य कार्य में कम। वह अकारण ही नहीं है, कि प्रसाद की कहानियों के विशिष्ट और प्रमुख चरित्रों में अधिकाँश स्त्रियाँ ही हैं : मधूलिका, चम्पा, नूरी, ममता, सुजाता आदि। यह स्थिति इसीलिए है कि प्रसाद के आदर्शमूलक भावनात्मक दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व अधिक मात्रा में कोमल भावनात्मक संस्कारों से युक्त स्त्रियाँ ही कर पाती हैं जिनके चरित्रों में आदर्शवादी प्रेरणाएँ अन्तर्निहित हैं।

इसके पीछे निश्चित कारण है, कि प्रसाद का चरित्र-चित्रण दूसरे लेखकों की तुलना में अधिक अलंकृत और वायवी है, जैसे "इन्द्रजाल" कहानी में बेला का चित्रण—

"बेला साँवरी थी। जैसे पावस की मेघमाला में छिपे हुए आलोक पिंड का प्रकाश निखरने की अदम्य चेष्टा कर रहा हो, वैसे ही उसका यौवन सुगठित शरीर के भीतर उद्वेलित हो रहा था।"[2]

१– "यहाँ चरित्रों की आदर्शवादी मान्यताएँ सब बहुत पीछे छूट गईं, क्योंकि वे सब झूँठी थीं, उपदेशात्मक थीं।"

–हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास

–डा० लक्ष्मीनारायण लाल : पृ० १५५।

२– इन्द्रजाल : प्रसाद : पृ० २।

प्रसाद की ही कहानियों में इसके अपवाद भी हैं, पर बहुत कम। "गुंडा" कहानी में नन्हकू सिंह का चित्रण इस दृष्टि से उल्लेख्य है—

"·········वह पचास वर्ष से ऊपर था। तब भी युवकों से अधिक बलिष्ठ और दृढ़ था। चमड़े पर झुर्रियाँ नहीं पड़ी थीं। ·········उसकी चढ़ी मूछें बिच्छू के डंक की तरह देखनेवालों की आँखों में चुभती थीं। उसका साँवला रंग, साँप की तरह चिकना और चमकीला था।"[1]

पर, अधिकतर प्रसाद के कथा-चरित्रों के हृदय में बसन्त का विकास, उमंग में मलयानिल की गति, कंठ में वनस्थली की काकली, आँखों में कुसु-मोत्सव, आँदोलन में परिमल का उद्गार होता है।[2]

कहानी में चरित्रों की प्रतिष्ठा जीवन और परिस्थिति के बीच के यथार्थ सम्बन्धों के रूप में होनी चाहिए, इस मान्यता के आधार पर प्रेमचन्द ने अधिक यथार्थ चरित्रों को अपनी कहानियों का विषय बनाया। आदर्श चरित्रों की जो झूठी धारणा पुरानी कहानी में विद्यमान थी, उसे तोड़कर प्रेमचन्द ने यथार्थ-चरित्रों की प्रतिष्ठा के लिए नये कथा-शिल्प का निर्माण किया। चरित्र अच्छे हैं कि बुरे, स्वस्थ हैं कि अस्वस्थ, इस स्थूल नैतिकता के प्रश्न की सीमाओं से प्रेमचंद परिचित थे। अतः कहानी की रचनात्मक कला के सार्थक प्रयोजन को ध्यान में रखते हुए उन्होंने "शतरंज के खिलाड़ी" कहानी के मीर साहब और मिरजा साहब जैसे चरित्रों का या "पूस की रात" कहानी के हल्कू किसान जैसे चरित्रों का निर्माण किया। मीर साहब और मिरजा साहब के देखते-देखते देश चला गया और हलकू के देखते-देखते फसल नष्ट हो गयी। पर इन चरित्रों की यथार्थ प्रतिमा के उद्घाटन से कौन से मानवीय पक्ष सामने आए, इसकी मीमांसा किए बिना उनकी उपयोगिता का सच्चा मूल्याँकन संभव नहीं है। निश्चित मनोवैज्ञानिक तथ्यों के प्रकाश में ही ऐसे सजीव चरित्रों का निर्माण संभव है।[3] उनके अभाव में चरित्र सपाट (फ्लैट) और निर्जीव हो उठते हैं।

चरित्र-चित्रण की सीमाएँ

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से इस सम्पूर्ण युग की कहानी का मूल्याँकन

१— इन्द्रजाल : प्रसाद : पृ० ९१।

२— वही, पृ० ७।

३— "चरित्र के संगठन और विकास के मूल में मनोवैज्ञानिक तथ्यों की ढूँढ़

करते हुए यह स्पष्ट दीखता है कि अधिकतर चरित्र, यथार्थ और आदर्श के द्वन्द्व के कारण, बौद्धिकता एवं भावुकता के अनिश्चयपूर्ण संघर्ष के कारण अधूरे और कृत्रिम रह गये हैं। प्रेमचंद की कहानियाँ इसके लिए अपवाद हैं जिनके चरित्र "सुस्पष्ट" तथा "चारों ओर से सम्पूर्ण" बन पड़े हैं।[1] पर यही बात विश्वम्भरनाथ शर्मा "कौशिक", सुदर्शन और भगवतीप्रसाद वाजपेयी की कहानियों के लिए और प्रेमचंद या प्रसाद की भी सभी कहानियों के लिए नहीं की जा सकती। उदाहरणतः "कौशिक" की 'माल्ती का प्रेम'[2] 'वन्ध्या'[3] सुदर्शन की "न्याय मन्त्री",[4] "लोकाचार"[5]– इन कहानियों में चरित्र–विधान की कृत्रिमता प्रत्यक्ष है। अपनी जीवन–दृष्टि में व्याप्त सुधारवादी अधैर्य के कारण जिन कहानीकारों ने चरित्रों को देवता–तुल्य आदर्शों से मंडित करना चाहा है, उनकी रचना-प्रक्रिया की सीमाएँ छिपी नहीं रहतीं। ऐसे कहानीकार आदर्श के आरोप को अधिक स्थूल बना देते हैं। इस दृष्टि से, सुदर्शन की कहानी "सदासुख" का यह अंश उल्लेख्य है :

'उस आदमी ने देखा कि वह किसी देवता के सामने खड़ा है। वह देवता इस पतित, गिरी हुई, पाप में फंसी हुई दुनियाँ से बहुत ऊंचा है। उसका आदर्श उज्ज्वल, पवित्र, अनुपम है।'[6]

खोज आवश्यक होती है। मनुष्य जिस प्रकार के सांस्कृतिक वातावरण और सामयिक अथवा कौटुम्बिक परिस्थितियों के बीच में रहता है उनका कहीं प्रत्यक्ष और कहीं प्रच्छन्न प्रभाव उसके आचरण, व्यवहार एवं रुचि इत्यादि पर निरन्तर पड़ता चलता है।"

–कहानी का रचना विधान : डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा : पृ० १००।

१–"स्पष्टता के मैदान में वे सहज अविजेय हैं। उनकी बात खुली, निर्णीत और निश्चित होती है। अपने पात्रों को भी सुस्पष्ट चारों ओर से सम्पूर्ण बनाकर वह सामने लाते हैं।"

–साहित्य का श्रेय और प्रेय : जैनेन्द्रकुमार : पृ० १०१।

२– वन्ध्या : कौशिक : पृ० १।

३– वन्ध्या : कौशिक : पृ० ५५।

४– सुदर्शन सुधा : सुदर्शन : पृ २८।

५– वही, पृ० १६७।

६– चार कहानियाँ : सुदर्शन : पृ० २४७।

इसके विपरीत उग्र की कहानियों में प्रायः कुरूप, विद्रूप चरित्रों की ही अवतारणा है । उग्र ने हुस्नबानू फिल्मस्टार, अव्वल दर्जे के मक्खीचूस त्रिभुवननाथ, बेईमानचंद और ईमान सिंह जैसे चरित्रों की निर्मम, कटु अभि–व्यक्ति को अपनी रचना-चेतना का उद्देश्य बनाया है, क्योंकि, वे निरन्तर परिस्थितियों की विषमता से पीड़ित होते रहे हैं ।

महत्वपूर्ण चरित्र और साधारण चरित्र

प्रस्तुत युग की कहानी के आधार पर चरित्रों के बीच, महत्वपूर्ण और साधारण इस प्रकार का कोई कृत्रिम विभाजन करना उचित नहीं है, पर यह संकेत करना आवश्यक है कि यह बात कहानी-विशेष पर निर्भर करती है कि कहानी के साधारण चरित्र अन्त तक साधारण ही बने रहते हैं, अथवा अचानक ही विशेष महत्व के हो जाते हैं । यदि साधारण चरित्रों में ही कहानी के आशय की पूर्ति होती हो, तो आश्चर्य की कोई बात नहीं । इस युग की कुछ कहानियों के चरित्र-विधान को देखने से चरित्रों की मानसिक प्रक्रिया और चरित्रों के निर्माणकर्ता रचनाकारों की मनोवैज्ञानिक चेतना का सूक्ष्म परिचय प्राप्त होता है । प्रसाद के चरित्र तीव्र मानसिक संघर्ष की प्रक्रिया को जिस रूप में वहन करते हैं, उस पर ध्यान देने से प्रसाद की संकल्पात्मक अनुभूति तथा प्रसिद्ध मनोविज्ञानवेता एडलर के स्वत्वाग्रह-सिद्धान्त के बीच की समानता का आभास होता है । प्रसाद की रचनाओं के, चम्पा जैसे चरित्रों की मानसिक चेतना के निर्माण में स्वत्वाग्रह का भावना को योग स्पष्ट है ।

वातावरण-सृष्टि

'साहित्य का तात्पर्य' शीर्षक अपने निबन्ध में रवीन्द्रनाथ ने एक प्रश्न उठाया था : 'भाव-जगत्' कहने से हमें किस चीज का बोध होता है ?'[1] और स्वयं ही उत्तर दिया था : हृदय जिसकी उपलब्धि करता है विशेष रस के योग से, और अनतिलक्ष्य अनेक अविशेषों में से कल्पना की दृष्टि से जिसे हम विशेष करके लक्ष्य करते है,–यह उपलब्धि करना, यह लक्ष्य करना ही जहाँ चरम विषय है वहीं हमारा भाव-जगत् है ।"[2] कहा जा सकता है कि कहानी में इसी भाव-जगत् का चित्रण वातावरण का चित्रण हो जाता है । पर, केवल

१–साहित्य के पथ पर : रवीन्द्रनाथ ठाकुर : पृ० १२३ ।
२–वही, पृ० १२३–१२४ ।

भाव–जगत् को ही चित्रित करना वातावरण को चित्रित करना नहीं है, बल्कि यथार्थ जगत् का भी चित्रण वातावरण–चित्रण का अंग है।

कहानीकार के लिए वातावरण एक सविशेष परिस्थिति है जिसके भीतर कुछ चरित्रों का तथा उनके अन्तर्द्वन्द्वों का विकास होता है और इस दृष्टि से कहानीकार के लिए वातावरण एक सजीव परिस्थिति है। कहानी के विषय, उसमें वर्णित परिस्थिति और उसकी संवेदना के अनुरूप कहानीकारों को अपनी कहानियों में विविध प्रकार के वातावरणों की सृष्टि करनी होती है। लेखक के अनुभव-विस्तार, और कुशल अभिव्यक्ति संयम का अनुमान बहुत कुछ उसकी कहानी में प्राप्त वातावरण सृष्टि को देखकर किया जा सकता है।' पूस की रात' कहानी से वातावरण–चित्रण का एक उदाहरण लें तो[1] सहज ही चेखब की कहानियों के 'लैंडस्केप' सदृश वातावरण का स्मरण कर सकते हैं।[2] यथार्थवादी लेखक के लिए वातावरण एक 'लैंडस्केप' के सदृश ही होता है और वह इस माध्यम से अतिशय सजीव किसी परिस्थिति के टुकड़े को अपनी कहानी में उठा कर रख देता है। और, वातावरण–चित्रण की इस प्रक्रिया में रचयिता के भाव–जगत् से यथार्थ जगत् अधिक सुन्दर हो जाता है। प्रेमचंद और प्रसाद की कालसिद्ध कहानियों में उपर्युक्त वातावरण–सृष्टि के अनेक उदाहरण मिल सकते हैं। पर प्रेमचन्द–युग के सभी कहानी लेखकों के कृतित्व में वातावरण-चित्रण की संवेदना उसी रूप में नहीं मिलती।

१–'थोड़ी देर में अलाव जल उठा। उसकी लौ ऊपर वाले वृक्ष की पत्तियों को छू-छूकर भागने लगी। उस अस्थिर प्रकाश में बगीचे के विशाल वृक्ष ऐसे मालूम होते थे मानों उस अथाह अन्धकार को अपने सिरों पर सँभाले हुए हों। अन्धकार के उस अनन्त सागर में यह प्रकाश एक नौका के समान हिलता, मचलता हुआ जान पड़ता था।'

—मानसरोवर : (प्रेमचन्द) : भाग १ : पृ० १५०।

२–'देयर वाज ए फीलिंग आफ मे, द डिलाइटफुल मन्थ आफ मे इन द एयर वन कुड ड्रा डीप ब्रेथ्स, ऐण्ड इमैजिन दैट समह्वेयर, फार बियान्ड द टाउन, बिनीथ द स्काई, एबव द ट्री टाप्स, इन द फील्ड्स ऐन्ड वुड्स, द स्प्रिंग वाज बिगिनिंग इट्स ओन लाइफ, दैट मिस्टीरियस, एक्सक्वीजिट लाइफ, रिच ऐन्ड सैक्रेड, फ्राम ह्विच सिनफुल मार्टल आर शट आउट……'

–द ब्राइड, चेखब, शार्ट नावेल्स एण्ड स्टोरीज पृ० ३६१।

(क) 'सामने शैल माला की चोटी पर, हरियाली में, विस्तृत जल-प्रदेश में नील पिंगल संध्या, प्रकृति की एक सहृदय कल्पना, विश्राम की शीतल छाया, स्वप्नलोक का सृजन करने लगी। उस मोहिनी के रहस्यपूर्ण नील जाल का कुहक स्पष्ट हो उठा। जैसे मदिरा से सारा अन्तरिक्ष सिक्त हो गया। सृष्टि नील कमलों से भर उठी।'[1]

—प्रसाद।

(ख) 'प्रभात का समय था। आसमान से बरसती हुई जीवन की किरणें संसार में नवीन जीवन का सँचार कर रही थीं। बारह घन्टों के लगातार संग्राम के बाद प्रकाश ने अंधेरे पर विजय प्राप्त की थी। इस खुशी में फूल झूम रहे थे और पक्षी मीठे गीत गा रहे थे। पेड़ों की शाखायें खेलती थीं और पत्ते तालियाँ बजाते थे। चारों तरफ प्रकाश नाचता था। चारों तरफ खुशियाँ मुस्कराती थीं। चारों तरफ गीत गूँजते थे।'[2] —सुदर्शन।

वातावरण-चित्रण : विशेष भाव स्तर का प्रश्न

प्रसाद और सुदर्शन की कहानियों से उद्धृत उपर्युक्त दोनों उदाहरणों के विश्लेषण से हम समझ सकते हैं कि विशेष संवेदन–क्षम कहानीकार यदि वातावरण को विशेष सजीव बना सकता है और उसके माध्यम से कहानी की 'रागात्मक संवेदना' को अधिक तीव्र बना सकता है, तो विशेष संवेदना से रहित साधारण लेखक वातावरण को यह 'वैशिष्ट्य' नहीं दे सकता। कहानी में 'वातावरण' की सृष्टि इस दृष्टि से की जानी चाहिए कि वह किसी विशेष 'संवेदना' का 'आलम्बन' बन सके। रवीन्द्रनाथ 'वातावरण- चित्रण' के इस मार्मिक उपयोग की सार्थकता से परिचित थे अतः उन्होंने पूरी की पूरी कहानी वातावरण के एकाधिक चित्रों के संयोजन के आधार पर लिखी है।[3] इस दृष्टि

१–आकाशदीप : जयशंकर प्रसाद : पृ० ११।

२–पुष्पलता : सुदर्शन : पृ० ९।

३–'(क) लहरों वाला समुद्र बाहरी समुद्र है, भीतर जहाँ पृथ्वी की गंभीर गर्भशय्या है, लहरें वहाँ की बातों को गड़बड़ी में डालकर भुला देती है। लहरें जब ठहर जाती हैं तो समुद्र अपने गोचर के साथ अगोचर की गहरे तले के साथ ऊपरी भाग की अखंड एकता में स्तब्ध होकर बिराजा करता है।"

—प्राण-मन : रवीन्द्र साहित्य : भाग २ : अनु० ध०कु० जैन : पृ० १।

से कहा जा सकता है कि रवीन्द्रनाथ की अधिसंख्य कहानियां वातावरणप्रधान कहानियाँ है। पर ध्यान देने की बात यह है उनकी कहानियों में वातावरण की प्रधानता 'कथानक' में सन्निहित 'रस' की व्यंजना में, चरित्रों के आन्तरिक द्वन्द्वों के संघात की अभिव्यक्ति में, 'कृति' के वक्तव्य या अभिप्रेत 'प्रयोजन' के सम्प्रेषण में बाधक नहीं बनती, बल्कि सहायक ही होती है।

प्रसाद एवं प्रेमचन्द्र की श्रेष्ठ कहानियों को अपवाद मान लें तो प्रेमचन्द-युग की अधिकाँश कहानियां इस श्रेष्ठ भाव-स्तर की नहीं मिलेंगी जिनमें वातावरण-चित्रण की विशेष संवेदना का सम्यक् निर्वाह हो सका हो। इस युग की कहानियों में अधिकांश उदाहरण वातावरण-चित्रण के ऐसे मिलेंगे, जो न दिए जाते, तो कहानी के संवेदनात्मक प्रभाव में कोई अन्तर नहीं आता और जो कहानी के 'वक्तव्य' की दृष्टि से सार्थकता रहित और उद्देश्य-विहीन हैं।

वातावरण-चित्रण की सीमाएँ

उत्तर प्रेमचन्द-युग की कहानी में वातावरण के चित्र चेतन-जगत् की पृष्ठभूमि में छिपे हुए अचेतन जगत् के मनोव्यापारों को उद्घाटित करने में, घटनाओं के भीतरी सम्बन्धों के संघर्ष को व्यंजित करने में, 'वक्तव्य' के प्रतीकात्मक अर्थ को प्रकाशित करने में, जिस सीमा तक सफल हो सके हैं, उसकी समता प्रस्तुत युग की कहानियों में उपलब्ध नहीं है। प्रेमचन्द युग

(ख) 'उसके बाद आषाढ़ की वर्षा उतरी। उसके पत्तों का रंग बादलों जैसा गहरा होने लगा। आज उन हरे पत्तों की राशि प्रवीणों की पक्की बुद्धि की तरह गाढ़ी हो गई। बाहर के प्रकाश को अब उनकी किसी भी संघ में से घुसने का रास्ता नहीं मिलता। तब पेड़ था गरीब की लड़की की तरह, आज वह धनी-घर की गृहिणी है, मानों पर्याप्त परितृप्ति का चेहरा हो।"—वही, पृ० ३।

(ग) 'आँख उठाकर देखा, उत्तर का मैदान घास से ढ़का पड़ा है, पूरब का मैदान धान के अंकुरों से पट गया है, दक्षिण में बाँध के किनारे ताड़ वृक्षों की पंक्ति खड़ी है, पश्चिम में शाल-ताड़-महुआ-आम-जामुन—खजूर सब ने मिल कर ऐसी भीड़ लगा दी है कि दिगन्त दिखाई ही नहीं देता।' —वही, पृ० ९।

की कहानियों के वातावरण-चित्रण में वर्णनात्मकता का आग्रह स्पष्ट दिखाई पड़ता है। इसकी तुलना में उत्तर-प्रेमचन्द-युग के आधुनिक कहानीकारों में वातावरण की सूक्ष्म अर्थच्छायाओं का मूर्तीकरण प्राप्त होता है। हमारी दृष्टि में, यह अन्तर मूलतः वातावरण-चित्रण का नहीं है, व्यापक आधार पर यह अन्तर रचनात्मक प्रक्रिया का ही है। रचना-प्रक्रिया की दृष्टि से प्रेमचन्द-युग की कहानियों के वातावरण-चित्रण अनुभव दिगन्तों की उस सीमा के प्रतीक हैं जिनमें बाह्य जीवन व्यापारों की ही यथार्थता को ही स्वीकृति प्राप्त थी। ऐसे वातावरण-चित्र कथानक के साथ जोड़ दिए गए जान पड़ते हैं। चेखब और मोपासाँ ने अपनी कहानियों के वातावरण-चित्रों को एक दुर्लभ यथार्थता दी थी, जिसका केन्द्रीय आलोक छनकर कहानियों के वक्तव्य पर पड़ता था। चेखब के चरित्र तो मिलते भी हैं, तो वातावरण की बात करते हैं।' 'द ब्राइड' कहानी में नाद्या जब साशा से कहती है : 'कितना अच्छा लग रहा है।' तो उसका अर्थ होता है, कि यहाँ की प्रकृति कितनी अच्छी है, यह सारा परिदृश्य कितना अच्छा है जिसमें संगीत की एक आँतरिक लय निरन्तर गूंजती रहती है और इसे लक्ष्य कर साशा मानो इस स्थिति पर व्यंग करता हुआ संकेत करता है कि हमारे जीवन में जो असन्तुलन और असमानता है, प्रकृति का निस्पृह सन्तुलन, सौन्दर्य मानों उसी की सम्पूर्ति है।[1] प्रेमचन्द और प्रसाद की कहानियों को छोड़ कर प्रेमचन्द-युग की किसी भी कहानी में वातावरण-चित्रण का यह सूक्ष्म सार्थक और रचनात्मक उपयोग कम मिलता है। कहानी की रचना-प्रक्रिया वातावरण-चित्रण की पद्धति को दूर तक प्रभावित करती है, इसमें सन्देह नहीं। प्रसाद की कहानियों में उपलब्ध वातावरण-चित्रण में, नील-पिंगल संध्या, विश्राम की शीतल छाया, चाँदनी रात में पहाड़ से गिरता झरना, नक्षत्र मालिनी प्रकृति-जैसे काव्यात्मक बिम्बों की बहुलता है, इसका कारण प्रसाद के रचनात्मक मानस में ही निवास करता है। अनवरत संघर्ष से जूझते हुए प्रेमचन्द की कहानियों में ऐसे काल्पनिक और काव्यात्मक-सौन्दर्य-बिम्बों का अभाव सकारण ही है। इसी प्रकार उग्र की कहानियों में उपलब्ध 'वातावरण' के चित्र उनके क्षोभ और विद्रोह के ही परिचायक हैं।

१–शार्ट नावेल्स ऐन्ड स्टोरीज : ए० पी० चेखब : पृ० २६३।
(मूल रूसी से अनु० लित्विनोव द्वारा)।

कहानी में कुतूहल और संघर्ष : संवेदनात्मक प्रभाव की एकोन्मुखता का प्रश्न

जिन कहानियों में संघर्ष चरम कुतूहल के बिन्दु पर निवास करता है, उनकी तुलना में वे कहानियाँ अधिक कलात्मक महत्ता प्राप्त करती हैं, जिनमें संघर्ष या तो आदि से अन्त तक सूक्ष्म रूप में कथानक में रचा रहता है, या चरित्रों व परिस्थितियों के घात-प्रतिघात का स्वाभाविक अंग होता है। ऐसी कहानियाँ प्रस्तुत युग में कम लिखी गई हैं। जो कहानियाँ इस विशिष्ट कलात्मक स्तर की हैं उनमें संवेदना की एकोन्मुखता अपरिहार्य रूप में है।

ब्रैन्ड मैथ्यू ने प्रभाव की एकोन्मुखता को ही प्रधान तत्व स्वीकार किया है जो कहानी को उपन्यास से पृथक् करता है।[1] कहानी की उपयोगिता निश्चय ही इस दृष्टि से है कि वह मानव चेतना के प्रति या उसके किसी विशेष अंश के प्रति पाठक की उत्सुकता को एकोन्मुख कर सके।[2] प्रस्तुत युग की कहानियों के अध्ययन से सहज ही जाना जा सकता है कि कम कहानियाँ प्रभाव की इस एकोन्मुखता का निर्वाह कर सकी हैं। संघर्ष कहानियों में है, पर प्रायः उनका स्वरूप बाह्य है और कुतूहल चमत्काराश्रित है। कुछ श्रेष्ठ कहानियों में-जैसे 'प्रसाद' की 'पुरस्कार, "आकाशदीप", "सालवती" तथा "देवस्थ" में और प्रेमचन्द की 'मैंकू" "कफन", "पूस की रात", "अलग्योझा" आदि में—कुतूहल का सूक्ष्म उपयोग, संघर्ष की गहनता, आभ्यंतर और बाह्य प्रभावों-संवेदनाओं की एकोन्मुखता आदि की विशेषताएं उसी रूप में पाई जा सकती हैं जैसी विशेषताएं श्रेष्ठ कविताओं[3] का अंग होती हैं।

१—"ए ट्रू शार्ट स्टोरी डिफर्स फ्राम द नावेल चीफ्ली इन इट्स एसेन्शियल यूनिटी आफ इम्प्रेशन," : इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका : जिल्द २०, पृ० ५८०।

२—"कहानी हमारे सम्पूर्ण संवेगों को, हमारी सम्पूर्ण चेतना को और साथ ही हमारी सम्पूर्ण बौद्धिकता को पूर्णतया एकोन्मुख बना देती है।"
—डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा : कहानी का रचनाविधान : पृ० ९।

३—'संक्षिप्त रूप से गल्प एक कविता है। जिसमें जीवन के किसी एक अंग या किसी एक मनोभाव को प्रदर्शित करना ही लेखक का उद्देश्य होता है।
—गल्प समुच्चय : प्रेमचन्द : पृ० २।

भाषा-विधान

मानव संवेदना में जैसे-जैसे जटिलता आती गयी है, भाषा के रचनात्मक मूल्य में उतना ही परिवर्तन देखा गया है। सुख और दुख की अनुभूति के विस्तार के साथ भाषा का रचनात्मक मूल्य निरन्तर विकसित होता गया है। कहानी ने अनुभव सम्बन्धों की चेतना के अनुसार भाषा नामक यन्त्र को अधिक से अधिक ऋजु और लचीला बनाने का यत्न किया है।

क्रिस्टोफर काडवेल ने काव्य की भाषा-प्रक्रिया और उपन्यास की भाषा-प्रक्रिया के बीच अन्तर स्पष्ट करते हुए लिखा है: कि 'अलंकृत शैली उपन्यास के लिए हानिप्रद है क्योंकि वह आँखों को वस्तुओं और लोगों से हटाकर शब्दों की ओर ले आती है।[1] काडवेल की यह उक्ति कहानी पर भी घटित की जा सकती है। भाषा की निरपेक्ष सुन्दरता कहानी की रचनात्मक श्रेष्ठता के लिए एक नकारात्मक लक्षण है। वह अच्छी और साहित्यिक एवं कलात्मक श्रेष्ठता से युक्त कहानी में भी हो सकती है और अतिशय सामान्य कलात्मक स्तर की कहानी में भी लक्षित हो सकती है। कहानी की आदर्श भाषा वह होती है जो पाठक को कहानी के रचनात्मक क्षितिज में प्रवेश कराने में सहायक होती है, बाधा नहीं उपस्थित करती। भाषा में प्रवाहमयता का औचित्य है, तो इसी दृष्टि से। अन्यथा हेनरी जेम्स और अर्नेस्ट हेमिंग्वे की ठोस भाषा भी कथा साहित्य की श्रेष्ठ भाषा का आदर्श रही है।

प्रेमचन्द की भाषा : कुछ महत्वपूर्ण आदर्श तथा प्रेमचन्द युग की भाषा-सीमा

प्रेमचन्द की कहानियों में प्रयुक्त भाषा ने कहानी की भाषा के कुछ महत्वपूर्ण आदर्श विकसित किए थे जिनका विकास आगे चलकर तो हुआ, पर स्वयं प्रेमचंद के समय में कम हुआ। प्रेमचन्द की कहानियों की भाषा में वह शक्ति है जो कहानी में व्यक्त जीवनानुभवों से पाठकों को सम्बद्ध करती है और पाठकों को उस विशेष धरातल तक पहुंचाती है जहां पाठक अपने मानस में उन विशेष अनुभवों की पुनर्रचना कर सकता है। प्रेमचंद की

१–'ए जेवेल्ड स्टाइल इज ए डिसऐडवान्टेज टु द नावेल बिकाज इट डिस्ट्रेक्ट्स द आई फ्राम द थिंग्ज एण्ड पिपुल टु द वर्ड्स।"

–इलूज़न ऐण्ड रियलिटी : काडवेल : पृ० २०१।

विकासकालीन कहानियों की भाषा अर्थ के स्तर-पर स्तर उद्घाटित करती चलती है और पाठक को प्रतीत होता है कि वह कहानी से नहीं 'कहानी' नामक रचना के विशेष परिदृश्य से गुजर रहा है।

प्रेमचंद-युग के आरम्भ की कहानियों में भाषा अनावश्यक रूप से अलंकृत (प्रसाद की कहानियों की भाँति नहीं-जिनकी भाषागत् अलंकृति, रचना का स्वाभाविक धर्म है, सहज प्राप्य है) होती थी। उसमें निरर्थ शब्दों का संकलन होता था और व्यंजकता का अभाव प्रत्यक्ष रहता था। धीरे-धीरे कहानी की भाषा में सार्थक संयम की प्रतिष्ठा हुई जिसके परिणाम स्वरूप इस युग की विकासकालीन कहानियों की भाषा में अधिक व्यंजनात्मक शक्ति परिलक्षित होती है। विशेष प्रकार के अर्थगर्भत्व से इन कहानियों की भाषा की उपयोगिता बढ़ गई है। भाषा के इन दोनों रूपों के उदाहरण स्वयं प्रेमचंद की कहानियों से दिए जा सकते हैं।[1]

भाषा की सार्थकता का कहानी के लिए महत्व असंदिग्ध रूप से है। वह रसानुभूति का कारण नहीं होती पर रसानुभूति में सहायक होती है और भाषा असमर्थ हो, शिथिल और बोझिल हो तो रसानुभूति में बाधक भी हो सकती है। कहानी की भाषा के प्रश्न पर ऊपर ऊपर विचार करने से किन्हीं महत्वपूर्ण निष्कर्षों पर पहुंचना कठिन होता है। प्रसाद की भाषा कृत्रिम है, ऐसा वे लोग कहते हैं जो स्वाभाविक भाषा के धर्म और मर्म से परिचित नहीं होते। प्रसाद की कहानियों में प्रस्तुत वातावरण को देखते हुए उनकी अलंकृत

१–(क) 'चित्रकूट के सन्निकट धनगढ़ नामक एक गाँव है। कुछ दिन हुए वहां शानसिंह और गुमानसिंह दो भाई रहते थे। ये जाति के ठाकुर थे। युद्धस्थल में वीरता के कारण उनके पूर्वजों की भूमि का एक भाग मुआफी हुआ था। खेती करते थे, भैंसें पाल रखी थीं, घी बेचते थे मट्ठा पीते थे और प्रसन्नतापूर्वक समय व्यीतत करते थे।"

—मानसरोवर भाग ७ : पृ० २३४।

(ख) "उस अस्थिर प्रकाश में बगीचे के विशाल वृक्ष ऐसे मालूम होते थे मानों उस अथाह अंधकार को अपने सिरों पर संभाले हुए हों। अन्धकार के उस अनन्तसागर में यह प्रकाश एक नौका के समान हिलता, मचलत हुआ जान पड़ता था।'

—मानसरोवर—भाग १ : पृ० १५०।

भाषा ही स्वाभाविक और साम्यधर्म का निर्वाह करती हुई प्रतीत होती है। पर हृदयेश की अलंकृत भाषा इस रचनाधर्मिता का सम्यक् निर्वाह नहीं कर पाती। उनके अलंकृत चित्रों [1] को देखकर भारतेन्दु-युग के कुछ कृत्रिम निबन्धकारों की रचना-प्रक्रिया का अनायास स्मरण हो आता है। पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार हृदयेश की कहानियां शब्दों में झंकार देकर पद्य-काव्य बनाने का उद्देश्य लेकर लिखी गई थीं।[2]

प्रेमचन्द-युग की कहानी की रचना-प्रक्रिया के अध्ययन—क्रम में जब हम भाषा-प्रयोग सम्बन्धी सीमाओं पर ध्यान देते हैं तो यह सत्य सामने आता है कि भाषा की सरलता या क्लिष्टता सापेक्षगुण अथवा दोष है। कोई लेखक सरल भाषा के प्रयोग में अधिक मार्मिक सफलता प्राप्त करता है और कोई अलंकृत भाषा के व्यवहार द्वारा ही अपने रचनात्मक अभिप्राय को व्यक्त कर पाता है। प्रेमचंद और प्रसाद के कहानी-शिल्प में क्रमशः भाषा-प्रयोग के ये दो स्तर दिखाई पड़ते हैं। जब इस सत्य के कारणों की खोज के लिए इन लेखकों की रचनात्मक प्रक्रिया की गहराई में प्रवेश करते हैं तो इनकी जीवन-प्रक्रिया और रचनात्मक चेतना तथा इनके दृष्टिकोण की ओर सहज ही ध्यान आकृष्ट होता है। यहाँ यह संकेत करना ही पर्याप्त होगा, कि, क्योंकि प्रसाद

१– (क) "सुन्दरी वन्य लताओं के कोमलकान्त कलेवर से सुमन चयन करके, वनवाहिनी विमल कल्लोलिनी से सुशीतल जल आनयन करके एवं शुष्क तरु पुंज से समिधा संचय करके वे अपने पतिदेव महर्षि की तपोमयी साधना में सहाह्य होती थीं।"

—अमृतत्व : हृदयेश : "चाँद" : नवम्बर, १९२३।

(ख) "उस समय सन्ध्या का सुन्दर समारोह था। सामने स्वच्छ सलिला गोमती, भगवती करुणा की शीतल रसधारा के समान, मन्दमन्थर गति से प्रवाहित होती हुई अपने प्रियतम के पास चली जा रही थी, और उसके पीछे हरे-हरे खेतों की अभिनव शोभा के साथ सान्ध्यगगन की सप्त रागरंजित सुषमा गले मिल रही थी।"

—विसर्जन : हृदयेश : चाँद : मई, १९२७।

२– कथा–आख्यायिका और उपन्यास : हजारीप्रसाद द्विवेदी

आधुनिक हिन्दी-साहित्य : सं० वात्स्यायन : पृ० ६७।

वैभव और ऐश्वर्य में पले थे, क्योंकि उनकी सौन्दर्यानुभूति वैभव की आनन्दपूर्ण चेतना से सम्पृक्त थी अतः वे अलंकृत बिम्बबहुल भाषा का निर्माण कर सके हैं, जब कि आजीवन दुख और दुर्भाग्य में पले हुए कहानीकार प्रेमचन्द ने साधारण निम्न मध्यवर्गीय जीवन–चित्रण के अनुकूल सहज भाषा के प्रयोग में ही अपूर्व सफलता का परिचय दिया है। हृदयेश अलंकृत भाषा के सौन्दर्य को वह सजीवता नहीं दे सके हैं जो प्रसाद के कृतित्व में प्राप्त होती है क्योंकि उनका जीवन अनुभूत वैभव की उल्लसित चेतना से युक्त न था। प्रस्तुत युग की कहानी की भाषा-प्रक्रिया के अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि बोध और अनुभव-संवेदना का गहरा सम्बन्ध है,[1] और भाषा इस सम्बन्ध से व्यक्तिगत और सामाजिक सभी स्तरों पर प्रभावित होती है।

उद्देश्य

कहानी की रचनात्मक संवेदना से अपरिचित पाठक प्रायः कहानी के विषय को उसका केन्द्रीय "उद्देश्य" समझ बैठते हैं जब कि कहानीकार का "उद्देश्य" इतना सपाट और सीमित या यान्त्रिक नहीं होता कि कहानी के विषय में समाहित हो सके। कहानी का उद्देश्य प्रायः एक व्यापक सन्दर्भ में निवास करता है : चरित्र, कथानक, परिस्थिति सभी कुछ जिसके अंग होते हैं। जिन कहानियों में विषय वस्तु में, वस्तु विचार में, और विचार मूल्य में बदल जाते हैं, उनमें तो उद्देश्य की पहचान और भी कठिन हो जाती है। निश्चय ही प्रेमचन्द युग की कहानियों में ऐसी कहानियों की संख्या अत्यल्प है। प्रेमचन्द युग की अधिकाँश कहानियाँ ऐसी हैं जो कहानी की विभक्त धारणाओं की पुष्टि करती हैं और उद्देश्यमूलक प्रतीत होती हैं।

जैनेन्द्र ने एक स्थान पर कहा है कि "कहानी सुनाना मेरा उद्देश्य नहीं है।[2] इस उक्ति की विपरीतता का लाभ उठाकर कहा जा सकता है कि प्रस्तुत युग की अधिकांश कहानियों का उद्देश्य "कहानियाँ" सुनाना है। अधिकांश लेखकों ने "कहानी" के "कहानीपन" पर बल दिया है और अपने इस आग्रह को कहानी-कला का उद्देश्य ही मान लिया है। पर "कहानीपन"

१– "सेंस डेटा एण्ड एक्सपीरियन्स आर एसेंशियली मीनिंगफुल स्ट्रक्चर।"
—फिलासोफी इन ए न्यू की : सुसन के० लैंगर : पृ० २१६।

२– सुनीता : जैनेन्द्रकुमार : भूमिका।

से अधिक भी इस काल की कहानियों का कुछ महत्व है और वह इतना महत्वहीन या साधारण नहीं है कि सहज उपेक्षणीय हो। इस सम्बन्ध में प्रेमचन्द ने अपने एक महत्वपूर्ण वक्तव्य में कुछ संकेत दिए हैं जिनके अनुसार कहानी का उद्देश्य पाठक के मन में चरित्रों के प्रति आत्मीयता और प्रकार भेद से सहानुभूति जगाना है।[1] सहानुभूति जगाने की यह प्रक्रिया एक प्रकार की शुद्ध रचनात्मक प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत पाठक कहानी पढ़ता ही नहीं, उसकी पुनर्रचना भी करता है— अपने मन में, या अपने मानसिक अनुभवों में। ऐसे पाठक को पर्सील्यूबक ने एक महत्वपूर्ण दायित्व दे रखा है कि वह एक "कृति" को पढ़ते हुए अपने मन में उसकी समानधर्मिता में एक अन्य "कृति" का निर्माण करे–तभी वह रचना के मर्म से परिचित हो सकेगा।[2]

प्रस्तुत युग की कहानियों में मुख्यतया दो प्रकार के, भिन्न-भिन्न, उद्देश्य-स्तर दिखाई पड़ते हैं। आरम्भिक कहानियों में जहाँ हम उद्देश्य का "कहानी" पर "आरोप" पाते हैं, वहीं विकास-काल की कहानियों में उद्देश्य को "कहानी" में "अन्तर्भुक्त" देखते हैं। उदाहरण के लिए प्रेमचन्द की आरम्भिक कहानियों में "व्यंग" कहानी पर आरोपित है पर विकास की

---

१ —"उपन्यासों की भांति कहानियाँ भी कुछ घटना-प्रधान होती हैं, कुछ चरित्र-प्रधान। चरित्र-प्रधान कहानी का पद ऊँचा समझा जाता है, मगर कहानी में बहुत विस्तृत विश्लेषण की गुंजाइश नहीं होती। यहां हमारा उद्देश्य सम्पूर्ण मनुष्य को चित्रित करना नहीं, वरन् उसके चरित्र का एक अंग दिखाना है। यह परमावश्यक है कि हमारी कहानी से जो परिणाम या तत्व निकले, वह सर्वमान्य हो और उसमें कुछ बारीकी हो। यह एक साधारण नियम है कि हमें उसी बात में आनन्द आता है जिससे हमारा कुछ सम्बन्ध हो।…………जब हमारे चरित्र इतने सजीव और आकर्षक होते हैं कि पाठक अपने को उसके स्थान पर समझ लेता है, तभी उसे कहानी में आनन्द प्राप्त होता है। अगर लेखक ने अपने पात्रों के प्रति पाठक में यह सहानुभूति नहीं उत्पन्न कर दी, तो वह अपने उद्देश्य में असफल है।" —मानसरोवर : भाग १ : प्राक्कथन : पृ० १०।

२ —द क्रैफ्ट आफ फिक्शन : पर्सी ल्युबक : पृ० १७।

कहानियों का वह आत्मीय अंग है । प्रेमचन्द की विकास काल की कहानी "पंडित मोटे राम की डायरी" "आत्म व्यंग" से ही आरम्भ होती है ।[1]

जब हम उद्देश्य को "कहानी" में "अन्तर्भुक्त" मानते हैं और ऐसे उद्देश्य को अधिक सार्थक बताते हैं तो हमारे सामने एक और ही प्रश्न आता है : क्या कहानी का उद्देश्य "कहानी" में एक प्रतिकृति (पैटर्न) और एक प्रकार की लय (रिद्म) की रचना करना नहीं है ? प्राचीन कहानी की सोद्देश्यता पर विचार करते समय यह प्रश्न नहीं उठता और इसके पीछे निश्चित कारण है । फार्स्टर ने यह प्रश्न जब उठाया था तो उन्हें इस विवशता का बोध हुआ था कि वे जिन शब्दों का प्रयोग कथा-साहित्य के मूल्याँकन के क्षेत्र में कर रहे हैं वे सीधे साहित्य के नहीं, चित्रकला और संगीत के हैं । तब फार्स्टर ने संकेत किया था कि विकास के साथ सदा कलाएँ अपने प्रयोजन को व्यक्त करने वाले माध्यम अन्य कलाओं से ग्रहण करती हैं । आज भी, हम इन्हीं शब्दों की सहायता से कहानी के उद्देश्य से सम्बन्धित यह महत्वपूर्ण प्रश्न उठा रहे हैं, क्योंकि इनके उपयुक्त साहित्यिक पर्याय बन नहीं पाए हैं । अस्तु, प्रश्न यह है कि क्या कहानी का उद्देश्य एक विशेष प्रतिकृत (पैटर्न) और एक विशिष्ट लय (रिद्म) की रचना करना नहीं है ? कहानी में जब हम एक के बाद दूसरे अर्थ-स्तरों में प्रवेश करते हैं तो क्या हमें एक संगति (हारमनी) का बोध नहीं होता ? कथानक के विकास में अचानक किसी विपर्यय के उपस्थित होने से हमें क्या यह नहीं लगता कि कहानी की "लय" टूट रही है ? जिन कहानियों में वर्णित प्रसंग संवेदनात्मक प्रभाव की एकोन्मुखता के अन्तर्गत लय नहीं हो जाते, उनमें क्या हमें यह नहीं लगता कि

१– "क्या नाम कुछ समझ में नहीं आता कि डेरी और डेरी–फार्म में क्या सम्बन्ध ? डेरी तो कहते हैं उस छोटी-सी सादी सजिल्द पोथी को, जिस पर रोज–रोज का वृत्तान्त लिखा जाता है और जो प्रायः सभी महान पुरुष लिखा करते हैं और डेरी-फार्म उस स्थान को कहते हैं जहाँ गायें—भैंसें पाली जाती हैं और उनका दूध, मक्खन, घी तैयार किया जाता है । ऐसा मालूम होता है ये डेरी फार्म इसलिए नाम पड़ा कि जैसे डेरी में नित्य–प्रति का समाचार लिखा जाता है, उसी तरह वहाँ नित्य-प्रति दूध मक्खन बनता है । जो कुछ हो, मैंने अब डेरी लिखने का निश्चय कर लिया है ।" आदि । —कफन और शेष रचनायें : प्रेमचन्द : पृ० १११ ।

कहानी का प्रतिरूप (पैटर्न) ठीक-ठीक बन नहीं पाया ? यदि इन प्रश्नों की दृष्टि से हम कहानी की सोद्देश्यता की छानबीन करेंगे तो लगेगा कि प्रस्तुत युग की अधिकाँश कहानियों में लय का निर्वाह ठीक-ठीक हो नहीं पाया है। सुदर्शन की कहानी "स्त्री का हृदय" [1] में यह लय कई बार टूटती है। और, इस सीमा का कारण जानने के लिए हमें प्रस्तुत युग की कहानी की रचना-प्रक्रिया की सीमाओं का परीक्षण करना होगा।

ङ—उपलब्धियां और सीमाएं

आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का स्वरूप तथा सीमाएँ

प्रेमचन्द-युग की हिन्दी-कहानी की प्रमुख उपलब्धि है: आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का विकास। प्रेमचन्द से पूर्व भी हिन्दी-कहानी में एक प्रकार का आदर्शवाद विकसित हुआ था पर वह बहुत कुछ सुधारवाद तक सीमित था। कथानक और चरित्र-चित्रण, वातावरण तथा संवेदना के क्षेत्र में उसका सूक्ष्म कलात्मक उपयोग नहीं हो सका था। इस अभाव की सम्पूर्ति प्रेमचन्द-युग में ही आकर हुई। इस युग के समर्थ कहानीकारों ने अपने पूर्ववर्तियों से आगे आकर आदर्श एवं यथार्थ के बीच सामंजस्य स्थापित करने का यत्न किया। इसी दृष्टि से प्रेमचन्द ने अपने दृष्टिकोण को 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' [2] की संज्ञा दी और आदर्श को सजीव बनाने के लिए यथार्थ चित्रण-पद्धति के उपयोग का महत्व स्वीकार किया।

हिन्दी-कहानी का उद्भव जिन समस्याओं के साथ हुआ: उनमें प्रमुख थीं: अनमेल विवाह, दहेज, संयुक्त परिवार-प्रथा, वेश्यागमन, आभूषण-प्रेम, हिन्दू मुसलिम-संघर्ष, शोषक-शोषित-संघर्ष, जाति-वर्ण-व्यवस्था, स्वच्छन्द-प्रेम, सामाजिक अनाचार की समस्या—आदि। स्वयं प्रेमचन्द और उनसे प्रभावित कहानीकारों ने अपनी रचनाओं में इन समस्याओं को रूचिपूर्वक चित्रित किया है। इनका प्रयत्न रहा है कि समस्याओं के यथार्थ को कहानी की कथावस्तु में रूपायित करते हुए इनके लिए कोई आदर्शवादी समाधान दिया जाय। प्रेमचंद की 'अलग्योझा' आदि कहानियां इस प्रयत्न के लिए क्रियात्मक उदाहरण हैं।

१– सुदर्शन सुधा : सुदर्शन : पृ० १५६।

२– विविध प्रसंग : २ : संकलन और रूपान्तर : अमृतराय : पृ० ३५।

आदर्श और यथार्थ का संघर्ष प्राय: इस युग की कहानियों में दुविधा के स्तर पर स्थित दिखाई देता है। इसी दृष्टि से आधुनिक समीक्षक डा० नगेन्द्र ने प्रेमचंद के आदर्शवाद को 'व्यवहारिक आदर्शवाद' की संज्ञा दी है।[1] परन्तु आदर्श और यथार्थ की दुविधा के चलते इस युग के कहानीकारों की रचनाओं में कहानी का प्रमुख उद्देश्य : एकोन्मुख प्रभाव कीं सृष्टि : बाधित भी हुआ है। इस प्रक्रिया में अच्छी स्थिति तो प्रसाद जैसे भावमूलक कहानी लेखकों की ही है, जिन्होंने शुद्ध रूप से आदर्शवादी कहानियाँ लिखी हैं या अधिक से अधिक कहानी में मनोवैज्ञानिक अन्तर्द्वन्द्व को भावात्मक तीव्रता के साथ व्यक्त किया है। प्रसाद की 'आकाशदीप' तथा 'पुरस्कार' आदि कहानियाँ इसके लिये उपयुक्त प्रमाण हैं।

ध्यान देने की बात यह है कि प्रेमचन्द-युग का साहित्य इतना विस्तृत और वैविध्यपूर्ण है कि उसमें 'आदर्शवादी यथार्थ' एक ही, और समान रूप में नहीं प्रतिबिम्बित हुआ है। स्वयं प्रेमचन्द की कहानियों में आदर्शवादी, आदर्शोन्मुख यथार्थवादी और यथार्थवादी सभी स्तरों की कहानियाँ हैं। एकदम आरम्भ की कहानियों में शुद्ध आदर्शवाद की अवतारणा है। इनमें लेखक ने आदर्श मूल्यों की प्रतिष्ठा करने का यत्न किया है और कथानक, चरित्र तथा परिस्थिति को निर्जीव माध्यम बना लिया है। 'बड़े घर की बेटी' तथा 'पंचपरमेश्वर' ऐसी ही कहानियाँ है। कुछ आगे चलकर 'प्रेमप्रसून' तक आते-आते प्रेमचंद आदर्श और यथार्थ में सामंजस्य बिठाने लगे हैं।[2] 'आत्माराम' और 'लाल फीता' इसी धरातल की कहानियाँ हैं जिनमें कथावस्तु यथार्थमूलक है पर लक्ष्य आदर्शोन्मुख। आलोचकों ने ऐसी कहानियों के पीछे गाँधीवादी नैतिक संवेदना

१—'प्रेमचंद के आदर्शवाद का यही रूप है : वह रोमानी आदर्शवाद नहीं है, व्यावहारिक आदर्शवाद है। परन्तु यथार्थ नहीं है, क्योंकि यह आवश्यक नहीं है कि जो रोमानी नहीं है वह यथार्थ ही हो। हाँ, यथार्थ उनकी शैली का अंग अवश्य है, उनके वर्णन अत्यन्त यथार्थ होते हैं, उनमें कल्पना के रूपरंग न होकर वस्तु का यथातथ्य चित्रण रहता है। परन्तु दृष्टिकोण का निर्णय तो वर्णन की शैली से न करके लक्ष्य से करना चाहिए।"

—विचार और विवेचन · डा० नगेन्द्र : पृ० ९८

२—"हमने इन कहानियों में आदर्श को यथार्थ से मिलाने की चेष्टा की है।'

—प्रेम प्रसून : भूमिका : प्रेमचंद।

और प्रेरणा का अस्तित्व माना है।[1] इन कहानियों से आगे प्रेमचन्द ने ऐसी कहानियां भी लिखी हैं जिनमें आदर्श का स्वप्न भंग हो चुका है, शुद्ध यथार्थ या निर्मम यथार्थ का साकार रूप जिनमें विद्यमान है। 'कफन' प्रेमचन्द की ऐसी ही कहानी है जिसमें एक स्थिर निराशापूर्ण परिवेश हमारे समक्ष 'व्यंग' बन कर आता है।

फिर भी, प्रस्तुत युग की प्रतिनिधि प्रवृत्ति : आदर्शोन्मुख यथार्थ के चित्रण की है। कोरे यथार्थ के चित्रण के लिए जो निष्पृह भूमि निर्मित होनी चाहिए, वह यहाँ तक सम्पूर्ण निर्मित नहीं हो पायी है।

व्यावहारिक मनोविज्ञान का उपयोग

प्रस्तुत युग की अन्य महत्वपूर्ण उपलब्धि व्यावहारिक मनोविज्ञान का कहानियों में उपयोग है। भावमूलक कहानीकारों की कहानियों में भावना का सूक्ष्म भीतरी मनोविज्ञान ही चित्रित है, पर संख्या में, ऐसी कहानियां कम लिखी गई हैं, जिनमें सूक्ष्म भावनात्मक मनोविज्ञान का सार्थक उपयोग किया हो। प्रसाद अकेले कहानीकार हैं जो मानसिक अन्तर्द्वन्द्वों का तीव्र भावनात्मक चित्रण सम्पूर्ण सफलता के साथ कर सके हैं। प्रेमचन्द और उनके समकालीन अन्य कहानीकारों ने जिस मनोवैज्ञानिक अनुभूति की सत्यता को अपनी कहानियों का आधार बनाया है, वह व्यावहारिक मनोविज्ञान की अनुभूति ही है। इन लेखकों ने इस सहज व्यवहार–मनोविज्ञान का उपयोग कथानक के परिनिर्माण में, चरित्रों के निरूपण में, वातावरण एवं परिस्थिति के संयोजन में, संवाद-रचना में, भाषा और वर्णन पद्धति में, सामाजिक सम्बन्धों के निदर्शन में सर्वत्र ही किया है। जिन कहानियों में कथा-शिल्प जितना ही परिपक्व है, उनमें व्यावहारिक मनोविज्ञान का उतना ही सूक्ष्म कलात्मक उपयोग संभव हो सका है। प्रेमचन्द की 'पूस की रात" शीर्षक कहानी इसका श्रेष्ठ उदाहरण है। कहा जा सकता है कि प्रस्तुत युग की कहानी की उपलब्धि है : कथाकार और कृति के बीच एक दृढ़ अविभाज्य अपरिहार्य सम्बन्ध की प्राप्ति–जो सामाजिक यथार्थ के तीक्ष्ण बोध एवं व्यावहारिक मनोविज्ञान की गहरी अनुभूति का परिणाम होती है। सामाजिक प्रक्रिया की जितनी ही गहन अनुभूति

१–हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास · डा० लक्ष्मीनारायणलाल, पृ० १६९।

इस समय के जिन लेखकों में है, इतिहास-बोध जिनमें जितना ही सजीव है, व्यावहारिक सम्बन्धों के मनोविज्ञान में जिनका जितना ही प्रवेश है, वे इस सम्बन्ध को उतना ही पुष्ट बना सके है।

कल्पना–शक्ति का उपयोग

प्रस्तुत युग की कहानी की एक अन्य अर्थपूर्ण उपलब्धि है : कल्पना शक्ति का उपयोग-जिसके द्वारा रचनाकार की रचनात्मक-प्रतिभा (क्रिएटिव फैकल्टी) अपनी चरम पूर्णता प्राप्त करती है।[1] इस काल की कहानियों के अध्ययन से प्रत्यक्ष है कि सबकी कल्पना-शक्ति एक-सी नहीं है, अतः कुछ कहानियों में कल्पना अपना कार्य पूरा कर पायी है और कुछ में नहीं। पर असंदिग्ध रूप से, हिन्दी कहानी के विकास का यह पहला महत्वपूर्ण समय है जब कल्पना–शक्ति का सम्यक् और सार्थक उपयोग किया गया है। कल्पना की रचनात्मक शक्ति के उपयोग से इस काल की कहानियों का 'आस्वाद' पुरानी कहानी की तुलना में बहुत भिन्न है।

नवीन आधुनिक दृष्टि एवं उनकी संभावनाओं का स्वरूप

प्रस्तुत युग की कहानियों के अध्ययन से प्रत्यक्ष है, कि जिसे हम 'आधुनिकता' या 'आधुनिकता का बोध' कहते हैं, वह इनमें स्पष्ट नहीं है। कुछ लेखकों की कल्पना में (जैसे प्रसाद या प्रेमचंद में) उसका निवास हो भी, तो कहानियों में प्रायः वह नहीं है या अधिक से अधिक 'आधुनिकता' का पूर्वाभास ही इनमें कहीं—कहीं है।

विचारणीय है कि 'नवीन आधुनिकता' का 'बोध' क्या है और फिर, वे कौन-सी प्रमुख सीमायें हैं जो इस युग की कहानी में इस बोध को प्रत्यक्ष नहीं होने देतीं। अनुभवों के प्रति कृतिकार की सम्पूर्ण संलग्नता, अनुभवों की परस्पर सम्बद्धता, अनुभवों के यथार्थ्य का सम्पूर्ण बोध, परिवेश और परिवेश के सम्बन्धों की सम्यक चेतना, रचनात्मक प्रयोगशीलता, मानववाद में आस्था

१–'फाइनली इट इज इन द इमैजिनेटिव वर्क आफ द आर्टिस्ट दैट द क्रिए-टिव पावर आफ द ह्यूमन माइन्ड इट्स पर्फेक्शन''

—इन्ट्रोडक्शन टु फिलासोफी : जार्ज टामस ह्वाइट पैट्रिक : पृ० ४५७।

आधुनिकता के इन प्रमुख लक्षणों में से कौन से लक्षण इस युग के कहानी साहित्य में परिलक्षित होते हैं। क्या उनसे पृथक भी कोई महत्वपूर्ण लक्षण है जिसे आधुनिकता का गुणात्मक प्रतीक साना जा सकता है? साहित्य की कौन सी नई मर्यादाएं सही अर्थों में 'आधुनिक' कही जा सकती हैं क्या वे इस युग की कहानी में हैं?

मनुष्य की साँस्कृतिक एवं सामाजिक प्रक्रिया अपने युग-जीवन की परिस्थितियों के घात—प्रतिघात के प्रति उसके अनुभव और उसकी चिन्ता का परिणाम होती है। इसके अतिरिक्त मनुष्य की संवेदना वातावरण के अनुरूप बदलती ही रहती है। जैसे-जैसे परिवेश बदलता है, मानव-वृत्तियाँ भी बदलती हैं और जैसे-जैसे मनुष्य की संवेदन-क्षमता विकसित होती है, अनुभूति की, तथा अभिव्यक्ति की प्रक्रिया बदलती है। यह परिवर्तन कला और साहित्य में बड़े सूक्ष्म और अनायास रूप में होता है। जब परिवर्तन के चिह्न अधिक स्पष्ट हो जाते हैं तो उन्हें नयी संज्ञा देने की अपेक्षा प्रतीत होती है। प्रायः इन परिवर्तन-चिह्नों या लक्षणों को 'आधुनिक' कह कर काम चलाया जाता है।

यथार्थ के साक्षात्कार को कहानियों का विषय बनाकर प्रेमचन्द ने सबसे पहले कहानी को प्राचीन की परम्परागत रूढ़ि, अतिरंजक, घटनाचक्र, भावुकता और अन्य रीतियों से मुक्त करने का प्रयत्न किया तथा प्रसाद ने अन्तर्जगत् की समस्याओं का साक्षात्कार करते हुए कहानी को मानसिक अंत-र्द्वन्द्वों के सूक्ष्मातिसूक्ष्म चित्रण का सफल माध्यम बनाने का प्रयत्न किया। इस विवाद में पड़ना व्यर्थ होगा कि 'आधुनिकता' का सूत्रपात प्रेमचंद ने या प्रसाद ने सबसे पहले किया। यही मानना उचित है कि प्रेमचंद तथा प्रसाद की कहा-नियों ने मिलकर कहानी को आधुनिक परिस्थितियों तथा मनोदशाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। अन्यथा इस युग के अधिकाँश कहानीकार एक

१—'परिवेश का अर्थ सिर्फ भौतिक सामाजिक एवं यांत्रिक आवेष्टन ही नहीं है। हमारे युग के ज्ञान विज्ञान ब्रह्माण्ड और मनुष्य के इतिहास जो नया मानचित्र हमारे सम्मुख प्रस्तुत कर रहे हैं, वह भी हमारे सांस्कृतिक परिवेश का ही अंग हैं।'

—आधुनिक साहित्य बोध (परिसंवाद) : डा० देवराज, दक्षिण भारती, फरवरी, १९६०।

प्रकार की भावुकता से निकल कर दूसरी कोटि की भावुकता की परिधि में बन्द दिखाई देते हैं। जिन्होंने यथार्थ के ऊपरी धरातल को कला की चरम परिणति मान लिया, वे भी अपनी कहानियों को सच्ची आधुनिकता से सम्पृक्त नहीं कर सके। इस युग के सभी कहानीकारों के बीच प्रेमचंद का महत्व इस लिए भी है कि उन्होंने आधुनिक साहित्यिक मान्यताओं के निर्माण में अपना विशेष योग दिया और जीवन के यथार्थ के साक्षात्कार, कला और सत्यता के सच्चे सम्बन्ध, कला या साहित्य में सामाजिक परिस्थितियों के रूपान्तरण की समस्याओं की ओर रचनाकारों तथा पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया। मनुष्य और मनुष्य के अप्रतिहत जीवन-संघर्ष के सम्पूर्ण चित्र (इमेज) की सद्‌भावना भी प्रेमचंद ने सबसे पहले की।

प्राचीन कहानीकार घटनाओं में कहानी का आरम्भ और घटनाओं की कौतूहलपूर्ण परिणति में कहानी की समाप्ति करता था। प्रेमचन्द और प्रसाद की कहानियों ने घटनाओं के बीच से फूटती हुई अर्थपूर्ण संवेदना को चित्रित करने का यत्न किया। 'पूस की रात' (प्रेमचंद) और 'मधुआ (प्रसाद) आदि कहानियों में पहली बार इस धारणा की पुष्टि हुई कि 'घटना' कहानी के लिए साधन मात्र है, चरम साध्य नहीं। परिस्थिति ही नहीं, परिस्थिति में निहित अर्थ की अभिव्यक्ति की उत्सुकता ने प्रस्तुत युग की कहानी को एक ऐसी दिशा दी, जिसे नवीन या आधुनिक कहने में किसी को असहमति नहीं हो सकती। नवीन आधुनिकता का निवास आधुनिक मूल्यों की सम्पूर्ण निष्पत्ति में ही नहीं, आधुनिक मूल्यों की उत्सुकताभरी आरंभिक खोज में भी माना जाना चाहिए, ऐसा हमारा निश्चित मत है। आधुनिकता अन्ततः एक ऐतिहासिक परम्परा की परिणति और नवीन परम्परा का आरम्भ है। परम्परा का विलोम आधुनिकता नहीं, आधुनिकता का भ्रम है।

आधुनिकता के बोध की प्रत्यक्षता में बाधक सीमायें

प्रस्तुत युग की कहानी की कुछ निश्चित सीमाएं हैं जो आधुनिकता के सम्पूर्ण सजीव बोध के प्रतिफलित होने में बाधक हैं। मुख्यत: वे निम्नलिखित हैं :

क–अतिशय वर्णनात्मकता।

ख–घटना का सविशेष आग्रह।

ग–चरित्रों का वर्ग, जाति या प्रवृत्ति में सीमित होना।

घ–आधुनिक व्यक्ति-चित्रण प्रणाली का अभाव।

ङ–लक्ष्यात्मक आदर्शवाद।

इन सीमाओं के कारण प्रेमचंद-युग की कहानी में आधुनिकता का बोध सम्पूर्णतया निर्मित नहीं हो पाया। प्रेरणाओं के रूप में तो उसका अस्तित्व है, प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति के आन्दोलन के रूप में नहीं।

प्रेमचंद–युग के कहानी–साहित्य की स्थिति ही मध्यवर्तिनी है। उसके पहले प्राचीन आख्यान साहित्य की परम्पराएं ही हैं जिनमें घटनाओं का घटित होना ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण समझा जाता था और घटनाओं को नैतिक मूल्यों की अभिव्यक्ति के लिये याँत्रिक माध्यम समझा जाता था।[1] तथा, उसके बाद के आख्यान साहित्य में कहानी घटना से घटना-हेतु की ओर मुड़ी है और धीरे धीरे इस तरह सूक्ष्म हो जाती है कि उसकी नगण्यता का बोध सबसे पहले होता है। इस नए आख्यान साहित्य का सर्जक, लेखक, घटना के पीछे प्रेरक व्यक्ति के प्रयोजन को देखता है और घटना की आभ्यंतर प्रेरणाओं के विकास की 'लय' को कहानी में व्यक्त करना चाहता है। प्राचीन और नवीन आख्यान साहित्य के बीच का यह अन्तर बहुत महत्वपूर्ण है। आधुनिक कथाकार अज्ञेय के अनुसार वह 'बौद्धिक प्रवृत्ति की बहुत बड़ी क्रान्ति' को सूचित करता है।[2]

उपर्युक्त सन्दर्भ में प्रेमचन्द–युग की कहानी की स्थिति, जैसा हमने पहले कहा, मध्यवर्तिनी है। इस युग की अधिसंख्य कहानियों में घटना का

१–'यह नहीं कि (प्राचीन) कथाकार में नैतिक बोध नहीं होता था, या कि वह अपनी नैतिक मान्यताओं को प्रकट नहीं करता था, अपने स्वीकृत मूल्यों का इंगित नहीं देता था। इसके विपरीत वह पहले से कुछ अच्छे और कुछ बुरे पात्र लेकर चलता था-नैतिक मान्यतायें बिल्कुल स्पष्ट करके और कभी–कभी अन्त में निष्कर्ष के रूप में किसी नैतिक मूल्य को साग्रह दोहरा भी देता था, बल्कि कभी यह नैतिक स्थापना पहले कर दी जाती थी, और कथा केवल इसके दृष्टान्त के रूप में प्रस्तुत की जाती थी।'
सौन्दर्यबोध और शिवत्वबोध : अज्ञेय : कल्पना, मार्च १९३१, पृ० ३६।

२– 'आज का लेखक किसी भी घटना में कर्ताओं के उद्देश्यों को देखता है। 'अमुक हुआ' उसके लिए पर्याप्त नहीं है, 'अमुक किया गया' वह कहता है और क्यों किया गया' पर ही उसकी समूची जिज्ञासा केन्द्रित हो जाती है। कभी वह 'अमुक किया गया' की अवस्था तक भी नहीं जाता, केवल

बाहुल्य भी है और कुछ कहानियों में घटना–हेतु की ओर मुड़ने का प्रयत्न भी है। जहाँ यह प्रयत्न स्पष्ट है वहां सहज ही देखा जा सकता है कि कहानी की प्रक्रिया को आधुनिक स्तर पर प्रतिष्ठित करने की जागरूक उत्सुकता लेखक के मन में है। रचना के गुण–धर्म की विशेषताओं को समझने की उत्सुकता अपने आप में बड़ी मूल्यवान वस्तु है। रचना को एक निश्चित ऐतिहासिक सन्दर्भ में देखना, तथा उसे शुद्ध वर्तमान की चेतना में सीमित न कर लेना यदि सच्ची आधुनिकता है तो प्रेमचन्द युग में इसका उन्मेष स्पष्ट है। प्रेमचंद के वक्तव्यों और भूमिकाओं में 'कहानी' नामक रचनात्मक विधा की भूमि को समझने की व्याकुल चिन्ता दिखाई देती है। वे अपनी प्रगति के प्रति आश्वस्त होकर भी, उसका विश्लेषण करते हैं और परिवर्तन की दिशा को रचनात्मक स्तर पर समझना चाहते हैं।[1] कहानी की रचनात्मक संभावनाओं को प्रत्यक्ष करने वाले लेखकों में प्रेमचंद अग्रणी हैं। उन्होंने अपने समय में आधुनिकता के बोध की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति के लिए मार्ग बनाया और उनके समकालीन लेखकों ने, विशेष रूप से प्रसाद ने उस समय के कथा–शिल्प को अपने प्रयत्न से परिष्कृत किया। यह स्थिति ध्यान में रखने योग्य है कि कहानी के रचनात्मक मूल्यों का यह विवेक शास्त्रीय परिभाषाओं के सहारे विकसित न होकर रचनात्मक प्रयोग के सहारे ही विकसित हुआ। कहानी के रचनात्मक मूल्यों की स्वीकृति तत्कालीन लेखन में ही थी, आलोचना में नहीं। आगे चल कर आलोचकों ने इन रचनात्मक मूल्यों और संभावनाओं के प्रकाश में प्रेमचन्द-युग की कहानी के पुनर्परीक्षण की आवश्यकता का अनुभव किया।

निष्कर्ष

डा० देवराज ने अपने निबन्ध 'हिन्दी समीक्षा : एक दृष्टि' में छाया-वाद के लिए लिखा है कि वह "नैतिक धरातल पर जनतांत्रिक समत्व भावना

सूचित कर देता है कि 'अमुक अमुक कारण क्रियाशील हैं 'और,यह पाठक पर छोड़ देता है कि वह समझले कि परिणामतः 'क्या किया जायगा'।··· यह परिवर्तन साधारण या ऊपरी नहीं है, घटना–हेतु की ओर जाना, साहित्यकार की बौद्धिक प्रवृत्ति की बहुत बड़ी क्रान्ति का सूचक है।'

—सौन्दर्यबोध और शिवत्वबोध : अज्ञेय : कल्पना मार्च, १९६१ पृ० ३६–३७।

१–'इन थोड़े ही दिनों में हिन्दी गल्प-कला ने कितनी प्रौढ़ता प्राप्त कर ली है। पहले हमारे सामने केवल बंगला कहानियों का नमूना था। अब हम संसार के सभी प्रमुख गल्प लेखकों की रचनायें पढ़ते हैं, उन पर

और व्यक्ति की महत्वघोषणा का काव्य है, सामन्ती राजरानियों के चरित्र के स्थान पर साधारण मनुष्य के साधारण मनोभावों और आकांक्षाओं को प्रतिष्ठित करता है।[1] आकस्मिक नहीं है कि प्रेमचंद युग की कहानी भी 'रानी केतकी' के स्थान पर 'हल्कू' 'और' मधुवा' के साधारण मनोभावों और आकाँक्षाओं को चित्रित करती है । यह समानता आधुनिक छायावादी काव्य और प्रेमचन्द–युग की आधुनिक कहानी के बीच की एक सार्थक समानता है जो सामान जीवन-परिस्थितियों के उदय का परिणाम है ।

विचार और बहस करते हैं, उनके गुणदोष निकालते हैं और उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते । अब हिन्दी गल्प लेखकों में विषय, दृष्टिकोण और शैली का अलग–अलग विकास होने लगा है । कहानी जीवन के बहुत निकट आ गयी है । उसकी जमीन अब उतनी लम्बी चौड़ी नहीं है । उसमें कई रसों, कई चरित्रों और कई घटनाओं के लिए स्थान नहीं रहा । अब वह केवल एक प्रसंग का, आत्मा की एक झलक का सजीव स्पर्शी चित्रण है । इस एकतथ्यता ने उसमें प्रभाव, आकस्मिकता और तीव्रता भर दी है ।···वह चरित्रों के मनोभावों की व्याख्या करने नहीं बैठता, केवल उसकी तरफ इशारा कर देता है ।···अब हम कहानी का मूल्य उसके घटना–विन्यास से नहीं लगाते । हम चाहते हैं पात्रों की मनोगति स्वयं घटनाओं की सृष्टि करे ।···खुलासा यह कि गल्प का आधार अब घटना नहीं, मनोविज्ञान की अनुभूति है । आज लेखक कोई रोचक दृश्य देख कर कहानी लिखने नहीं बैठ जाता । उसका उद्देश्य स्थूल सौन्दर्य नहीं । वह तो कोई प्रेरणा चाहता है जिसमें सौंदर्य की झलक हो और इसके द्वारा वह पाठक की सुन्दर भावनाओं को स्पर्श कर सके ।'—मानसरोवर : प्रथम भाग : प्राक्कथन : प्रेमचन्द : पृ० १०-११।

१ –आलोचना : अप्रैल, १९५२–पृ० १० ।

४

प्रेमचंदोत्तर युग की कहानी

क—आधुनिक बोध का विकास

मनुष्य और उसके जीवित अनुभव क्षणों के बीच की सम्बन्ध-भावना की कहानी उत्तर-प्रेमचन्द युग की कहानी है। इस काल के कृतिकार परि-स्थितियों के प्रति जागरूक ही नहीं हैं, वरन आत्मचेतस् भी हैं। यह आत्मचेतना प्रकारान्तर से रचनात्मक प्रक्रिया के प्रति जागरूकता का लक्षण ही है। प्रस्तुत युग की कहानी परम्परागत (कन्वेन्शनल) कहानी की परिभाषा से मुक्त होकर कहानी की रचनात्मक संभावनाओं का विकास कर सकी है और उसका वैशिष्ट्य यह है कि उसका यथार्थ-बोध बाह्य परिस्थितियों के साक्ष्य पर नहीं, कृतिकारों के निजी अनुभवों के साक्ष्य पर आधारित है। उत्तर प्रेमचन्द–युग की आधुनिक कहानी रचना और अवधारणा में गहरी समान-धर्मिता स्थापित करती है और इस सत्य में पाठक की आस्था दृढ़ करती है कि महान् कला मनुष्य की बाहरी अनुभूतियों के दबाव और उसकी स्पष्ट प्रचेष्टा के बीच के स्थिर संसर्ग पर आधारित होती है।[1]

आधुनिक समस्याओं और स्थितियों के यथार्थ का विश्लेषण और जीवन के रचनात्मक मूल्यों की स्थापना का प्रयास उत्तर प्रेमचंद–युग की आधुनिक कहानी में स्पष्टतः परिलक्षित होता है। आधुनिक कहानियों में

१– "आल ग्रेट आर्ट (ऐण्ड, फार दैट मैटर, एव्री ह्यूमन आर्डर स्टेबिलाइज्ड बाई ट्रेडीशन) रेस्ट्स आन ए फन्डामेन्टली फिक्स्ड करेस्पान्डेन्स बिटवीन द इम्पैक्ट आफ एक्सटर्नल एक्सपीरियन्स आन मैन ऐण्ड मैन्स आर्टिकुलेट ऐन्स्वर्स।" –द डिसइन हेरिटेड माइन्ड : हेलर : पृ० १७२।

व्यक्त चरित्रों के बीच एक मानवीय सम्बन्ध सहज ही देखा जा सकता है जो परिवेश के यथार्थ और उसकी निजी अनुभूति-स्तर पर घटित, प्रतिक्रिया को एक ही स्तर पर उपलब्ध करता है, [1] पर आधुनिक कहानीकार इस जटिल संघर्ष-चेतना की सीमाओं से अपरिचित नहीं है। वह चरित्र की जीवन-प्रक्रिया से रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करते हुए उसके अनुभूति-क्षणों को स्वयं जीकर सविशेष रचनात्मक मूल्यों की अद्वितीय खोज में संलग्न होता है। यही संलग्नता आधुनिक कहानीकार की जागरूक रचनात्मक प्रक्रिया की आधार–भूमि है।

इलियट ने "कविता" में व्यक्त अनुभवों की चर्चा करते हुए कहा है कि एक कविता की अनुभूति, एक साथ ही एक विशेष–क्षण और एक जीवन–प्रक्रिया की अनुभूति होती है। [2] कहा जा सकता है कि आधुनिक कहानी में व्यक्त अनुभव भी एक साथ ही एक विशेष-क्षण और एक सम्पूर्ण जीवन-प्रक्रिया का संश्लिष्ट अनुभव होता है। यहीं यह संकेत करना आवश्यक जान पड़ता है कि उत्तर-प्रेमचन्द-युग की कहानी में व्यक्त आधुनिक भावबोध के विकास के पीछे अनेक ऐतिहासिक घटनाओं की प्रतिक्रिया कार्य करती रही है। बंगाल का अकाल, द्वितीय महायुद्ध, भारत का विभाजन, साम्प्रदायिक संघर्ष, अंग्रेजी साम्राज्यवाद का अन्त, राष्ट्रीय स्वाधीनता की प्राप्ति, महात्मा गाँधी की मृत्यु–एक के बाद एक इन घटनाओं की प्रतिक्रिया ने आधुनिक मनुष्य को अत्यधिक संवेदनशील बना दिया और फलतः आधुनिक मनुष्य के भावबोध का विकास एक साथ ही अनेक और प्रायः परस्पर विरोधी दिशाओं में हुआ। प्रस्तुत युग की कहानी में, एक ओर उच्चतर अहम् के

१– "द राइटर मस्ट बी अवेयर आफ द लिमिट्स आफ द कान्शसनेस ही इज प्रोजेक्टिग : ही मस्ट नाट मेक ए लिमिटेड माइन्ड टू पर्सेप्टिव, नार इम्पोज लिमिटेशन्स ह्वेयर देयर इज अबन्डेन्ट कपैसिटी फार पर्सेप्शन।"

—द साइकाँलोजिकल नावेल : १९००-१९५०

-लियोन इडेल, पृ० ५१-५२

२– "द एक्सपीरिएन्स आफ ए पोएम इज द इक्सपीरियन्स बोथ आफ ए मोमेन्ट ऐण्ड ए लाइफटाइम। इट इज वेरी मच लाइक अवर इन्टेन्सर एक्सपीरियन्सेज आफ अदर ह्यूमन बीइंग्ज।"

सेलेक्टेड प्रोज, टी० एस० इलियट, पृ० ४८।

अन्तर्ज्ञान (इन्ट्यूशन) के अभिव्यक्त होने में कहानी की रचनात्मक प्रेरणा के केन्द्रबिन्दु को अन्तर्हित माना गया,[1] तो दूसरी ओर कहानी को सामाजिक संघर्ष और प्रतिक्रिया की अभिव्यक्ति का साधन माना गया तथा समाज सम्बन्धों की आधुनिक वास्तविकता को ही व्यक्ति के मनोऽवरोध का मुख्य कारण स्वीकार किया गया। इस युग के साहित्य को संक्रान्ति युग[2] की संज्ञा इसी अनिश्चयपूर्ण द्वन्द्व के कारण प्राप्त हुई है। यह युग सामाजिक संगठन, राज्य व्यवस्था, नीति–आचार, पाप और पुण्य, श्लील और अश्लील, वस्तु और शैली–सभी दिशाओं में घोर परिवर्तन का युग कहा गया है। निश्चय ही, भौतिक जीवन पर यान्त्रिक संगठन का और आन्तरिक जीवन पर इस तीव्र परिवर्तन का दुहरा दबाव आधुनिक परिस्थितियों के भोक्ता "व्यक्ति" के मन पर पड़ा है जो इस युग का केन्द्रीय विषय है।

ख– विभिन्न प्रवृत्तियाँ : कहानी लेखकों के कृतित्व में उनका विकास तथा प्रेरणाओं के स्रोत

पिछले युग (प्रेमचन्द-युग) की हिन्दी–कहानी के सर्वेक्षण से सहज ही ज्ञात होता है कि प्रेमचन्द और प्रसाद तत्कालीन हिन्दी कहानी की क्रमशः यथार्थपरक और भावात्मक प्रवृत्तियों के प्रतिनिधि हैं। शिवदान सिंह चौहान के अनुसार "हिन्दी में आधुनिक कहानी का सूत्रपात और विकास करने का श्रेय" इन लेखकों को ही है।[3] निश्चय ही, इन लेखकों का प्रभाव तत्कालीन कहानी के भावात्मक विन्यास और रूपगठन पर सबसे अधिक है। प्रसाद का कहानीकार कल्पना, आदर्श और मनोविज्ञान से अनुप्राणित होता रहा है। परिणामस्वरूप उनकी कहानियों में भावमूलक कथानक, चरित्रगत अन्तर्द्वन्द्व, परिस्थिति–मनोविज्ञान के अनुसार वातावरण की परिकल्पना और तदनुकूल अभिजात भाषा का निर्माण–आदि विशेषताएँ स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती हैं। चतुरसेन शास्त्री, रायकृष्णदास, वाचस्पति पाठक, विनोदशंकर व्यास

१– कहानी क्यों लिखी जाती है! प्रभाकर माचवे : आधुनिक हिन्दी साहित्य सं० स० ही० वात्स्यायन : पृ० ७८।

२– परिस्थिति और साहित्यकार : स० ही० वात्स्यायन –आधुनिक हिन्दी साहित्य सं० स० ही० वात्स्यायन : पृ० २५।

३– हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष : शिवदान सिंह चौहान : पृ० १७७।

तथा किसी अंश तक "उग्र" की कहानियों में इन विशेषताओं का प्रभाव देखा जा सकता है। प्रसाद की तुलना में प्रेमचन्द की कहानियाँ यथार्थ और मनोविज्ञान के सहज सामंजस्य पर आधारित हैं और इस कारण उनकी कहानियों में कथानक सहज, चरित्र वास्तविक और प्रयोजन–सूत्र स्पष्ट होते हैं। और प्रेमचन्द के रचनात्मक दृष्टिकोण और उनके रचनात्मक विधान से सम्बन्धित ये विशेषताएँ विश्वम्भरनाथ शर्मा "कौशिक", ज्वालादत्त शर्मा, सुदर्शन, गोविन्दवल्लभ पंत, राधिकारमण प्रसाद सिंह, जी० पी० श्रीवास्तव तथा वृन्दावनलाल वर्मा आदि की कहानियों में देखी जा सकती हैं। इस स्थिति की ओर यहाँ दृष्टिपात करने की आवश्यकता इसलिए पड़ती है कि प्रसाद और प्रेमचन्द के स्तर का कोई कहानीकार, जो सम्पूर्णयुग पर छा जाने की सामर्थ्य रखता हो, आधुनिक युग में दिखाई नहीं पड़ता। प्रेमचंदोत्तर आधुनिक कहानीमें न तो समस्याएँ और प्रवृत्तियां ही इतनी स्पष्ट और जटिलता रहित हैं, जितनी प्रेमचन्द युग में थीं, न उनकी प्रतिक्रिया ही इतनी सीधी और सम है, जितनी प्रेमचन्द-युग के कृतिकारों में थी। अतः आधुनिक कहानी के क्षितिज पर जितने प्रमुख कहानीकार दिखाई देते हैं, सभी का अपना-अपना व्यक्तित्व है, सभी एक विशेष अनुभव–प्रक्रिया को उपलब्ध करना चाहते हैं और परिणामतः सभी कथा-शिल्प की समस्याओं का समाधान भिन्न-भिन्न स्तरों पर ढूंढ़ते हैं। प्रेमचन्द युग का कहानीकार जहाँ जीवन के यथार्थ को समग्रता में चित्रित करने के लिए इसकी चिन्ता करता था कि किन तत्वों के उपयोग या सामंजस्य से कोई कथा-कृति श्रेष्ठ सफलता को उपलब्ध कर सकती है, वहाँ परवर्ती विकास-युग का आधुनिक कहानीकार इसकी परीक्षा करना चाहता है कि मनुष्य–मन के अनुभवों के आभ्यंतर सम्बन्धों को अभिव्यक्त करनेवाली कहानी किन तत्वों को छोड़ कर अधिक सार्थक और रचनात्मक शिल्प–स्तर को प्राप्त कर सकती है। प्रेमचन्द–युग के कहानीलेखक की तुलना में आगे के आधुनिक कहानीकार की विचारधारा के आयाम भी विविध हैं अतः यह सोचना कि आधुनिक युग का कोई एक कहानीलेखक किसी एक विशेष प्रवृत्ति का कहानीकार है, शुद्ध भ्रामक है।[1]

१– "जिस तरह युगीन प्रवृत्तियों ने हमारे सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन को प्रभावित करके हमारी नैतिक मान्यताओं, सामाजिक प्रश्नों और उनके निर्णयों में आमूल परिवर्तन ला खड़ा किया, उसी तरह उन प्रवृत्तियों ने कहानीकारों के मापदंड और दृष्टिकोण में भी अपूर्व क्रान्ति

जैसा हमने पहले संकेत किया है, प्रेमचन्दोत्तर युग की आधुनिक कहानी में प्रतिबिम्बित प्रवृत्तियों के विश्लेषण से पूर्व यह समझ लेना आवश्यक है कि इस युग की आधुनिक कहानी की रचनात्मक प्रक्रिया एक जटिल-प्रक्रिया है- जिसके निर्माण में, दर्शन, मनोविज्ञान, समाजविज्ञान, राजनीति आदि बोध के विभिन्न पक्षों का महत्वपूर्ण योग रहा है तथा इस युग के कहानीकार के लिए "घटना" या 'वस्तु' कच्चे माल की तरह नहीं रही है, जिसे वह कहीं से उठा सके और कहानी में आरोपित कर सके। जैनेन्द्र जब संकेत करते हैं, कि समाधान ढूँढ़ना और प्रस्तुत करना उनकी कहानियों का इष्ट नहीं है, [1] या अज्ञेय जब छायाओं या लक्षणों के आधार पर जीवन के किसी गूढ़ रहस्य-मय सत्य की अभिव्यक्ति पर बल देते हैं–[2] तो आधुनिक कहानी की रचना प्रक्रिया की आन्तरिक जटिलता की ओर ही पाठक का ध्यान आकृष्ट करना चाहते हैं। रचना-प्रक्रिया सम्बन्धी यह जटिलता नयी परिस्थितियों के उदय के साथ, तथा अनुभूति-दिगन्तों के जटिल गहन विस्तार के कारण ही, इस युग की कहानी में आयी है और यद्यपि वह अन्य समकालीन कलात्मक रूपों

की। युग का जितना बौद्धिक दृष्टिकोण जीवन के प्रति हुआ, उतनी ही बौद्धिकता कहानी की परिभाषा के रचना-कौशल और शिल्प–विधान के प्रति प्रकट हुई। अतएव इस युग की कहानी–कला में अश्चर्यजनक वैविध्य उपस्थित हुआ।" –हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास

—डा० लक्ष्मीनारायणलाल : पृ० २९१।

१– "मैं मानता हूँ कि मन में शंका उद्वेलन पैदा करना भी मेरी कहानियों का एक इष्ट है। आपके मन में शंका है, आप स्वयं उससे छुट्टी पाइए। मदद मुझसे जितनी चाहे लीजिए, पर समाधान मत लीजिए।"

–एक रात-जैनेन्द्र-प्रस्तावना।

२– "जो कहानी केवल कहानी भर होती है, उसे ऐसे लिखना कि वह सच जान पड़े, सुगम होता है। किन्तु जो कहानी जीवन के किसी गूढ़ रहस्यमय सत्य को दिखाने के लिए लिखी जाय उसे ऐसा रूप देना कठिन ही नहीं, असम्भव ही है। जीवन के सत्य छिपे रहना ही पसन्द करते हैं। प्रत्यक्ष नहीं करें, छिपा ही रहने दें जो छायाओं और लक्षणों के आधार पर उसका आकार विशिष्ट कर दें—...।'

–अलिखित कहानी : परम्परा : अज्ञेय।

में भी उपस्थिति है, पर इतने स्पष्ट रूप में नहीं, कि उसे आधारभूत विशेषता मानकर, उसकी भूमि पर मूल्याँकन का प्रयास किया जाए। युग तथा वातावरण का परिप्रेक्ष्य बदल जाने से हमारे सम्वेदनाओं और हमारे रागात्मक सम्बन्धों में जो परिवर्तन आता है, वही रचनात्मक सृजन की स्वाभाविक प्रक्रिया में जटिलता की सृष्टि करता है। प्रेमचन्दोत्तर युग के, आधुनिक बोध सम्पन्न कहानी लेखक को रचना-प्रक्रिया की इस संश्लिष्ट जटिलता का साक्षात्कार करते हुए कहानी के रचना-यंत्र को जटिल होने से बचाने की चिन्ता भी रही है, जिससे परिचालित होकर प्रायः लेखकों ने उन मनोवैज्ञानिक स्थितियों और सन्दर्भों को अधिक पारदर्शी रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है, जिनमें कथा, चरित्र, वातावरण और संवेदन आदि कहानी के विविध उपादान एक दूसरे को किसी बिन्दु पर काटते तथा एक दूसरे से उलझते हुए विकसित होते हैं। जैनेन्द्र तथा अज्ञेय की कतिपय कहानियों में, रचना और अवधारणा सम्बन्धी आन्तरिक जटिल विरोध का समाधान ढूँढ़ने की दिशा में रचनात्मक शिल्प सम्बन्धी कुछ बड़े सार्थक प्रयोग किए गए हैं। जैनेन्द्र ने "एक रात' 'शीर्षक कहानी में मुख्य चरित्र के अवचेतन में घटित होने वाले तीव्रतर संघर्ष-द्वन्द्वों को उद्‌घाटित करने के लिए जिस संकेत-मूलक पद्धति का आश्रय ग्रहण किया है, [1] वह इस दिशा में एक निश्चित् और अर्थपूर्ण संकेत है। अस्तु, रचना-प्रक्रिया के प्रति सजगता उत्तर-प्रेमचन्द युग की आधुनिक कहानी की एक महत्वपूर्ण सार्थक उपलब्धि है। इस युग का कहानी लेखक

१– 'अन्त में टहलते-टहलते वह मेज पर आ बैठा और पेन से ब्लाटिंग पैड पर लिखा-लिखा कहें कि खींचा-

स्वराज इण्डिपेन्डेन्स

लव मैरिज

....गाड मेड लव।

डिड गाड मैक मैरिज आल सो ? नो दि मैन डिड आफ इट इण्ड आई से ए लव इज नाट चूज़। इट इज नेवर डैट। नेवर, नेवर, ! आह ! हाउ स्लैविश आफ मी दस अनविलिंगली टू यूज इंगलिश मस्ट राइट हिन्दी ! हिन्दी, हिन्दी। हमारा देश, हिंदुस्तानी है, हम हिन्दी हमारी भाषा, हिन्दी हमारा बाना, भाइयों : हरी पर २३ मील सबेरे की गाड़ी में नहीं जा सकता।'—एक रात : जैनेन्द्र : पृ० १२।

इस दिशा में इतना सतर्क है कि वह आधुनिक संवेदनाओं के कवि की भांति एक कहानी से दूसरी कहानी की ओर बढ़ते हुए, मानों एक शिल्प से दूसरे शिल्प की ओर प्रस्थान करना चाहता है। यही कारण है कि दर्शन, मनोविज्ञान, समाजवाद और यौनवाद, जीवन-बोध की इन सभी प्रवृत्तियों के साथ आधुनिक कहानीकार का सम्बन्ध एक सम्वेदनप्रवण ग्रहीता का सम्बन्ध है।

आधुनिक कहानीलेखक जैनेन्द्र की कहानियों के अध्ययन से प्रत्यक्ष होता है कि आधुनिक रचनात्मक संवेदना के निर्माण में दर्शन और मनोविज्ञान की सूक्ष्म पद्धतियों का भी योग है। जैनेन्द्र जब अपनी कहानियों में "अलौकिक आत्मा" की खोज पर बल देते हैं [1] या "रचना" में कहीं ठहर कर जीवन और मृत्यु की गूढ़ समस्याओं पर कोई दार्शनिक टिप्पणी देते हैं [2] तो उनके प्रयोजन की आधारभूमि छिपी नहीं रहती। प्रत्यक्ष है कि दर्शन अर्थात् व्यावहारिक जीवन-दर्शन के योग से रचनाकार अपने अनुभव की सनातनता पर बल देना चाहता है : दार्शनिक बोध अनुभव-प्रक्रिया को गहन तो बनाता ही है। राल्फ फाक्स तो मानते हैं कि यही

१– "मैं किसी ऐसे व्यक्ति को नहीं जानता जो मात्र "लौकिक" हो (और) जो सम्पूर्णता से शारीरिक धरातल पर ही रहता हो। सबके भीतर हृदय है जो सपने लेता है। सबके भीतर आत्मा है जो जगती रहती हैं, जिसे शस्त्र छूता नहीं, आग जलाती नहीं। सबके भीतर वह है जो अलौकिक है।'

–भूमिका, एक रात, जैनेन्द्र, पृ० ४–५।

२– "हमारे विद्वान् पाठकों में से कोई होता तो उन मूर्खों को समझाता–" यह संसार क्षणभंगुर है। इसमें दुःख क्या और सुख क्या? जो जिससे बनाया है वह उसी में लय हो जाता है–इसमें शोक उद्वेग की क्या बात है ? यह संसार जल का बुदबुदा है...री मूर्खा लड़की तू समझ ! सब ब्रह्माण्ड ब्रह्म का है और उसी में लीन हो जाएगा। रेत का भाड़ क्षणिक था, रेत में मिल गया। इस पर खेद मत कर। इससे शिक्षा ले। जिसने लातमार कर तोड़ा है वह तो केवल परमात्मा का साधन मात्र है।'

–जैनेन्द्र की श्रेष्ठ कहानियां–वातायन–पृ० १३-१४।

बोध पहली श्रेणी के कथाकार को दूसरी श्रेणी के कथाकार से पृथक् करता है।[1]

मनोविज्ञान, वह दूसरा महत्वपूर्ण बोध-क्षेत्र है जिसने प्रस्तुत युग की रचनात्मक सम्वेदनाओं को प्रभावित किया है, तथा किसी सीमा तक आक्रांत भी किया है। प्रेमचंद-युग में कहानी पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव इतना ही था कि कहानी-लेखक चरित्रों के मनोवैज्ञानिक सम्बन्धों को अपने व्यावहारिक बोध के प्रकाश में उद्घाटित करने का प्रयास करता था। प्रेमचंद की कहानी 'बूढ़ी काकी" की मनोवैज्ञानिकता इसी प्रयास में सीमिति है। पर, आधुनिक युग में आकर, मनोविश्लेषिक पद्धति का प्रभाव कहानी के भावबोध और रूप-विधि में अधिक स्पष्ट, और निश्चय ही सर्वथा भिन्न रूप में दिखाई देता है।

मनोविश्लेषणवादी विचारकों की मान्यतायें

फ्रायड पहले योरोपीय दार्शनिक हैं जिन्होंने मनोजगत् के रहस्यों और सन्दर्भों को व्याख्यासापेक्ष बनाया और इस दिशा में एक गहन शोध का स्तर प्रस्तुत किया। फ्रायड द्वारा प्रवर्तित मनोविश्लेषण-सिद्धान्त के अनु-सार सामाजिक प्रतिबन्धों एवं रीतियों से सीमित अचेतन मन अपनी कुण्ठाओं का, कलाकृतियों की सृष्टि के रूप में उदात्तीकरण (सबलिमेशन) करता है। फ्रायड ने यौन-समस्या को सर्वाधिक महत्व दिया और प्रतिपादित किया कि यौन कुण्ठाओं के दबाव से व्यक्तित्व अवान्तर दिशाओं में अतिक्रमण कर सकता है और व्यक्तिचेतना सम्पूर्ण टूट कर अन्तर्मुख हो सकती है। अवचेतन मन की विभिन्न सीमाओं[2] को आविष्कृत कर फ्रायड ने एक विलक्षण

१—"इट इज ट्रू दैट नावेल—राइटिंग इज ए फिलसाफिक अकुपेशन द ग्रेट नावेल आफ द वर्ल्ड............आर ग्रेट प्रिसाइजली बिकाज दे हैव दिस क्वालिटी आफ थाट बिहाइण्ड देम...........इट इज दिस क्वालिटी ह्विच डिस्टिंग्विशेज द फर्स्ट रेट फ्राम द सेकेण्ड रेट इन फिक्शन।"
—द नावेल ऐण्ड द पिपुल : राल्फ फाक्स : पृ० ९१—९२

२—"फ्रायड ने यद्यपि अवचेतन मन की सीमा को अत्यन्त संकुचित रूप में देखा था, तथापि उस समय अवचेतन मन का वह सीमित रूप भी एक नया आविष्कार था और सीमित रूप की शक्ति का जो परिचय उसने

स्वप्न-विज्ञान[1] को जन्म दिया। मानवीय व्यवहार में फ्रायड ने प्रेमाशक्ति को प्रधानता दी, और उसे भी यौनभावना से संक्रमित बताया। आगे फ्रायड और युंग ने प्रणय-बोध के विकास की अन्य दिशाओं की उपयोगिता और स्वाभाविकता को भी स्वीकार किया।[2] अल्फ्रेड एडलर ने फ्रायड द्वारा प्रतिपादित मनोविलेषण शास्त्र में हीन-भावना की एक नयी धारणा की वृद्धि की और उसे ही मानवीय आचरण का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष घोषित किया। एडलर के अनुसार, हमारी सारी मनोवैज्ञानिक समझ व्यर्थ है, जब तक हम मनुष्य को एक 'इकाई' न मानें। एडलर के मनोवैज्ञानिक-सिद्धान्त के अनुसार 'हीनता' और उच्चता की भावनायें वे सामान्य स्थितियाँ हैं जो मानव व्यवहार को अधिकृत और अनुशासित करतीं हैं।"[3] युंग ने उपर्युक्त शास्त्र में अन्तर्मुखी एवं बहिर्मुखी प्रवृत्तियों के अध्ययन की एक नयी

दिया वह भौतिकता में डूबे हुये सभ्य समाज के लिए इस कदर भयानक सिद्ध हुआ कि चारों ओर से आतङ्कजनित पुकारें सुनाई देने लगीं।"

—देखा परखा : इलाचन्द्र जोशी : पृ० ३७।

१—"..................फ्रायड ने एक निराले ही स्वप्न विज्ञान का निर्माण कर डाला। उसने विश्लेषण द्वारा यह सिद्ध किया कि प्रकट रूप में अर्थहीन लगने वाले स्वप्न भी विशिष्ट अर्थ रखते हैं और अधिकांश स्वप्न दमित यौन-भावना के साकार प्रतीक होते हैं।"

—वही— पृ० ३८

२—"फ्रायड ऐण्ड युंग, इन देयर रिसर्चेज इन्टू द नालेज आफ ह्यूमन बिहैवियर ऐण्ड मोर स्पेशली आफ ह्यूमन न्यूरोसिस, सीम टु हैव बिगन बाइ डिफाइनिंग सेक्सुएल लिबिडो आर इनर्जी समह्वाट इन द नैरोवर सेन्स, बट हैव रैपिडली एक्सपैण्डेड देयर डिफनिश अन्टिल इट इन्क्लूड्स एव्री मैनिफेस्टेशन आफ लव, अफेक्शन आर अट्रैक्शन नोन टु द ह्यूमन रेस। दस बाइ सेक्सुएल इज नाट अण्डर स्टुड द फण्डामेंटल काज आफ एव्री आउटगोइंग आफ द इण्डिविजुएल टुवर्ड्स द साब्जेक्ट।"

——साइकोएनालिसिस फार नार्मल पिपुल : कास्टर : पृ० १६८-१६९

३—द साइन्स आफ लीविंग : एडलर : पृ० ६५।

विचार-सरणि की अभिवृद्धि की और सामूहिक अचेतनता की धारणा पर बल दिया।[1]

कुल मिलाकर मनोविश्लेणवादी दार्शनिकों ने मानसिक जगत् की रहस्यपूर्ण समस्याओं का अध्ययन करते हुये जो मान्यताएँ विकसित कीं, उनमें मुख्य मान्यता यह थी, कि मनुष्य का एक निजी, आन्तरिक (अचेतन) जगत् भी है और वही, उसके समस्त क्रियाकलापों और जीवनपद्धतियों को आन्दोलित भी करता है। इस मान्यता ने आधुनिक कथा-साहित्य को चरित्र-विश्लेषण की एक सर्वथा नयी पद्धति दी और इसने कहानी के बोध और विधि को समानतः प्रभावित किया। मनोविश्लेषणात्मक पद्धति का कहानी की रचनात्मक प्रक्रिया में उपयोग करने वाले आधुनिक लेखकों में जैनेन्द्र, अज्ञेय, उपेन्द्रनाथ 'अश्क' तथा इलाचन्द्र जोशी के नाम प्रमुख हैं। इलाचन्द्र जोशी की मान्यता[2] कि अन्तर्जीवन-चक्र पर आधारित बाह्य जीवन-चित्रण ही सफल हो सकता है, इस वर्ग के प्रायः सभी लेखकों की रचनात्मक धारणाओं का परिचायक है।

मनोविश्लेषणशास्त्र और मनोवैज्ञानिक रचनात्मक लेखन के प्रभाव : एक सन्देह

जहाँ हम उत्तर प्रेमचन्द-युग के कहानीकारों पर मनोविश्लेषण सिद्धान्त के प्रवर्तकों का प्रभाव देखते और अनुभव करते हैं, वहीं हमारे मन में एक हल्के सन्देह का भी उदय होता है। आधुनिक कथा-साहित्य की अति-मनोवैज्ञानिकता को लक्ष्य कर मनोविश्लेषण शास्त्र के प्रतिपादक दार्शनिकों का महत्वपूर्ण प्रभाव कहानीकारों में जब कि प्रायः और तत्पर भाव से

१—डिक्शनरी आफ वर्ल्ड लिट्रेचर : शिप्ले : पृ० ४६१।

२—"उसी बाह्य जीवन-चक्र का चित्रण सच्ची सफलता पा सकता है जो अन्तर्जीवन-चक्र पर आधारित हो, उसी प्रकार अन्तर्जीवन की वही प्रगति श्रेयोन्मुखी हो सकती है जो बाह्य जीवन की प्रगति से निश्चित सम्बन्ध स्थापित किये हो।"

—विवेचना : (आधुनिक साहित्य में मनोविज्ञान) : इलाचन्द्र जोशी : पृ० ११७।

सामयिक आलोचना में बताया जाता है, वहीं प्रथम महायुद्ध के बाद के कुछ अधिक संवेदनशील और अधिक मनोवैज्ञानिक यथार्थ के बोध से सम्पन्न विश्व-कथाकारों की महत्वपूर्ण देन की उपेक्षा कर दी जाती है। आज उनके प्रभाव के पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता है। हमारी धारणा है कि प्रेमचन्दोत्तर आधुनिक कहानी में जो अधिक मनोवैज्ञानिक शिल्प विकसित हुआ है कि उसके निर्माण में जेम्स ज्वायस, वर्जीनिया बुल्फ और डोरोथी रिचर्डसन् जैसे कथाकारों का कहीं अधिक योग है जिनके कृतित्व में पहली बार मानसिक व्यापारों, इन्द्रिय बोधों और चरित्रों के आभ्यान्तर सम्बन्धों की अधिक सूक्ष्म उद्भावना सम्भव हो सकी। १९१३–१५ के बीच इन लेखकों के प्रयत्न से जिस आधुनिक मनोवैज्ञानिक कथासाहित्य की सर्जना हुई, उसमें पहली बार मानसिक जगत् के चेतन-अचेतन व्यापारों को रचनात्मक स्तर पर अनुभव और अभिव्यक्ति का विषय बनाया गया। इन लेखकों ने [1] अचानक ही कथा-साहित्य को बाह्य यथार्थ से भीतरी यथार्थ की ओर मोड़ दिया। इनकी कृतियों का अस्वाद आत्मपरक था और इनके अन्तर्गत चेतना से सूक्ष्माति-सूक्ष्म व्यापारों को सजीव रूप में चित्रित किया गया था। कथाकार की कृति से तट-स्थता, घटना की नगण्यता, सूक्ष्म कल्पना-शक्ति का आभ्यन्तरिक अनुभवों के चित्रण की दिशा में उपयोग, कथा में समय और स्थान की स्थूल अवधारणा के प्रति विद्रोह, युग की अधिक गहरी और अन्वेषणशील आभ्यन्तरता का आभास, कहानी के आधुनिक रचना-शिल्प के इन सभी विशिष्ट गुणों का मूल उपर्युक्त कथाकारों के कृतित्व में ही है। आज इस प्रभाव के पुनर्मूल्यांकन की अपेक्षा है।

समाजवाद और साम्यवाद

उत्तर–प्रेमचन्द युग के संक्रमणशील कहानी-साहित्य का उल्लेख योग्य प्रवृत्तियों के कहानी लेखकों में सर्वश्री राहुल सांकृत्यायन, यशपाल, रांगेयराघव, नागार्जुन तथा भैरवप्रसाद गुप्त आदि के नाम लिये जाते हैं।

१—"दिस वाज ए क्वाइन्सिडेन्स इन्डीड–दैट थ्री राइटर्स अननोन टु ईच अदर, थ्री डिस्टिक्टली डिफरेण्ट टेलेन्ट्स एण्ड टेम्पामेण्ट्स शुड, ऐट द सेम टाइम, हैव टर्न्ड फिक्शन अवे फ्राम एक्स्टर्नल रियलिटी टु इन्टर्नल रियलिटी...।"
—द साइकालाजिकल नावेल (१९००-१९५०) : लियो इडेल : पृ० ११।

इनमें यशपाल की कहानियों की स्थिति विचित्र है, क्योंकि उनमें वर्ग-चेतना के आभास के साथ प्रायः यथार्थ और वह भी अधिक सीमित रूप में, यौन सम्बन्धों के यथार्थ के चित्रण की प्रवृत्ति पायी जाती है, जिसके कारण वे साम्यवादी चेतना से युक्त तथाकथित प्रगतिवादी कथाकारों और समीक्षकों की दृष्टि में, किसी श्रेय के अधिकारी नहीं समझे जाते। फिर भी इस वर्ग के अधिकाँश लेखकों की मुख्य संवेदना मार्क्सवादी दर्शन से अनुप्राणित है।

मार्क्स की मान्यता [1] कि मनुष्य का चेतन व्यक्तित्व, उसके समस्त क्रिया व्यापार, संस्कारादि, उसके बाह्य अस्तित्व से ही निर्धारित होते हैं, एक वस्तुवादी मान्यता है पर मार्क्स के समकालीन विचारकों की सामाजिक मान्यताओं से कहीं अधिक इसका प्रभाव आधुनिक बुद्धिजीवियों पर पड़ा है, इसमें सन्देह नहीं। [2] प्रत्यक्ष रूप में इसका कारण यह है कि मार्क्सवाद सामायिक प्रश्नों पर बल देता है। [3]

इस विचार से सम्भवतः किसी को असहमति नहीं हो सकती कि समाजवादी और साम्यवादी दृष्टिकोण के विचार-क्षेत्र में समाविष्ट होने के फलस्वरूप आधुनिक कहानी में एक विचारोत्तेजक संवेदना का विकास हुआ और सामाजिक शोषण, दरिद्रता, नग्नता, परवशता आदि समस्याओं के चित्रण की सम्भावना को एक निश्चित आधार मिला। साथ ही, कहानी के रचनात्मक शिल्प में लोक रसयुक्त संवेदना की प्रतिष्ठा हुई। पर, वस्तु (मैटर) के प्रति अतिशय आग्रह एवं विशेष वर्गगत पक्षधरता के कारण स्वाभाविक चरित्र-चित्रण की सम्भावनायें इस वर्ग के लेखकों द्वारा बाधित भी हुईं।

१– "इट इज नाट द कान्ससनेस आफ मेन दैट डिटरमिन्स देयर एक्जिस्टेन्स, बट आन द कण्ट्रेरी देयर सोशल एक्जिस्टेन्स दैट डिटरमिन्स देयर कान्शसनेस।"

–क्रिटिक आफ पोलिटिकल एकानामी : कार्ल मार्क्स।

२– "द सोशल फिलासोफी आफ कार्लमार्क्स.........एक्सरसाइजेज ए स्ट्रांगर इन्फ्लूएन्स अपान द प्रेजेण्ट एज दैन द सोशल थियरीज आफ एनी आफ अवर कन्टेम्पोरेरीज।"

–टुवर्ड्स द अंडरस्टैंडिंग आफ कार्ल मार्क्स–सिडनी हुक : पृ० १५।

३– सामायिकी : शान्तिप्रिय द्विवेदी : पृ० ११।

संक्षेप में, इन्हीं उपरिनिर्दिष्ट प्रवृत्तियों के प्रकाश में ही हम प्रेमचन्दोत्तर आधुनिक हिन्दी कहानी की रचना-प्रक्रिया का विश्लेषण कर सकते हैं। इस अध्ययन-क्रम में हमें वैचारिक प्रवृत्तिगत अन्तर को ध्यान में रखना होगा और इसी सन्दर्भ में विचार करना होगा कि, क—प्रस्तुत युग ने हिन्दी-साहित्य को कौन-से श्रेष्ठ कहानीकार दिये, ख—प्रस्तुत युग की कहानी में किन नये कथा-सन्दर्भों का समावेश हुआ, ग—इस काल में रचना-शिल्प संबन्धी क्या महत्वपूर्ण प्रयोग किए गये, घ—इस युग के लेखकों के प्रयत्नों से कहानी में कौन से महत्वपूर्ण बिन्दु उभरे जो उसे पूर्व-युग अर्थात् प्रेमचन्द-युग की कहानी की तुलना में विशिष्ट बना सके, ङ—मानसिक क्रिया—प्रतिक्रियाओं की जटिलता में प्रवेश कर इस युग के कहानीकारों ने किन रचनात्मक मूल्यों और सत्यों की उपलब्धि की, तथा च—इस युग की कहानी में रसानुभूति के कौन-से विशेष स्तर उदघाटित हुये।

ग—प्रेमचन्दोत्तर युग के कुछ प्रमुख कहानीकार रचना—प्रक्रिया के विशिष्ट स्तर

जैनेन्द्र कुमार

जैसा पहले हमने संकेत किया है, जैनेन्द्र ने अपनी कहानियां एक विशिष्ट दार्शनिक भूमि से ग्रहण की हैं। उनकी कहानियाँ, तथा कहानियों से अलग दी हुई, उनकी टिप्पणियाँ इसी की पुष्टि करती हैं। धीरे-धीरे रचनात्मक शिल्प के विकास के साथ दर्शन और मनोविज्ञान, बोध के ये दोनों विशिष्ट स्तर उनकी कहानियों में एकात्म होते हुए देखे जा सकते हैं।

डा० नगेन्द्र के उपन्यासों को लक्ष्य कर लिखा है कि "उनमें कहानी केवल निमित्त मात्र होती है।"[1] कहा जा सकता है कि जैनेन्द्र की कहानियों में भी "कहानी" केवल निमित्त मात्र होती है। इसका यह अर्थ नहीं कि जैनेन्द्र का कहानीकार पाठक को भी यह आभास देता है कि कहानी "कहानी" के निषेध में है। इसके विपरीत, जैनेन्द्र की कहानियों का सतर्क चिन्तन-शिल्प पाठक को निरन्तर यह प्रतीत कराता है कि कहानी कहानी होकर भी अधिक सच्ची अनुभूति है।

१– विचार और विश्लेषण : डा० नगेन्द्र : पृ० १५१।

जैनेन्द्र की रचना-प्रक्रिया का वैशिष्ट्य है कि वे जिस प्रकार सोचते हैं, उसी प्रकार लिखते हैं। ऊपर ऊपर दिखाई पड़नेवाली जैनेन्द्र के शिल्प की असतर्कता ही उनका सतर्क-शिल्प है। यह शिल्प प्रायः उनकी कहानियों को एक प्रतीकात्मक अर्थवत्ता [1] प्रदान करता है। अनुभूति की गहरी प्रेरणा ने ही जैनेन्द्र की कहानियों में विशेष कोटि की आत्मपरकता का निर्माण किया है। इस प्रकाश में देखने से ज्ञात होता है कि जैनेन्द्र के कथा-चरित्र वे प्रतीक हैं जो उनकी सम्पूर्ण सच्चाई को अनायास शिल्प द्वारा व्यंजित करने में समर्थ हो सके हैं। यह मनोवैज्ञानिक सत्यता जैनेन्द्र की रचनाप्रक्रिया को अधिक सार्थक और विशिष्ट बना देती है। [2]

जैनेन्द्र की कुछ कहानियों में परिस्थितियों के मार्मिक (और कभी-कभी करुण) चित्र हैं, कुछ में चरित्र या कई चरित्रों के अनुभूत्यात्मक सम्बन्धों का आभास है, और कुछ में अनुभूति की इकाई ही व्यंजित है। पर सब प्रकार की कहानियों के मूल में जैनेन्द्र का एक मानवीय भाव है जो परिस्थिति को अधिक रचनात्मक स्तर पर चित्रित करना चाहता है। "अपना अपना भाग्य", "पाजेब" तथा "जाह्नवी" आदि कहानियों के माध्यम से इस मानवीय भाव की अनुभूति प्राप्त की जा सकती है। जैनेन्द्र अपनी कहानियों में सम्बन्धों का एक ऐसा अर्थपूर्ण विरोधाभास चित्रित करते हैं कि उपर्युक्त भाव का बोध अधिकाधिक होता जाता है: "अपना-अपना भाग्य" कहानी में दुर्भाग्यग्रस्त बालक की निरीह मृत्यु के करुण बोध को अधिक तीव्र बनाने के लिए, वे आरम्भ में एक प्रसन्न क्रीड़ामय वातावरण की परिकल्पना करते हैं। उपर से देखने पर लगेगा कि इस कहानी का

१– नीलम देश की राजकन्या : जैनेन्द्र की श्रेष्ठ कहानियाँ (राज० प्रका०) पृ० ७।

२– "जैनेन्द्र ने बाह्य और अंतरिक जीवन के उभय पक्ष को पूरी मनोवैज्ञानिक सचाई के साथ समन्वित करने की कोशिश की है और हिन्दी कहानी को एक नयी अन्तर्दृष्टि, संवेदनशीलता और दार्शनिक गहराई प्रदान की है और इस प्रकार हिन्दी कहानी का बौद्धिक स्तर ऊंचा उठाया है।"

–हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष : शिवदानसिंह चौहान : पृ० १८७।

आरंभिक वातावरण चित्र[1] निरपेक्ष वातावरण का चित्र है जब कि कहानी के रचनात्मक अन्तरंग में प्रवेश करने पर लगता है कि कहानी में व्यक्त यह परिस्थितियों का एक सार्थक विरोधाभास है। वर्ग-चेतना पर बल देने वाले कहानी लेखक भी रचनाप्रक्रिया के इस आधुनिक शिल्प का उपयोग कम ही कर सके हैं। परिस्थितियों के सार्थक विरोधाभास की यह अनुभूति एक आधुनिक अनुभूति है, जिसे हम एक भिन्न कोण से "पाजेब"[2] कहानी में व्यक्त देखते हैं। अभिव्यक्ति-पद्धति के अति सरलीकरण के होते हुए भी "पाजेब" साधारण कहानी नहीं है। साधारण कहानी वह होती—यदि बालक ने पाजेब ली होती और त्रास और भय के बीच अपना अपराध स्वीकार करने के पथ में आत्मसम्मान की ही बाधा की अनुभूति करता रहता, पर यह कहानी इस सन्दर्भ को प्राप्त कर "विशेष" हो उठी है कि पाजेब न लेने पर भी बालक त्रास और भय की स्थिति में पड़ कर अपराध स्वीकार कर लेता है, जब कि अपराधी वह नहीं है। इस प्रकार जैनेन्द्र किसी गूढ़ मनोवैज्ञानिक सत्य की प्रतिष्ठा करते हुए पाठक को एक गहरी रसानुभूति से परिचित कराते हैं।

जैनेन्द्र की कहानियों की मनोवैज्ञानिकता पर विचार करते हुए, समीक्षकों ने उन पर फ्रायड का प्रभाव बताया है। कहा गया है कि उनकी कहानियां दमित वासना के उदात्तीकरण की कहानियाँ हैं, उनके चरित्र मनोविकारग्रस्त (या न्यूरोटिक) हैं, और उनमें मुक्त आसंग-पद्धति का विनियोग है। जैनेन्द्र की कुछ कहानियों, जैसे "एक रात" या "मास्टर जी" आदि में इन आरोपों की सत्यता भी प्रमाणित होती है। पर, हमें इन प्रभावों

१— "पीछे पोलो लान में बच्चे किलकारियाँ मारते हुए हाकी खेल रहे थे। शोर, मारपीट, गाली गलौज भी जैसे खेल का ही अंश था। इस तमाम खेल को उतने क्षणों का उद्देश्य बना वे बालक अपना सारा मन, सारी देह, समग्रबल और समूची विद्या लगाकर मानों खत्म कर देना चाहते थे। उन्हें आगे की चिन्ता न थी, बीते का ख्याल न था। वे शुद्ध तत्काल के प्राणी थे। वे शब्द की सम्पूर्ण-सच्चाई के साथ जीवित थे।"
—जैनेन्द्र की श्रेष्ठ कहानियाँ (राज० प्रका०) पृ० ३४-३५।

२— जैनेन्द्र की श्रेष्ठ कहानियाँ (राज० प्रका०) पृ० ४८।

का आरोप बहुत ऊपरी जान पड़ता है। सिद्धान्तों की चेतना की लाक्षणिकता से बंध कर चलने से कहानी में जो रीतिपरक रूढ़ि बन सकती है—जैनेन्द्र की कहानियों में वह कहीं परिलक्षित नहीं होती। सिद्धान्तों की लाक्षणिक चेतना को ध्यान में रखकर जैनेन्द्र ने अपनी आरम्भिक कहानियां लिखी भी हों पर धीरे-धीरे वे मनोविज्ञान की अधिक रचनात्मक अनुभूति की खोज में संलग्न होते गए हैं और उनकी कहानियों की परीक्षा इसी आधार पर की जानी चाहिए।

जैनेन्द्र की कहानियों के अध्ययन से यह बात जानी जा सकती है कि वे "भाषा" नामक यन्त्र को बहुत लचीला बना देना चाहते हैं और अपने इस प्रयत्न में वे कभी-कभी भाषा के स्वाभाविक और प्रचलित सहज रूपों को विकृत भी करते हैं। डा० नगेन्द्र के शब्दों में कहा जा सकता है कि इसके लिए उनकी "बौद्धिक मिथ्या धारणा ही उत्तरदायी है।" [1] भाषा के सहज रूप की प्रतिष्ठा का निर्वाह बिना उसे विकृत किए हुए भी, किया जा सकता है। अमरकान्त सरीखे अति आधुनिक कहानी लेखकों की भाषा में यह प्रयोग बड़े उत्कृष्ट रूप में देखा जा सकता है।

अज्ञेय

"अज्ञेय" विशुद्ध मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति के कहानीकार माने जाते हैं। परिस्थिति और वातावरण की मनोवैज्ञानिक चेतना की जैसी तीव्र अनुभूति अज्ञेय की कहानियों में है, वैसी समकालीन लेखन में कम पायी जाती है। पर, इस मनोवैज्ञानिक चेतना की एक सुनिश्चित दार्शनिक भूमि है जिसके सन्दर्भ में उनकी कहानियों का मूल्यांकन अभी तक नहीं किया गया है। अज्ञेय की रचना-प्रक्रिया को इस आधार—भूमि से अलग ठीक-ठीक समझा

---

१ —"अभिव्यक्ति के दो अंग हैं : उक्ति और भाषा। उक्ति कला है और भाषा शास्त्र है। जैनेन्द्र जी उक्ति के माहिर हैं। वक्रता पर ऐसा अधिकार कदाचित् ही किसी गद्यलेखक का हो—शायद निराला का है। परन्तु भाषा वाला अंग जैनेन्द्र जी का कच्चा है और उसके लिए जैनेन्द्र जी की अपनी बौद्धिक मिथ्या धारणा ही उत्तरदायी है।"

—विचार और विश्लेषण : डा० नगेन्द्र : पृ० १५४।

नहीं जा सकता। 'अनुभवगम्यता के व्यक्तिगत साक्षात्कार की भावना' [1] अज्ञेय की कहानियों को कार्ल यास्पर्स के दार्शनिक चिन्तन के समीप लाती है। इसी प्रकार, परिस्थितियों के प्रति "जिज्ञासा की एक तीखी तात्कालिकता" [2] अज्ञेय की कहानियों को सार्त्र के चिन्तन के समीप लाती है। अनुभव की तात्कालिक चेतना का बोध, सार्त्र के चिन्तन के निषेध–तत्व की तह में छिपी हुई "अस्तित्व–सम्बन्धी व्याकुलता" को जिस धरातल पर चित्रित करता है, उस पर सार्त्र और अज्ञेय की कहानियों के नायक [3] एक दूसरे के बहुत समीप आ जाते हैं। विषय की दृष्टि से अज्ञेय की कहानियाँ तीन प्रकार की, क्रान्तिकारी जीवन से सम्बन्धित, प्रेम सम्बन्धी और मनोवैज्ञानिक, बतायी जाती हैं, पर हमें, यह वर्गीकरण बहुत स्थूल और अनुपयुक्त जान पड़ता है। अज्ञेय की कहानियों को देखते हुए ऐसा कोई वर्गीकरण उपयुक्त नहीं जान पड़ता है क्योंकि क्राँतिकारी जीवन से सम्बन्धित वस्तु का ग्रहण करने वाली उनकी कहानियां कहीं अधिक गहरी मनोवैज्ञानिकता की अनुभूति को प्रत्यक्ष करती हैं और "प्रेम" तो एक मानसिक भाव है, उसे चित्रित करने वाली कहानी मनोवैज्ञानिक क्यों नहीं कही जा सकती ! निश्चय ही अज्ञेय की कहानियों के विषय विविध हैं, उनमें (उनकी कहानियों में) सामाजिक आलोचना, राजनीतिक चेतना, मानसिक संघर्ष आदि-आदि विषयों की व्यंजना पाई जाती है। पर अपनी सम्पूर्ण चेतना में इन विभिन्न विषयों की कहानियाँ मनोवैज्ञानिक ही कही जा सकती हैं। रोज, पगोड़ा, वृक्ष, पुरुष का भाग्य,

---

१ –सिक्स एक्जिस्टेन्शियलिस्ट थिंकर्स : एच० जे० ब्लैकहम : पृ० ६४।

२– "हेमन्त कई क्षण तक चुपचाप बालू की ओर देखता रहा। यही नहीं कि उसके मन में शून्य था, यह भी नहीं कि मन की बात कहने को शब्द बिल्कुल ही नहीं थे, केवल यही कि बालू पर उसके अपने पैरों की जो छाप पड़ी हुई थी– गीली बालू पर जो चिकनी पाटी की तरह होती है– उसमें उसके लिए एक आकर्षण था जिसमें निरा कौतूहल नहीं, जिज्ञासा की एक तीखी तात्कालिकता थी।"

–वे दूसरे, जयदोल : अज्ञेय : पृ० ७३।

३– "हम यहाँ नहीं होंगे, तब भी यह तारा ऐसे ही चमकेगा। पर जैसे हम आज इसे देख रहे हैं, वैसे और कोई नहीं देखेगा, यह आज इस क्षण का तारा है।" –वे दूसरे, जयदाल : अज्ञेय : पृ० ७७।

पठार का धीरज, साँप, कोठरी की बात आदि कहानियाँ विविध विषयों से सम्बन्धित होकर भी एक मनोवैज्ञानिक संवेदना से सम्पृक्त हैं।

अज्ञेय की रचना–प्रक्रिया के अध्ययन से यह जाना जा सकता है कि उनकी कहानियों में अनेक शैलियों का व्यवहार है। ऐतिहासिक, आत्मकथात्मक, नाटकीय, पत्रात्मक, आदि विभिन्न पद्धतियों का उपयोग करते हुए वे अपने रचनात्मक लक्ष्य तक पहुँचना चाहते हैं। उनकी कहानियों की सम्पूर्ण योजना एक सुनिश्चित विकास–क्रम से अनुशासित होती है। इस विकास-क्रम की परिणति निरुद्देश्य नहीं होती। उनकी कहानियों की परिणति प्रायः एक गहन अनुभूति की गूँज के रूप में प्राप्त की जा सकती है। वस्तु, चरित्र, वातावरण, संवेदना—ये सभी तत्व परस्पर मिलकर उनकी कहानियों में इसी गूँज को तीव्र करने में सहायक होते हैं।

अज्ञेय की कहानियों के किसी एक विशेष मनोवैज्ञानिक चित्र [1] को देखकर यह सहज ही जाना जा सकता है कि रचना उनके लिए अनुभूति का अंग होती है। कहानी में वे वातावरण, परिस्थिति, चरित्र का परिचय इसी अनुभूति को तीव्रतर करने के प्रयत्न के रूप में देते हैं। साथ ही, उनकी कुछ कहानियों में रूप, वस्तु और भाषा की ऐसी सम्पूर्ण अन्तर्व्याप्ति (इन्टरपेनिट्रेशन) पायी जा सकती हैं, जैसी डी० एच० लारेन्स की कुछ श्रेष्ठ रचनाओं में दिखाई देती है। संभवतः इसी सादृश्य को ध्यान में रखकर अज्ञेय की रचनात्मक चेतना पर लारेन्स का प्रभाव भी बताया जाता है। हमारी दृष्टि में अज्ञेय की कहानियाँ जिस सम्पूर्णतः आधुनिक कलात्मक सृजन का दुर्लभ स्तर उद्घाटित करती हैं उसके परिनिर्माण में बहुत सारे प्रभावों का योग है : अकेले डी० एच० लारेन्स का प्रभाव का नहीं। अज्ञेय के कथा-चरित्र जीवन की जो एषणा ज्ञापित करते हैं और उनकी कहानियों में रूप, रस, गन्ध की जिन जातीय विशेषताओं का समावेश लक्षित होता है, उन्हें देखते हुए, यह

१– "मैंने देखा कि सचमुच उस परिवार में उस कुटुम्ब में कोई गहरी भयानक छाया घर कर गयी है, उसके जीवन के इस पहले ही यौवन में घुन की तरह लग गयी है, उसका इतना अभिन्न अंग हो गई है कि उसे पहचानते ही नहीं, उसी की परिधि में घिरे चले जा रहे हैं।"

–जयदोल : अज्ञेय : पृ० १३८।

मानने का कोई कारण नहीं दिखाई देता कि उनकी प्रेरणा भूमि पूर्व से नहीं, पश्चिम से ग्रहीत है।

अज्ञेय भी, जैनेन्द्र की भाँति कहानियों में कहानियाँ मात्र न कहकर किसी दूरगामी सन्दर्भ का उद्घाटन करना चाहते हैं।[1] उनकी कहानियों में व्यक्त उनकी रचनात्मक चेतना को देखते हुए शिवदानसिंह चौहान का यह मत पूर्वाग्रह ग्रस्त एवं अनुचित प्रतीत होता है कि "अज्ञेय" में मनुष्य की मनोगत दिशाओं का चित्रण कम, फ्रायड की प्रणाली से किया गया मनोविकारों का विश्लेषण अधिक है।[2] यदि जीवन के स्थूल तथ्यों का आकलन न करके, जीवन के अधिक सार्थक अभिप्रायों और अनुभवों की पुनर्रचना करने वाले प्रतीकवादी कथाकार यथार्थवादी कहे जा सकते हैं[3] तो अज्ञेय यथार्थवादी (निस्संदेह मनोवैज्ञानिक यथार्थवादी) कहानीकार माने जा सकते हैं।

साभिप्राय रूप से अज्ञेय की कहानियों में चरित्रों का अन्तर्द्वन्द्व आत्मविश्लेषण की समस्त संभावनाओं, स्थितियों तथा संवेदनाओं को उपस्थित करता है और सम्पूर्ण प्रभाव की प्रतिक्रिया जगाने में समर्थ होता है। अज्ञेय की कहानी "कोठरी की बात" प्रमाण है कि उसमें परिस्थिति के संक्रमण की अनुभूति–प्रतिक्रिया[4] और

१– "मैं आपको सिर्फ कहानी नहीं, कहानी से कहीं अधिक कुछ सुनाने लगा हूँ।" —ये तेरे प्रतिरूप : अज्ञेय : पृ० ९६।

२– हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष : शिवदान सिंह चौहान : पृ० १८८।

३– "पर्हेप्स इट प्रूव्स दैट द सिम्बोलिस्ट्स वेयर द ग्रेटर रियलिस्ट्स इन रिकगनाइजिंग दैट लिट्रेचर मस्ट रिक्रिएट लाइफ नाट अटेम्प्ट मियर्ली टु डाकुमेन्ट इट।" —द साइकालाजिकल नावेल
—लियोन इडेल : (१९००-१९५०) पृ० १२३।

४– "चिन्तन से उसे पीड़ा होती थी, किन्तु पीड़ा उसे चिन्तन का आधार देती थी और इसलिए वह पागल नहीं हुआ। इसलिए जब तूफान आकर उसे अशान्त करके चला जाता था, तब वह उन्मद दानव की भांति उस छोटी सी कोठरी में टहलने लगता था।............उसका एक शब्द भी बाहर नहीं निकलता। एक छाया भी उसके मुख पर व्यक्त नहीं होती। वह मानों किसी अदृश्य समुद्र के भाटे की तरह धीरे-धीरे उतर जाती

प्रकार की है : एक, वे, जिनमें मध्यवर्ग की रूढ़ियों, कुण्ठाओं एवं ह्रासोन्मुखता का विश्लेषण है और दूसरी, वे, जिनमें व्यक्ति के अहं की समीक्षा है। पहले प्रकार की कहानियों में 'रोगी' 'परित्यक्ता' तथा 'दुष्कर्मी' जैसी कहानियाँ आती हैं, जिनकी अभिव्यक्ति पद्धति सीधी, विवरण प्रधान एवं वर्णनात्मक है तथा दूसरे प्रकार की कहानियों में 'डायरी के नीरस पृष्ठ' जैसी कहानियाँ आती है जिनमें मानसिक संघर्षो का चित्रण है। इनमें दूसरे प्रकार की कहानियाँ अधिक मार्मिक हैं, जिनके चरित्र नितान्त अकेले और अन्तर्मुखी हैं।[1]

इलाचन्द्र जोशी की आत्मपरक कहानियों में असाधारण घटनाचक्रों का रहस्यपूर्ण वर्णन और सन्देह, भय, ईर्ष्या, आत्मग्लानि आदि मानव-भावों का विश्लेषण पाया जाता है। उनकी ऐसी कहानियों की समाप्ति प्रायः किसी कुंठित व्यक्ति के मन के आत्मविश्लेषण में होती है।[2] आत्मजन्य भय आदि मनोविकारों का प्रक्षेपण जोशी जी की 'प्रेतात्मा' आदि कहानियों में स्पष्टतः देखा जा सकता है। हैनरी जेम्स के उपन्यास 'द टर्न आफ द स्क्रूयू' की भाँति,

---

१–'अकेला। निपट अकेला। इस जनाकीर्ण विराट् नगरी में मैं अपने को एकदम संगीहीन, निर्वासित और समस्त संसार द्वारा परित्यक्त पाता हूं। मैं मानता हूं कि हर कोई आदमी किसी मानसिक क्षोभ से आच्छन्न होने पर अपने को अकेला समझता है। पर मेरे इस अकेलेपन की भीषणता कैसी आतंकोत्पादक है, मेरे विक्षुब्ध हृदय की विजनता कैसी अतल है, मेरे मानसिक वातावरण का अन्धकार कैसा अच्छेद्य है··· ।'
—'मैं'-दीवाली और होली : जोशी : पृ० २३।

२–'मेरी आँखों के सामने से होकर एक अर्थहीन रंगीन स्वप्न की माया झलक रही है। मृत्यु के इस पार से आज अनेक दिनों के बाद मुझे रोने की इच्छा हुई है। पर जानता हूं कि रोना भी स्वप्नमयी माया की तरह ही व्यर्थ है। आज अवकाश पाकर मैं यह सोच रहा हूं कि मैं कौन हूं ? पागल हूं ? भूत हूं ? प्रेतात्मा हूं ? छाया हूं ? स्वप्न हूं ? क्या हूं ? मेरी आँखों के सामने संसार के जो ये सब जीव उठते-बैठते हैं, आते-जाते हैं, खाते-पीते हैं, प्रतिदिन के सुख-दुख की वेदना अनुभव करते हैं, उनसे क्यों अपनी आत्मा का अणुमात्र भी संयोग मुझे अनुभूत नहीं होता ?···'
—डायरी के नीरस पृष्ठ : पृ० १५।

जोशी जी की अधिकाँश कहानियाँ भी प्रेत और छाया के संघर्ष के बीच घूमती हैं। आकस्मिक ही हो : गर भूत और इन सबके प्रक्षेपण से अभिव्यक्त भय, जेम्स के उपर्युक्त उपन्यास और जोशी जी की 'प्रेतात्मा' जैसी कहानियों में समानत: पाया जाता है। इन रचनाओं के तुलनात्मक अध्ययन से प्रत्यक्ष होता है कि ऐसी गूढ़ मनोविश्लेषणात्मक समस्याओं पर लिखनेवाले कहानीकार को चरित्र तथा अपने व्यक्तित्व के बीच एक दूरी बनाए रखनी चाहिए। ऐसा न करने से जोशी जी की कहानियों में चरित्र की आत्म स्वीकृति [1] बहुत एकरस और अतिरंजनापूर्ण जान पड़ती है।

जोशी जी की कहानियों को देख कर लगता है कि उनमें कथा-सर्जन की बड़ी प्रतिभा विद्यमान है। पर आश्चर्य है कि जोशी जी ने उसका उपयोग केवल यह किया कि मनोविश्लेषण जगत् की शोध का लाभ उठाते हुए हिन्दी कहानी को रुग्ण, अहंकारी, घृणास्पद, आत्मरतिप्रधान चरित्रनायकों से भर दिया। निश्चय ही मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन के आतंक में वे 'कहानी' में उस सहज मानवीय संवेदना की प्रतिष्ठा नहीं कर पाए हैं जो गार्की, चेखब, प्रेमचन्द, रवीन्द्रनाथ आदि के कथा साहित्य की श्रेष्ठता का आधार है।

स्त्री-पुरुषों के सम्बन्धों पर लिखी गयी कहानियों में भी जोशी जी नैतिक आत्मपीड़ा और अपराध भावना की ही अभिव्यक्ति कर सके हैं। 'पतिव्रता या पिशाची' [2] नामक कहानी जोशी जी की उपर्युक्त सीमा का प्रतिनिधि उदाहरण है। जिस भावना से प्रेरित होकर सूरजप्रसाद की पत्नी, इस कहानी में, अपने नवजात शिशु का गला मरोड़ डालती है वैसी आत्मघाती भावना प्राय: जोशी जी की कहानियों का वर्ण्य विषय है। इन सीमाओं को

१—'मैं इसी प्रकृति का आदमी हूं। अर्थात् मैं आधुनिक मनोवैज्ञानिक की भाषा में 'इंट्रोवर्ट' हूं।...मैं फिलासफी की आड़ में अपनी नीच प्रवृत्ति को छिपाने की चेष्टा कर रहा हूं, यह शंका बहुत से पाठकों के मन में उत्पन्न होगी। नहीं, असलियत छिपाने का मेरा बिल्कुल इरादा नहीं है। मैं स्पष्ट शब्दों में कहना चाहता हूं—मैं साँसारिक दृष्टि से भी परम स्वार्थी हूँ।'

मैं : दीवाली और होली—जोशी : पृ० २६।

२—दीवाली और होली : जोशी : पृ० १०१।

ध्यान में रखते हुए जोशी जी के कथा–चरित्र 'साधारण कोटि' [1] के कहे जाते हैं। यह स्थिति स्वाभाविक है।

जिन समीक्षकों को अज्ञेय और इलाचन्द्र जोशी की कहानियों में एक ही जीवन-दृष्टि का आभास मिलता है, [2] उन्हें इन लेखकों की रचना-प्रक्रिया के मौलिक अन्तर का विश्लेषण करना चाहिए। ऊपरी आधार पर समानतायें ढूँढ़ना, भीतरी स्थितियों में प्रवेश कर अन्तर ढूँढने की तुलना में सहज है, पर समीक्षा का प्रयोजन इस कठिन संकल्प में ही निवास करता है।

यशपाल

यशपाल सच्चे अर्थ में 'यथार्थवादी' कहानी लेखक हैं। उनकी कहानियां हमारे सामाजिक, राजनीतिक, नैतिक एवं सांस्कृतिक जीवन के विषम संघर्ष और मूल्य–मर्यादाओं के खोखलेपन का उद्घाटन करती हैं। व्यक्ति और व्यक्ति के परिवेश की क्षुद्रता, नग्नता और अनैतिकता का उद्घाटन करते हुए वे समाज के वास्तविक सत्य का ढाँचा खड़ा करना चाहते हैं।

यशपाल की रचना-प्रक्रिया मनोवैज्ञानिक कहानी लेखकों की भाँति जटिल नहीं है। सामाजिकता की धारणा से बंधी होने के कारण वह अधिक स्पष्ट और उद्देश्यपूर्ण है। अपनी व्याख्याओं में यशपाल ने 'कहानी' को 'सामाजिक वस्तु' के रूप में स्थापित किया है और कहानी के कथा-रस के उद्देश्यपूर्ण सामाजिक उपयोग पर बल दिया है। [3] 'पाँव तले की डाल' तथा 'फूल की चोरी' आदि कहानियों में उद्देश्यपूर्ण सामाजिकता प्रत्यक्ष ही अनुभव की

१–हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास, डा० लक्ष्मीनारायण लाल : पृ० २७५।

२–हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष : शिवदान सिंह चौहान : पृ० १८९।

३–'हमारे सामने दो मौलिक प्रश्न हैं। एक, कहानी से रस क्यों मिलता है ? दूसरा कहानीकार को कहानी सुनाने की इच्छा क्यों होती है ? शायद यह उत्तर विवादास्पद न समझा जायगा कि कहानी से रस मिलने का कारण श्रोता या पाठक का कहानी के पात्र के जीवन और व्यवहार के प्रति कौतूहल, और उत्सुकता है। पाठक या तो कहानी के पात्र के प्रति सहानुभूति से या पात्र के अनुचित कार्य के विरोध को अनुभव कर कहानी में रस पाता है। पाठक के कौतूहल, उत्सुकता, सहानुभूति और विरोध का

जा सकती है। इसी उद्देश्यगर्भ सामाजिकता के कारण यशपाल की कहानियाँ 'लक्ष्यात्मक' [1] कही गयी हैं।

यशपाल की कहानियों के मुख्य विषय आर्थिक विषमता, नैतिकता और यौनभावना आदि हैं। 'कर्मफल,' 'अभिशप्त', 'फूल की चोरी', 'चार आने' आदि कहानियों में आर्थिक विषमता के दोष उद्घाटित करने का प्रयास है। आर्थिक स्तर पर विकसित सामाजिक वर्ग–विषमता की समस्या को यशपाल ने 'आदमी का बच्चा' शीर्षक कहानी में बड़ी तीव्र कटुता के साथ उपस्थित किया है। [2]

नैतिकता की समस्याओं पर लिखी हुई यशपाल की कहानियाँ अपने व्यंगप्रधान प्रसंगगर्भत्व के कारण अत्यन्त मार्मिक बन पड़ी हैं। प्राय : ऐसी कहानियों में यशपाल ने प्रतीक–पद्धति का उपयोग किया है। 'फूलों का कुर्ता' इसी धरातल की एक प्रतीकात्मक व्यंग–कहानी है जिसमें प्रचलित लोकश्रुति के आधार पर, दूल्हे के आगमन पर लज्जा व्यक्त करने के लिए पाँच वर्ष की फूलों शरीर के अकेले आवरण कुर्ते को मुंह पर रख लेती है। यशपाल की व्याख्या [3] से प्रत्यक्ष है कि 'कुर्ता' तो एक प्रतीक है अन्यथा लेखक का इष्ट है

आधार कहानी द्वारा कहानी की समस्या से आत्मीयता अनुभव करना ही है। कहानीकार की कहानी सुनाने की इच्छा का स्रोत पाठकों या श्रोताओं से सामाजिक सम्बन्ध के आवश्यकतानुकूल काल्पनिक चित्रों द्वारा अनुभूति के और विचारों के आदान-प्रदान का अवसर पाना ही है। इस सामाजिक चित्र से कथाकार और श्रोता दोनों ही अनुभूतिगम्य आत्मीयता होना आवश्यक है। यदि कहानी से रस मिलने और कहानी कहने की इच्छा के सम्बन्ध में मन्तव्य को अंशतः भी स्वीकार किया जा सकता है तो कहानी मूलतः एक सामाजिक वस्तु हो जाती हैं।'

–चित्र का शीर्षक : भूमिका : यशपाल : पृ० ६–७।

१–हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास : डा० ल० ना० लाल : पृ० २८६।

२–'हाय मेरी मिस साहब, तुम ऐसे आदमी थोड़े ही हो! भूख से मरते हैं कमीने आदमियों के बच्चे।' –अभिशप्त : यशपाल : पृ० ८२-८३।

३–'बदली स्थिति में भी परम्परागत संस्कार से ही नैतिकता और लज्जा की रक्षाकरने के प्रयत्न में क्या से क्या हो जाता है? प्रगतिशील लेखकों

समाज की झूठी नैतिकता के खोखलेपन का उद्‌घाटन। पर श्लील और अश्लील के बीच कोई विभेदक रेखा अवश्य है और यशपाल की रचना-प्रक्रिया भी इस रेखा को समूल काट नहीं सकती। उन्हीं की कहानियों से उदाहरण ढूँढ़े जाँय तो कहना होगा कि 'फूलों' का कुर्ता 'और 'पराया सुख' तो नहीं, पर 'धर्म रक्षा, और 'प्रतिष्ठा का बोझ' अश्लील कहानियाँ हैं, क्योंकि उनमें समस्याओं और चरित्रों को अत्यन्त भोड़े रूप में प्रस्तुत किया गया है। यशपाल की रचना-प्रक्रिया की सीमा वहीं है, जहाँ वे साँकेतिकता के अर्थपूर्ण उपयोग की उपेक्षा करते हैं। यह प्रश्न केवल भाषा या अभिव्यक्ति का नहीं, दृष्टिकोण का है, अतः निरन्तर विचार और विश्लेषण का विषय है। यशपाल की जो रचनात्मक प्रतिभा आकस्मिक संयोगों द्वारा कहानियों में सूक्ष्म उद्देश्य तत्व की प्रतिष्ठा करती है, वह चरित्रचित्रण की प्रणाली को साँकेतिक नहीं बना सकती, यह मानने के लिए कोई युक्तिसंग। आधार नहीं है।

अपनी उपर्युक्त सीमाओं में भी, यशपाल की कहानियों के कथानक अधिक चुस्त, व्यंजक और यथार्थ चरित्रों पर आधारित होते हैं। वातावरण और चरित्र की सृष्टि वे रोमान्टिक स्तर पर भी करते हैं, [1] और यथार्थ के विद्रूप के अनुसार भी। [2]

की उघाड़ी उघाड़ी बातें··· । हम फूलों के कुरते के आँचल में शरण पाने का प्रयत्न कर उघड़ते चले जा रहे हैं और नया लेखक कुर्ता चेहरे से नीचे खींच देना चाहता है।'

—फूलों का कुरता : यशपाल : पृ० ७।

१—'वृक्षाच्छादित सूनी और स्वच्छ सड़कें, परेड का विस्तृत मैदान और चारों ओर हरियाली छायी पहाड़ियों की उमड़ती लहरें। यह सब चित्र के समान सुन्दर जान पड़ता है। रात में मंसूरी की पहाड़ी पर छिटकी बिजली की रोशनी···मानों सूर्य की रानी वहाँ दिन में क्रीड़ारत हो अपना सतलड़ा हार भूल गयी है, वही रात में पड़ा चमक रहा है।'—ज्ञानदान : यशपाल : पृ० ३१।

२—इन्दु सक्सेना की उपमा थी कुरुप के लिये। चेहरे का रंग साँवले से काफी अधिक गहरा, होठ···यदि केवल होंठों को ही देखा जाता तो पुष्ट और धनुषाकार थे। कोई चित्रकार अभ्यास के लिए उनके रेखा चित्र बनाने का यत्न कर सकता था तो ठोड़ी और अनुपात से छोटी नाक ने

"विशाल और निर्बाध जीवन की परिस्थितियों के चित्रण" की क्षमता रखने वाले यशपाल की कहानियों का वैशिष्ट्य यह है कि कुतूहल और संघर्ष के तीव्र उद्वेलन से युक्त होने पर भी उनकी संवेदनात्मक अन्विति भंग नहीं होती। 'भाषा' जैसी भावात्मक और ८०/१०० जैसी व्यंगपूर्ण–सभी प्रकार की कहानियों में इस वैशिष्ट्य का निर्वाह देखा जा सकता है।

कुल मिलाकर, यशपाल सामाजिक दृष्टि–सम्पन्न ऐसे कहानीकार हैं जो रचना–प्रक्रिया की जागरूकता को भी सामाजिक धरातल पर ही अनुभव करना चाहते हैं और 'कृति' को सामाजिक उपयोग की 'वस्तु' मानते हैं।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

अश्क की कहानियों में समाज की आलोचना, व्यक्ति के मानसिक संघर्ष का चित्रण और परिस्थिति तथा 'वातावरण का यथार्थ अङ्कन'[1] इस रूप में प्राप्त होता है कि उन्हें प्रेमचन्द की यथार्थवादी परम्परा के शिल्प-विधान का आधुनिक विकास मान लेना सर्वथा स्वाभाविक है। पर अश्क के ही अनुसार उनकी रचनात्मक प्रेरणाओं का स्रोत उनका निजी जीवन है जिसमें "काल्पनिक कहानियों के निर्माण के लिये" कोई प्रेरणा ही नहीं थी।[2]

अपने स्थान से पीछे हट उन्हें अकेला ही छोड़ दिया। होंठ आगे बढ़ यों श्रीहीन हो गए जैसे सुन्दर गीत से लय और ताल पीछे रह जाने पर वह विश्री हो जाता है।'—तर्क का तूफान : यशपाल : पृ० ९।

१—"(अश्क की) कहानी में कथासूत्र चाहे अधिक न हो पर वातावरण का यथार्थ अङ्कन और सूक्ष्म प्रभाव अवश्य रहते हैं………।"
—हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष : शिवदानसिंह चौहान : पृ० १९१।

२—"मेरे कहानीकार बनने के पीछे एक अनजाने विद्रोह की भावना काम करती थी। मैं जिस परिवार और वातावरण में पल रहा था, उसकी असंगतियों और कुण्ठाओं ने मुझे कवि और कथाकार बना दिया। इसलिए बहुत देर तक अपने वातावरण और समाज को भूलकर काल्पनिक कहानियाँ बुनना मेरे लिए सम्भव न था।"
—मेरे कहानी लेखन के बत्तीस वर्ष : सत्तर श्रेष्ठ कहानियाँ : अश्क : पृ० २५।

इसीलिए यद्यपि अश्क हिन्दी में प्रेमचन्द के प्रभाव से आदर्शोन्मुख यथार्थ दृष्टि लेकर आए, पर बाद में उन्होंने शुद्ध यथार्थवादी कहानियाँ लिखीं। विस्तृत जीवन के नाना सन्दर्भों को जीने वाले यथार्थ चरित्रों को अपनी कहानियों का विषय बनाकर अश्क ने सामाजिक समस्याओं के प्रति अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की है। अश्क की कहानियों का मूल्यांकन इसी धरातल पर, इसी आदर्श के अनुसार किया जाना चाहिये।

हमारी दृष्टि में, अश्क ने अपनी कहानियों में जिस मनोवैज्ञानिक पद्धति का उपयोग किया है, उसमें अनुभूति और मनोविज्ञान का सम्यक् योग है। अश्क न तो यशपाल की तरह जीवन के कटु सत्य को 'उठा' लेते हैं, और न इलाचन्द्र जोशी की भाँति मनोविज्ञान का उपयोग रुग्ण तथा क्षयी चरित्रों की सृष्टि के रूप में करते हैं। फिर निरन्तर रचनात्मक-विकास की प्रक्रिया भी 'अश्क' में अधिक स्पष्ट रूप में दिखाई देती है। अपनी आरम्भिक कहानियों में जहाँ वे कृत्रिम आकस्मिकता का चमत्कार तथा आघात उपस्थित करना चाहते थे, वहाँ विकासकालीन कहानियों में वे अधिक सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक चेतना का उपयोग करते हैं। 'मनुष्य यह' अश्क की पहली कहानी है जो उनके रचनात्मक विकास की यात्रा के इस महत्वपूर्ण मोड़ को सूचित करती है।

अश्क के कथा–चरित्र विभिन्न सामाजिक वर्गों से ग्रहीत हैं। इस दृष्टि से उनकी कहानियों में वह एकरसता नहीं प्राप्त होती जो मनोवैज्ञानिक लेखकों की अधिकाँश कहानियों में कहीं भी देखी जा सकती है। अश्क के चरित्र समस्त जीवन से लिये गए हैं। उनमें कैप्टन राशिद जैसे अफसर चरित्र भी हैं और चन्दन जैसे यौनकुण्ठाग्रस्त नौकर भी। इन चरित्रों के साथ प्राय: कोई न कोई व्यंग-सन्दर्भ जुड़ा होता है, जिसे ठीक से न समझने से पाठक कहानी का उचित रसास्वादन नहीं कर सकते।

अश्क की जिन कहानियों में यथार्थ-हेतु का अभाव है उनका अर्थ ग्रहण सामान्य पाठकों के लिए कठिन हो सकता है। उदाहरण के लिए "कहानी लेखिका और जेहलम के सातपुल"[1] कहानी में जो पाठक यथार्थ–हेतु को ग्रहण करना चाहते हैं उन्हें इस पर ध्यान देना चाहिये कि कहानी लेखिका जो कहानी सोचती है वह अयथार्थ है। उसका 'वास्तविक' से कोई सम्बन्ध

१—कहानी लेखिका और जेहलम के सात पुल : अश्क : पृ० १५१।

नहीं है। अतः वह वे विवरण बचा जाती है जिनकी प्रतिष्ठा कोई यथार्थवादी लेखक अपनी कृति में अनिवार्यतः करता। अश्क ने सोद्देश्य रूप से, इस कहानी में कहानी लेखिका की आँखें बन्द होने की बात एकाधिक बार कही है। अश्क काल्पनिक और यथार्थमूलक कहानियों की रचना-प्रक्रिया के मौलिक भेद का साक्षात्कार करने के ही उद्देश्य से [1] इस प्रकार के प्रयोग अपनी कहानियों में करते हैं।

अश्क की कहानियों में प्रायः अर्थपूर्ण वातावरण का सजीव चित्रण पाया जाता है। वे बड़ी सतर्कता से किसी सजीव वातावरण की उद्‌भावना अपनी 'रचना' में करते हैं और इस प्रक्रिया से एक महत्वपूर्ण रचनात्मक अभिप्राय की पूर्ति करते हैं। उनकी कहानियों में प्रयुक्त बिम्बों की शृङ्खला न केवल एक 'यथार्थ' चित्र की सृष्टि करती है [2] बल्कि अश्क के लिये एक रचनात्मक उद्देश्य की पूर्ति करती है, जो निस्सन्देह 'सुन्दर' की सृष्टि में निहित होता है।

भाषा और अभिव्यक्ति के इन प्रश्नों को ध्यान में रखते हुए कहा जा सकता है कि अश्क की कहानियों में रचना की स्वाभाविक स्फूर्ति के स्थान पर 'आयास' की प्रधानता है। रचना-प्रक्रिया की जटिलता को ध्यान में रखकर विचार करें, तो आयास 'रचना' में अनिवार्यतः दोष ही बनता हो, यह मानने का कोई आधार दिखाई नहीं देता। अश्क जब 'चट्टान' कहानी को लक्ष्य कर लिखते हैं : "चट्टान पर मुझे बड़ी मेहनत पड़ी।" छः बार मैंने उसे लिखा......................।" तो संकेत करना चाहते हैं कि कथावस्तु

१—"काल्पनिक कहानियों और यथार्थ जीवन से अनुप्राणित कहानियों के लिखे जाने के 'प्रासेस' में अन्तर है। आधारभूत विचार की काल्पनिकता के साथ ही उसके लिखने का प्रासेस बदल जाता है।"

—कहानी लेखिका और जेहलम के सात तुल : उपेन्द्रनाथ अश्क : पृ० ३७

२— "चांदनी एक रजत-वितान-सी परेड ग्राउण्ड पर फैली हुई थी और सड़कों के नीम जैसे इस वितान को थामे खड़े थे। उनके पत्रों से बिजली के बल्ब टिमटिमा उठते थे, जैसे उनके ऊपर कोई धीमा-सा अलाव जल रहा हो।"

—उबाल : सत्तर श्रेष्ठ कहानियाँ : पृ० ८८।

उनके लिए कच्चा माल नहीं है—रचना की प्रक्रिया में वह एक अर्थपूर्ण अनुभव ही है।

अश्क ने आत्म परिचय लिखते हुये अपने को आत्मनिष्ठ और आत्मकेन्द्रित कहा है, [1] पर अश्क की रचना-प्रक्रिया के अध्ययन से सहज ही जाना जा सकता है कि वे उस अर्थ में आत्मनिष्ठ और आत्मकेन्द्रित नहीं हैं जिस अर्थ में अज्ञेय और उनके समानधर्मा अन्य कहानीकार।

कुछ अन्य महत्वपूर्ण कहानीलेखक

विष्णु प्रभाकर

समस्या का यथार्थ–विश्लेषण तो विष्णुप्रभाकर भी अपनी कहानियों में करते हैं पर एक नैतिक सहानुभूति से प्रेरित होकर कहानियों की परिणति एक मनोहर स्वप्न के रूप में करते हैं। उनकी बहुचर्चित कहानी "धरती अब भी घूम रही है", उनकी रचना–प्रक्रिया की सम्पूर्ण चेतना को व्यक्त करने के लिये एक सार्थक उदाहरण है। रिश्वतखोरी की समस्या पर आधारित इस कहानी में जब नीना न्यायमूर्ति के समक्ष कहती है: मैं एक दो दिन आपके पास रह सकती हूँ" और उसका भाई संकेत करता है: "मेरी जीजी खूबसूरत है और आप खूबसूरत लड़कियों को लेकर काम कर देते हैं," तो कहानी का पाठक एक गहरे–मानसिक आघात का अनुभव करता है। लेखक ने एक संवेदनात्मक हेतु पर आधारित करते हुये कहानी को मानों तीव्र प्रभाव से युक्त करना चाहा है। विष्णुप्रभाकर की अधिकाँश कहानियाँ संवेदनात्मक हेतु पर आधारित हैं। यही उनकी विशेषता भी है, और यही सीमा भी।

चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार 'कहानी' में 'कहानी' के परम्परागत गुणों का सहज विकास प्रस्तुत करना चाहते हैं। यही कारण है कि रचना-प्रक्रिया के प्रति विशेष सचेतनता इनकी कहानियों में लक्षित नहीं होती। इनकी कहा–नियाँ सहज मानवीय संवेदना की कहानियाँ हैं और उनमें 'सहजता' की प्रतिष्ठा के प्रति स्पष्ट आग्रह है। चंद्रगुप्त विद्यालङ्कार ने अपनी रचना-प्रक्रिया

१—आइने के सामने : उपेन्द्रनाथ अश्क : सारिका : नवम्बर, ६२ : पृ० ५७।

का परिचय देते हुये स्वीकार किया है कि वे कहानी की निर्माण-क्रिया में केन्द्रीय भाव का अनुशासन मानकर चलते हैं।[1] यही कारण है कि इनकी कहानियों में अपेक्षित गति एवं त्वरा का अभाव-सा पाया जाता है।

अमृतलाल नागर

अमृतलाल नागर की कहानियाँ कथ्य, प्रयोजन और संवेदना, सब दृष्टियों से यथार्थवादी हैं। जीवन के अत्यन्त सच्चे सन्दर्भों को चुन लेना और उन्हें सम्पूर्ण-सत्यता के साथ अभिव्यक्ति करना इनकी कहानियों का इष्ट है। अमृतलाल नागर नगर के विशिष्ट अञ्चलों के निम्नमध्यवर्गीय जीवन को अपना उपजीव्य मानते हैं। उनकी कहानियों में भी इसी जीवन का चित्रण मुख्यतः पाया जाता है।

भगवतीचरण वर्मा

पहले से लिखते आ रहे हैं लेखकों में वर्मा जी का नामोल्लेख करना एक ऐतिहासिक क्रम का निर्वाह करना ही है, अन्यथा सम्प्रति उन्होंने अपनी सारी चेतना उपन्यासों के सृजन में लगा दी है। सम्भवतः समस्याओं का उनका बोध इतना व्यापक है कि वह 'कहानी' की परिधि में समाविष्ट नहीं हो सकता। इसी प्रकार के अन्य लेखक चतुरसेन शास्त्री भी हैं जिनका रचनाक्रम अभी कुछ पूर्व तक बना हुआ था पर जिनकी रचना-प्रक्रिया में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया है।

रांगेयराघव

स्व० श्री रांगेयराघव अभी तक कहानियों के सृजन में रत रहे हैं। 'गदल' जैसे श्रेष्ठ कहानी का निर्माण करते हुये उन्होंने प्रत्यक्ष किया था, कि रचना-प्रक्रिया यथार्थ संवेदना का चुनाव किस धरातल पर करती है।

१—"मेरी कल्पना में प्रायः सबसे पूर्व कहानी का मूल भाव आता है, कथानक नहीं।..................हाँ कहानी का केन्द्रीय भाव (सेण्ट्रल थीम) अवश्य स्पष्ट रूप से मेरे सम्मुख रहता है। कहानी लिखते हुए उक्त भाव की अभिव्यक्ति के लिए कथानक का मैं निर्माण करता चला जाता हूँ।"

—पहला नास्तिक : चन्द्रगुप्त विद्यालंकार : पृ० ११।

सामाजिक आलोचना प्रस्तुत करने वाली उनकी कहानियों में गहरी अनुभूति प्रत्यक्ष हो सकी है।

अन्य

कहानी लेखकों में फणीश्वरनाथ रेणु, चन्द्रकिरण सोनरिक्सा, भैरव-प्रसाद गुप्त, कमल जोशी, धर्मवीर भारती, अमृतराय, राजेन्द्रयादव, मोहन राकेश, निर्मल वर्मा, शिवप्रसाद सिंह, मार्कण्डेय, कमलेश्वर, नागार्जुन, हरिशंकर परसाई, कृष्णा सोवती, मन्नू भण्डारी, द्विजेन्द्रनाथ निर्गुण, रामकुमार आदि के नाम लिए जा सकते हैं, जिन्होंने आधुनिक हिन्दी कहानी में अनुभव के नाना-संदर्भों की पुनर्रचना करते हुए उसे पर्याप्त विविधता और सम्पन्नता दी है।

प्रस्तुत युग का व्यक्तित्व प्रयत्नों की समग्रता से निर्मित हुआ है, किसी एक लेखक के प्रयत्न से नहीं। यहाँ तो सुविधानुसार, कुछ अति प्रमुख लेखकों की रचनात्मक प्रक्रिया के वैशिष्ट्य का परिचय दिया गया है जिनके आधार पर युग की रचना-प्रक्रिया की समान विशेषताओं का पता लगाया जा सके। यह अनुभव तो हम करते ही हैं कि अनुभूतियों और भावबोधों के अनुसार आधुनिक कहानी में निरन्तर "आधुनिक शिल्प" का विकास होता रहा है।

घ— पूर्व विवेचन के आधार पर प्रस्तुत युग की कहानी का मूल्यांकन

कथानक : रूढ़ि का परित्याग

उत्तर प्रेमचन्द-युग की हिन्दी कहानी के अध्ययन के फलस्वरूप हम अनुभव करते हैं कि इस युग का आधुनिक कहानीकार "कथानक" रचना करते समय भी, कथानक की परम्परागत मान्यताओं को छोड़ देना चाहता है। उसके लिए, प्राचीन कहानी लेखक की भाँति कथानक घटनाओं के संकलन जैसा कोई "कच्चामाल" नहीं है, जिसे वह सतही जीवन के किसी स्तर से उठा सके और "कहानी" में रूपायित कर सके। बल्कि, कथानक, उसके लिए घटनाओं के बीच का एक सूक्ष्म सम्बन्ध है जिसका परिग्रहण कहानी के संश्लिष्ट रचनात्मक विस्तार में प्रवेश किये बिना असम्भव है। कथानक के

विकास के लिए, आधुनिक कहानीकार इसीलिए काल के निश्चित् अनुक्रम की सहायता नहीं लेता।

आधुनिक कहानी रचनाधर्मी इसी दृष्टि से कही जाती है कि कथानक की रूढ़ि उसके लिए रचना का मुख्य आधार नहीं है। रूढ़ अर्थ में "कथानक" जिस घटना-विधान का पर्याय मान लिया जाता है वह आधुनिक कहानीकार के लिए, रचना की उपसृष्टि (बाई प्राडक्ट) है। इसी दृष्टि से आधुनिक कहानीकार "कहानी" की प्रचलित धारणा का निषेध करते हुए प्रतिपादित करना चाहता है कि "कहानी" कहना उसका इष्ट नहीं हैं।[1]

अनुभूति की एक गहरी मनोवैज्ञानिक प्रेरणा प्रेमचन्दोत्तर युग की आधुनिक कहानियों के कथानकों में समानता पाई जाती है। अन्तर इतना ही है कुछ लेखक इसी मनोवैज्ञानिक प्रेरणा की प्राप्ति अधिक सामाजिक स्तर पर करते हैं, और कुछ अधिक वैयक्तिक स्तर पर। पहले प्रकार के कहानी–लेखकों की कहानियों के कथानक इसीलिए अधिक स्पष्ट होते हैं और दूसरे प्रकार के रचनाकारों की कहानियों के कथानक अधिक सूक्ष्म और जब-तब अस्पष्ट होते हैं।

आधुनिक युग की कहानियों के कथानकों की निर्माण-भूमि विविध प्रकार की है अर्थात् वे विषय विविध हैं जो युग की कहानियों के कथानकों का आधार बनते हैं। पर प्रायः इन कथानकों की निर्माण-विधि सांकेतिक अधिक, लक्ष्यात्मक कम होती है। प्रायः कथानक के विकास की दिशा अनिर्णीत जान पड़ती है और समय ही नहीं, स्थान की स्थूल सीमाओं का भी अतिक्रमण करती है। आधुनिक युग की कहानियों में कभी–कभी कथानक-निर्माण का ऐसा स्तर भी दिखाई पड़ता है, जो मूल कहानी के सूत्रों में नहीं, कहानी के किसी दूरगामी सन्दर्भ में निवास करता है।

आधुनिक युग की अधिकाँश कहानियों के कथानक प्रायः परम्परागत घटना-चक्र से हटकर यथार्थ की किसी आभ्यंतर संवेदना पर आधारित होते हैं। प्रायः ही देखा जा सकता है कि कहानियां मनुष्य के अधिक भाव प्रवण

१– "मैं आपको सिर्फ कहानी नहीं, कहानी से कहीं अधिक कुछ सुनाने लगा हूँ।" —ये तेरे प्रतिरूप : अज्ञेय : पृ० ९६।

और संवेदक अनुभवों पर आधारित हैं। जहाँ प्राचीन कहानी में कथा-सन्दर्भ निश्चित, सीमित और लक्ष्यात्मक होते थे, वहाँ, आधुनिक कहानियों के कथा-सन्दर्भ असम्बद्ध और अनिश्चित-से हैं।[1] पर आधुनिक कहानियों के असम्बद्ध और अनिश्चित कथासन्दर्भों का वैशिष्ट्य यह है कि इनके द्वारा रचनाकार जीवन के प्रति अधिक सर्वतोमुखी या परिग्राही दृष्टिकोण की रचना करने में समर्थ होता है। कथा-सन्दर्भों का यह आधुनिक उपयोग आधुनिक कहानियों के कथानकों की आधुनिक निर्माण-विधि का ही नहीं, आधुनिक कहानीकार के रचनात्मक दृष्टिकोण का सूचक है। अज्ञेय की कहानी "मेजर चौधरी की वापसी"[2] कथानक में कथा-सन्दर्भों की अनिश्चित असम्बद्धता के सार्थक उपयोग का उत्कृष्ट उदाहरण है। कथानक के संघटन–कर्त्ता अवयवों को छोड़ कर कहानी कैसी नयी वक्रता ग्रहण कर लेती है, यह विशेषता इस कहानी में उत्कृष्ट रूप में प्रत्यक्ष हो सकी है। हेनरी जेम्म ने तुर्गनेव की रचना-प्रक्रिया का विश्लेषण करते हुए जब संकेत किया था कि तुर्गनेव के लिए कहानी का बीज कथानक का अंग (प्लाट अफेयर) नहीं था,[3] तो प्रकारान्तर से, कथानक–निर्माण के इसी ऋजु और वक्रतायुक्त कौशल की ओर ध्यान आकृष्ट करना चाहा था। इसी प्रकार वर्जीनियां वुल्फ जब अपने रचनात्मक प्रयत्न का लक्ष्य "संवेदनात्मक पहुँच" में सीमित बताती हैं,[4] तो कथानक के सूक्ष्म उपयोग पर बल देना चाहती हैं। आधुनिक हिन्दी कहानी में कथानक–निर्माण की प्रचलित विधि को तोड़ कर ऐसे बहुत से प्रयोग गए हैं जिनका रचनात्मक स्तर सम्पूर्ण आधुनिक है। आधुनिक कहानी का कथानक केवल घटनाओं का प्रमाण नहीं जुटाता, बल्कि मौन के व्यवधान की अभिव्यक्ति का भी माध्यम बनता है[5]

१– : एक शुरुआत : निर्मल वर्मा : नई कहाहियाँ : नवम्बर, १९६०।

२–प्रतीक : द्वैमासिक साहित्य संकलन : २ : पावस अंक।

३– "द जर्म आफ ए स्टोरी, विद हिम, वाज नेवर ऐन अफेयर आफ प्लाट-दैट वाज द लास्ट थिंग ही थाट आफ..........।"

पार्शियल पोर्ट्रेटस : हेनरी जेम्म : ३१४।

४– "इट इज ए मिस्टेक टु थिंक दैट लिट्रेचर कैन बी प्रोड्यूस्ड फ्राम द रा......व्हेन आई राइट आई ऐम मियर्ली ए सेन्सिबिलिटी।"

–ए राइटर्स डायरी : वर्जीनियाँ वुल्फ : पृ० ४८।

५– "फिर मौन। क्या मेरी ओर से कुछ कथन अपेक्षित है? किन्तु किसी

कहा जा सकता है कि कथानक, उत्तर-प्रेमचंद-युग के आधुनिक कहानीकार के लिए केवल "माध्यम" है : माध्यम, जो उसे नयी वस्तु, नये अभिप्राय देता है। अब यह बात "माध्यम" पर निर्भर करती है कि माध्यम कहानीकार को अनुभूति का हर क्षण देता है या जीवन की लम्बी प्रक्रिया की अनुभूति देता है। अज्ञेय की अनुभूत्यात्मक कहानियां जहाँ अनुभूति-क्षण पर आधारित होती हैं वहां जैनेन्द्र की, दार्शनिक चेतना पर और यशपाल तथा अश्क की समस्यामूलक कहानियाँ जीवन के एक सम्पूर्ण दीर्घ अनुभव का चित्र प्रस्तुत करती हैं।

चरित्र-चित्रण : जटिलता का साक्षात्कार

कहानी में "घटनाओं" के निर्णायक चरित्र ही हो सकते हैं और "घटनाओं" का निर्माण कहानी में "चरित्रों" के निदर्शन के लिए ही किया जाता है, अतः माना जा सकता है कि घटना–प्रधान, या चरित्र प्रधान कहानियों के आधार पर कहानी का जो वर्गीकृत विभाजन अब तक किया जाता रहा है, अनुचित है। पर उपर्युक्त विभाजन की संगति का एक आधार यह है कि प्राचीन कहानियों के रचनाकारों ने ही इस विभाजन को मानकर अपनी कहानियों का निर्माण किया है। उपर्युक्त विभाजन का अनौचित्य आधुनिक कहानियों के प्रकाश में आने के बाद से ही अनुभव किया गया है क्योंकि आधुनिक कहानियाँ चरित्रों को परिस्थितियों के अधिक गहरे परिपार्श्व में चित्रित करती हैं और उन्हें रचनाकार के भाव-बोध का वाहक यंत्र नहीं बनने देतीं।

आधुनिक कहानियों में चरित्र-चित्रण की समस्या के अधिक जटिल हो जाने का कारण आधुनिक मनोविज्ञान है, जिसने प्रतिपादित किया कि सहज (नार्मल मनुष्य की मानसिक प्रक्रिया भी कभी-कभी संयवक संरचनात्मकता को, युक्तियुक्त अथवा हेतुमूलक संरचनात्मकता का अतिक्रमण करने देती है [1]

आन्तरिक व्यथा की बात अगर वह कहना चाहते हैं तो मौन ही सहायक हो सकता है, वही प्रोत्साहन है।"

—मेजर चौधरी की वापसी : अज्ञेय : प्रतीक : २ : पावस अंक।

१– 'मार्डन साइकालाजी हैज, हाउएवर, शोन दैट इवुन इन ए नार्मल पर्सन

इसके परिणाम स्वरूप आधुनिक 'कहानी' में साधारण या असाधारण सभी प्रकार के चरित्रों के मनोगत व्यापारों और क्रियात्मक आचरण को अधिक गहराई से देखने की आवश्यकता का अनुभव किया जाने लगा है। यज्ञेय, जैनेन्द्र और किसी अंश तक यशपाल के चरित्रों में इस विरोधाभास की अनुभूति दिखाई पड़ती है।

चरित्र-चित्रण की इस आंतरिक जटिलता की समस्या तो बहुत पहले उपस्थित हुई थी जब वर्जीनियाँ वुल्फ ने अपने निबन्ध 'कैरेक्टर इन फिक्शन'[1] में घोषित किया था कि 'दिसम्बर १९१० में, या उसके आसपास, मानव-प्रकृति बदल गयी। 'दिसम्बर १९१०-वर्जीनियां वुल्फ के लिए यह एक सार्थक तिथि थी जब उत्तर-प्रभाववादी चित्रकारों (वानगाग, पिकासों, मतीस आदि) ने अपनी पहली प्रदर्शिनी लन्दन में की थी। उत्तर-प्रभाववादी चित्रकला प्रभाववादी चित्रकला के प्रकृतवादी यथार्थ की प्रतिक्रिया थी-[2] जिसके परिणामस्वरूप कला और साहित्य में चरित्रों का निदर्शन अधिक आत्मपरकस्तर पर करने की आवश्यकता का अनुभव किया गया। हिन्दी कहानी में चरित्र-चित्रण की इस आन्तरिक जटिलता का साक्षात्कार १९२६ के बाद ही किया गया। 'हंस' में प्रकाशित शमशेर बहादुर सिंह और भुवनेश्वर की कहानियों में यह आन्तरिक जटिलता स्पस्ष्ट रूप में १९३६ के बाद ही देखी गयी थी। इसके कारण अन्य भी हैं, पर प्रमुख कारण यह है कि प्रेमचन्द और उनके अन्य संमकालीन कथाकार चरित्र-चित्रण के इस आभ्यंतर प्रयाण को ह्रासोन्मुख कला-

---

द मेन्टल प्रासेस ऐट वर्क आफुन मेक्स असोसिएटिव स्ट्रक्चर सुपरसीड द लाजिकल स्ट्रक्चर ऐन्ड येट रिमेन्स क्वाइट नेचुरल' -द टेकनीक आफ द माडर्न इग्लिश नावेल :
: शिशिर चट्टोपाध्याय : पृ० ४३।

१–'द क्राइटेरियन' : जुलाई : १९२४।

२–'द एसेन्शियल डिफरेन्स विटविन इम्प्रेशनिज्म ऐन्ड पोस्टइम्प्रेशनिज्म इज पर्हैप्स वेस्ट एक्सप्लेन्ड बाई द डेस्क्रिप्शन आफ द फार्मर ऐज ऐन आब्जेक्टिव आउटलुक ह्विच रेजल्ट्स इन द रेन्डरिंग आफ द इमेज रिसीव्ड आन द रेढिना, ऐन्ड आफ द लैटर ऐज द मेन्टल इमेज ऐक्सप्रेस्ड इन एकार्डेन्स विद ए सब्जेक्टिव आउटलुक '
: इनसाइक्वलोपीडिया ब्रिटानिका : भाग १८ : पृ० ३२०।

प्रवृत्ति मानते थे । आधुनिक कहानी लेखकों में भी सामाजिक या समाजवादी यथार्थ-प्रवृत्ति के कथाकार चरित्र-चित्रण की परम्परागत प्रणाली का उपयोग ही करते हैं । पर इनमें बहुत कम लेखक ऐसे हैं जो कलात्मक-सृजन की प्रक्रिया को गहरे स्तर पर अनुभव करते हों । अस्तु, कहा जा सकता है कि आधुनिक कहानीकारों ने अपनी कहानियों का विकास चरित्रों की आभ्यंतर प्रतिक्रियाओं के निदर्शन के ही आधार पर किया है । अज्ञेय की कहानी 'वे दूसरे', जैनेन्द्र की काहानी 'रत्न प्रभा', इलाचन्द्र जोशी की कहानी 'डायरी के नीरस पृष्ठ', अश्क की कहानी 'चट्टान', राजेन्द्र यादव की कहानी 'खुशबू', नरेश मेहता की कहानी 'तथापि' मोहन राकेश की कहानी 'मिस पाल'-आदि रचनायें इसके लिए प्रमाण हैं । इन कहानियों में चरित्र या तो आत्मावलोकन करते प्रतीत होते हैं [1] या किसी तटस्थ पात्र की प्रतिक्रियाओं का आलम्बन बनते हैं [2] या

१—"यह भीतर प्रतीक्षा कैसी है ? अभिषेक नहीं होना है तो रस इकट्ठा होकर मन को उभार की पीड़ा क्यों दे रहा है ? जब किसी को भी आना नहीं है तो भीतर प्रतिक्षण यह निमन्त्रण किसका ध्वनित हो रहा है ? क्या किसी का भी नहीं ? आंगन पुष्पित प्रतीक्षमाण है, रोज रोज प्रातः सायं में उसे धो देती हूं, आसन बिछा देती हूं । क्या उस आँगन पर चलकर आसन पर अधिकार जमानेवाला सचमुच वह कोई नहीं आनेवाला है ? तब आँगन आप ही आप पुष्पित क्यों उठता है ? आएगा ही यदि कोई नहीं अपने पगचाप से उसे काँपता हुआ, अपने निक्षेप से उस कंपन को मिटाता हुआ, तो क्यों मैं उस अपने वक्ष को रोज रोज आसुओं से धोया करती हूं ? क्यों है यह ? क्या सब व्यर्थ ? सब झूठ ? किन्तु नहीं है व्यर्थ ? नहीं है झूठ । किसी क्षण भी कंटकित हो उठनेवाली मेरी पुष्पित देह मेरी प्रतीक्षा की साक्षी है । और वह प्रतीक्षा ऐसा सत्य है कि मैं कुछ भी और नहीं जानती ।'

—जैनेन्द्र की श्रेष्ठ कहानियाँ (राज० प्रका०) पृ० ८ ।

२—"चलते-चलते मुड़ कर रिवशे की तरफ देखती लड़की की आंखों से सुमेरा की आँखें मिलीं । उनमें भय, झिझक, संकोच कुछ भी नहीं था और जाने क्या था कि सुमेरा का मन भर आया । किसी पेड़ की पत्ती तोड़ दो, तब भी महीन-महीन रेशे दूर तक खिचते चले जाते हैं, वही रेशे सुमेरा को लड़की के चेहरे पर खिंचते लगे । ठिठकती हुई वह फाटक तक गयी,

किसी नैतिक परिस्थति के विश्लेषण का साधन बनते हैं [1]

चरित्र–चित्रण की नयी प्रणालियों के आविष्कृत हो जाने से आधुनिक कहानियों में कभी-कभी चरित्र अनुभव की तात्कालिक चेतना के बोध से इस तरह सम्पृक्त दिखाई देते हैं कि उनके व्यक्तित्व की कोई रूपरेखा दिखाई नहीं देती [2] और कभी कभी लेखक रुककर कहानियों में चरित्र के व्यक्तित्व, आकार तथा स्वभाव का अंकन करता हुआ दिखाई देता है। [3] इसी प्रकार चेतना-प्रवाह (स्ट्रीम आफ काँशसनेस)–पद्धति ने आधुनिक लेखन में चरित्र को समय और स्थान से मुक्त, निरपेक्ष रूप में देखने की क्षमता दी है। [4]

कुल मिलाकर, यद्यपि आधुनिक कहानी में अन्तर्मुखी दोनों कोटि के चरित्रों का उपयोग किया गया है, पर कलात्मक श्रेष्ठता और संवेदनप्रवणता का निर्वाह अधिकतर उन कहानियों में ही हुआ है, जिनके चरित्र अन्तर्मुख हैं। जिन कहानियों में चरित्र आग्रहपूर्वक बहिर्मुखी हैं, वे प्रायः किसी सैद्धा-

---

फिर मुड़कर देखा, लड़का भी पिछला पल्ला उठाकर देख रहा था।··· मरे मरे हाथों से फाटक का कुँडा छूटकर दूसरी तरफ जा गिरा। तब रिक्शा मुड़ गया। काँच के फलक पर चलती चटखन की तरह सुमेरा के मन में उदासी तैरती चली गयी।···''

—खुशबू : छोटे–छोटे ताजमहल और अन्य कहानियाँ · राजेन्द्र यादव. पृ० १९५।

१– : मिस पाल : एक और जिन्दगी : मोहन राकेश : पृ० ५८।

२–पठार का धीरज : जयदोल : अज्ञेय : पृ० ९।

३–'यह ललिता भी हमारे घर में अजीब ही लड़की है। कुछ पार ही नहीं मिलता। कुछ समझ ही नहीं पड़ती। जाने कैसे फर्स्ट क्लास में मैट्रिक पास कर गई। पता नहीं पड़ता, जब पढ़ने में इतनी होशियार है तो व्यावहार में क्यों ऐसी अल्हड़ है। उसे किसी बात की समझ ही नहीं है। लोग कुछ कहें, कुछ समझें जो समझा उसे वह कर ही गुजरती है। नौकर हो सामने, और चाहे अतिथि बैठे हों,–उसे जोर की हंसी आती है, तो वह कभी न उसे रोक सकेगी। गुस्सा उठेगा तो उसे भी बेरोक निकाल बाहर करेगी।"

—व्याह : जैनेद्र की श्रेष्ठ कहानियाँ : वातायन : पृ० ७१

४– द नावेल ऐन्ड द माडर्न वर्ल्ड : डेविड डैचेस : पृ० २४।

न्तिक मतवाद के वाहक रूप में हैं, अतः स्वाभाविक रूप से उनका विकास हो नहीं पाया है।

आधुनिक कहानियों में व्यक्त चरित्र-चित्रण की विभिन्न पद्धतियों को देखते हुए हम इस बात पर बल देना चाहेंगे कि किस कहानी का कौन सा चरित्र सच्चा चरित्र है, इसे अपनी निजी रुचि और आग्रह से नहीं जाँचना चाहिए। इसका समुचित निर्धारण एक कठिन समस्या है और अधिक रचनात्मक आधार पर ही यह विचारणीय है। अन्तर्मुखी चरित्र ह्रासोन्मुख और बहिर्मुखी चरित्र स्वस्थ होते हैं, यह एक भ्रान्त धारणा है जो एक सीमित मतवाद पर आधारित समीक्षाप्रणाली के प्रवर्तक आलोचकों द्वारा प्रचारित है।

वातावरण : सार्थक उपयोग

आधुनिक कहानी में 'वातावरण' की परिकल्पना और उसकी अनुभूति इस लिए महत्वपूर्ण नहीं समझी जाती, कि वह कहानी में किसी कुतूहलपूर्ण ऐन्द्रजालिकता का 'उद्दीपन' बन सके, बल्कि उसका महत्व ऐसे परिप्रेक्ष्य के सृजन की दृष्टि से स्वीकृत होता है जिसमें चरित्र, चरित्रों के सम्बन्ध और उनके संवेदक अनुभव सच्ची तीव्रता से व्यक्त हो सकते हों। वातावरण-चित्रण का ऐसा सार्थक उपयोग आधुनिक युग की कुछ श्रेष्ठ कहानियों में सहज ही देखा जा सकता है।[1]

१—(क) 'उस लड़की की दीवार का एक अपना ही व्यक्तित्व था। जगह जगह उस पर कीलों और चाकुओं से तरह-तरह की लिपियाँ खोदी गई थीं। शब्दों की आकृतियाँ कुछ ऐसी थीं कि कहीं तो लगता था कि दीवार मुस्करा रही है और कहीं लगता था कि मुँह बिचका रही है।—जाने कब कब किस-किसने किस-किस उद्देश्य से वे आकृतियां बनाई थीं। एक गोल चेहरा था जो चेहरा न होकर किसी जानवर का पेट भी हो सकता था। एक ऊद बिलाव की आंख थी जो सारी दीवार पर अपनी मनहूस छाया डाले थी और एक गहरा जख्म था, जो दीवार को छीलने असफल प्रयास में वहाँ बन गया था...।"

—आदमी और दीवार, एक और जिन्दगी : मोहन राकेश : पृ० ९६–९७।

आधुनिक कहानियों में प्राप्त वातावरण–चित्रों को देखकर यह बोध अनिवार्यतः होता है कि उनके पीछे चित्रण की अलंकृति का कोई प्रलोभन नहीं है, जैसा आधुनिकता के प्रवेश युग, अर्थात् प्रेमचन्द–युग की कहानियों में भी प्रायः देखा जा सकता है। विकास काल के आधुनिक कहानीकार के लिए वातावरण की परिकल्पना का अर्थ है यथार्थ–सन्दर्भ की परिकल्पना।[1] शब्दों की सम्पूर्ण सच्चाई के संघटन से जो भाषा बनती है, उसका उपयोग करते हुए आधुनिक कहानीकारों ने सजीव वातावरणों की सृष्टि अपनी कहानियों में की है। निश्चय ही वातावरण–सृष्टि की दिशा में इस गहरी अन्तर्दृष्टि का उपयोग श्रेष्ठ कहानियों में ही मिलेगा, सभी कहानियों में नहीं। वातावरण से अपने तात्कालिक अनुभव का समवाय सम्बन्ध स्थापित करने के लिए जो रचनात्मकता अपेक्षित है, वह भी श्रेष्ठ कहानीकारों की सृजन–प्रक्रिया का ही अंग है। आधुनिक कहानीकारों के अनुसार वातावरण-प्रधान कहानियों की संभावनाएँ अपरिसीम इसलिए हैं कि वे "स्थूल सत्य" में सीमित नहीं हैं।[2]

जैसा हमने पहले संकेत किया है, आधुनिक कहानियों में उद्भावित और चित्रित "वातावरण" अपने सहजीवी चरित्रों के जटिल अनुभवों का

(ख) "लाल पीली छतों से धुआं, शरमाया-शरमाया सा उठता हुआ छितरा रहा था। इस बीच स्कूल की उत्सवप्रियता समाप्त हो चुकी थी। डलहौजी पर जैसे सन्नाटा छाया हुआ था। हवा थम चुकी थी। ठण्ड जैसे जमी जा रही थी। नीचे तलहटी में डिफेन्स कार्यालय का गुम्बद आस-पास के मकानों में स्केच बना हुआ था।..."

–निशा जी, तथापि : नरेश मेहता : पृ० ३२।

१– "जीवन के नये सन्दर्भ अपने वातावरण से दूर कहीं नहीं मिलेंगे, उस वातावरण में ही ढूंढ़े जा सकते हैं।"

–कहानी : नये सन्दर्भों की खोज : एक और जिन्दगी :
–मोहनराकेश : पृ० १६।

२– "मैं मानता हूँ कि वातावरण प्रधान कहानियाँ अनिष्ट और अनुपयोगी नहीं हैं। बल्कि चूँकि उनमें हाड़ माँस की देह नहीं है इसलिए हो सकता है कि उनकी उम्र भी शायद अधिक ही हो।"

–साहित्य का श्रेय और प्रेय : जैनेन्द्र : पृ० ३४४।

सहभोक्ता होता है, निरा उद्दीपन वह नहीं होता। आधुनिक कहानी का नायक जब अपने कमरे की खिड़की से दूर-दूर तक फैला हुआ मैदान, पतझड़ में जमीन से लिपटी हुई एक अजीब सुगन्धि बिखेरते हुए यूक्लिप्ट्स के पेड़ और शाम का सांय-सांय करता सन्नाटा देखा करता है [1] तो मानों बाहर फैले हुए वातावरण के दृश्य पट पर अपने को स्थापित करना चाहता है और उसे अपनी अनुभूतियों का सहभोक्ता बनाना चाहता है।

संवेदना

कहा जा सकता है कि आधुनिक कहानीकारों की रचनात्मक संवेदना, जिसने कहानी की परम्परागत वर्णनात्मकता एवं चरित्र–चित्रण की परम्परागत पद्धति को समूल बदल दिया, इन्द्रिय बोधों की सूक्ष्म चेतना से संघटित है। यथार्थ के प्रत्यक्ष दबाव की अनुभूति जिस सीमा तक इस संवेदना का अंग है, उससे कहीं अधिक, मनोवैज्ञानिक चेतना का प्रभाव इस संवेदना पर देखा जा सकता है।

जागरूकता के विविध स्तर और चेतना के विभिन्न लक्षण इस विशेष रचनात्मक संवेदना के निर्माण में कितने सहायक होते हैं, इसका अनुमान उत्तर प्रेमचन्द-युग की कुछ श्रेष्ठ कहानियों को पढ़ते हुए किया जा सकता है। पर रचनात्मक संवेदना का यह श्रेष्ठ स्तर वहीं दिखाई देता है जहाँ लेखक निर्वैयक्तिक चेतना से युक्त हो। यदि वह कहानी में व्यक्त संवेदनात्मक प्रति–क्रियाओं में स्वयं रस लेने लगता है तो उपर्युक्त श्रेष्ठता बाधित होती है। अश्क की अधिकाँश कहानियों में यह बाधा उपस्थित होती है। फ्लाबेयर ने मदाम बावेरी के सम्बन्ध में अपनी कला चेतना से सम्बन्धित कुछ प्रश्नों का विश्लेषण करते हुए लिखा है कि रचनाकार रचना में दिखाई नहीं देना चाहिए, अनुभव किया जाना चाहिये। [2] कहना न होगा कि यह स्थिति रचनाकार के निर्वैयक्तिक होने से ही आती है। अज्ञेय की कुछ कहानियों में [3] संवेदना का यह आधुनिक धरातल अपने उत्कृष्ट रूप में देखा जा सकता है।

१– यात्रा : रामकुमार : सारिका : अक्तूबर, १९६२, पृ० १५।

२– द आर्टिस्ट शुड बी इन हिज वर्क, लाइक गाड इन क्रिएशन, इनविजिबुल ऐण्ड आल पावरफुल, ही शुड बी फेल्ट एव्री ह्वेयर ऐण्ड सीन नो ह्वेयर, ऐण्ड देन आर्ट शुड बी रेज्ड एबव पर्सनल अफेक्शन्स ऐन्ड़ नर्वस ससेप्टिबिलिटीज।" –द सेलेक्टेड लेटर्स आफ –फ्लावेयर : पृ० १८६।

३– "पठार का धीरज" तथा "वे देसरे" : जयदोल : अज्ञेय।

ड— उपलब्धियां और सीमाएँ

यथार्थ की प्रतिष्ठा का प्रश्न : यथार्थ के विविध रूप

कला और साहित्य में यथार्थ की प्रतिष्ठा का प्रश्न कोई नया प्रश्न नहीं है। सभी युगों के संवेदनशील रचनाकारों के समक्ष यह प्रश्न रहा है और सबने सपने समय और समय के भावबोध की सीमाओं के अनुसार इस प्रश्न का समाधान ढूँढ़ने का यत्न भी किया है। यही कारण है कि यथार्थ की उद्भावना रचना में किस रूप में की जाय, इस सम्बन्ध में मतैक्य का अभाव पाया जाता है। आधुनिक परिस्थितियाँ एक ऐसे संक्रान्तियुग की उपज हैं,[1] जिसके यथार्थबोध की जटिलताओं का संघर्ष अपने चरम उत्कर्ष पर है। एक ओर प्राचीन मूल्य-मर्यादायें विघटित हो रही हैं दूसरी ओर नयी मर्यादाएँ विकासोन्मुख हैं, एक ओर यदि मानवीय सम्वन्ध किसी तात्कालिक प्रतिक्रिया से टूट रहे हैं, तो दूसरी ओर नये मानव-सम्बन्ध बन रहे हैं, एक ओर साम्राज्यवादी सताएँ विघटित हो रही हैं, दूसरी ओर नये राष्ट्रों की स्वाधीनताप्राप्ति से नये आशावादी मानववाद का जन्म हो रहा है- और इसी प्रकार इस द्वन्द्व के बहुत से पक्ष हमारे सामने हैं जिन्हें देखकर आज की केन्द्रीय वास्तविकता का अनुमान किया जा सकता है। पर कला "वास्तविकता" का चित्रण तात्कालिक तथ्यों के प्रकाश में नहीं, उसके ऐतिहासिक सन्दर्भ में करती है और यथार्थ कला के लिए बाहरी ही नहीं, भीतरी भी होता है। आज तो यथार्थ-चित्रण की दिशा में कला का दायित्व और भी बढ़ गया है क्योंकि जीवन की धड़कन निरन्तर तीव्र होती जा रही है। अस्तु,

---

१ -"साहित्य, संस्कृति के पुजारियों तथा मूल्यों के जिज्ञासुओं को बाहर के साथ ही अपने भीतर भी खोज करनी चाहिए, सामाजिक धरातल को संवारने से पहले मानसिक धरातल का संस्कार कर लेना चाहिए-विशेष कर ऐसे संक्रमण-काल में जब ह्रास और विकास, पतझर और बसन्त की तरह, साथ ही साथ नवीन वृत्त संचरण के रथ-चक्रों में घूम रहे हैं।..........उनके लिए मूल्य या मान्यताओं का प्रश्न केवल बौद्धिक संवेदन का ही प्रश्न नहीं है, वह उनके आत्मनिर्माण, मनोविन्यास तथा उनकी सृजन-तन्त्री की साधना का आधार भूत अंग भी है।"

-शिल्प और दर्शन : सुमित्रानन्दन पन्त : पृ० ३१८।

प्रश्न यह नहीं है कि यथार्थ का चित्रण करते हुए कहानियों का निर्माण किया जाय या नहीं, बल्कि यह, कि किस रूप में यथार्थ का चित्रण किया जाय। मूल्याँकन की दिशा में विचारणीय प्रश्न यह होगा कि आधुनिक कहानी में यथार्थ–चित्रण की किन प्रणालियों या पद्धतियों का उपयोग किया गया है और उनमें कहाँ असंगति और कहाँ अनुकूलता दिखाई देती है। प्रेमचंद-युग की कहानियों में यथार्थ–चित्रण की उपेक्षा नहीं की गयी है पर यथार्थ का इतना जटिल रूप उन कहानियों का अंग नहीं है जितना आधुनिक "कहानी" में दिखाई देता है।

आधुनिक हिन्दी कहानी में जिन नये सन्दर्भ स्तरों का सर्वतोमुखी विकास परिलक्षित होता है उसके मूल में यथार्थ का आग्रह ही है। यथार्थ के अधिक अनुभवगम्य और संवेदकस्तरों की उद्भावना करती हुई आधुनिक कहानी यथार्थ के संश्लिष्ट सम्बन्धों का उद्घाटन जिस स्तर पर करती है, वह प्राचीन कहानी में सहज प्राप्य नहीं है।

यथार्थ-बोध और यथार्थवाद

कहानी और अन्य साहित्य–रूपों में व्यक्त यथार्थबोध इसी आधार पर स्थित होता है कि पाठक को रचनाकार के जीवनानुभवों से परिचित करा सकें,[1] जब कि यथार्थवाद कला और साहित्य में यथार्थ के आग्रह पर बल देनेवाला एक दार्शनिक मतवाद है : युग के सन्दर्भों और कलात्मक मूल्यों के परिवर्तन से कई स्तर वैचारिक जगत् में विकसित हो सके हैं। इन स्तरों में प्रमुख हैं : सामाजिक यथार्थ, मनोविश्लेषणात्मक यथार्थ, प्रकृत यथार्थ, अतियथार्थ आदि।

दर्शन और मनोविज्ञान के क्षेत्र में उपलब्ध विभिन्न व्याख्याओं के अनुसार 'यथार्थवाद' आदर्शवाद विरोधी दृष्टिकोण का नाम है जो "वस्तुओं" को 'वस्तुओं' के रूप में चित्रित करने की व्यक्तिनिष्ठ प्रणाली का विकास करता है,[2]

१– "द रिवोल्यूशनरी टास्क आफ लिट्रेचर टु डे इज टु......ब्रिंग द क्रिएटिव राइटर फेस टु फेस विद हिज वोन्ली इम्पार्टेन्ट टास्क, दैट आफ विनिंग द नालेज आफ ट्रुथ, आफ रियलिटी।"

–द नावेल एन्ड द पिपुल : राल्फ फाक्स : पृ० ७६।

२– डिक्शनरी आफ फिलासफी ऐन्ड साइकालाजी : सम्पादक

–जेम्स मार्क बाल्डविन : पृ० ४२४।

जब कि साहित्य-क्षेत्र में यथार्थवाद की मुख्य समस्या, सम्पूर्ण मानव व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति,[1] मानी गयी है।

प्रकृतवाद और यथार्थवाद के बीच भी दार्शनिक स्तर पर बड़ा भेद माना जाता है। यथार्थवाद का परिचय देते हुए कहा जाता है कि वह व्यक्ति के लिए जो अपरिहार्य है, उसका चित्रण करता है अथवा व्यक्ति के प्रतिबोध का निदर्शन करता है, तथा प्रकृतवाद व्यक्ति के लिए जो अपरिहार्य है तथा जो नैमित्तिक है, उसमें अंतर नहीं करता।[2] आर० एच० सैमुएल के अनुसार—यथार्थवाद का उद्देश्य रूप और सत्य की संगति स्थापित करना होता है, वहाँ प्रकृतवाद अभिजात वर्ग और मानव प्रकृति की कमियों पर आघात करते हुये सामाजिक परिस्थितियों के चित्रण की आवश्यकता पर बल देता है।[3] वाल्टर एलेन ने साहित्य में प्रकृतवादी आन्दोलन को चित्रकला के प्रभावादी आन्दोलन का पर्याय कहा है।

अतियथार्थवाद की दार्शनिक पृष्ठभूमि हमें हीगल के विचार-दर्शन में प्राप्त होती है। यह आन्दोलन अतीत के सौन्दर्यशास्त्र की सभी मान्यताओं का विश्लेषण और मूल्यांकन नये आधार पर करना चाहता है। कलाकार की पूर्ण उन्मुक्ति (ऐब्सोल्यूट फ्रीडम) के समर्थक इस मतवाद की जन्मभूमि फ्रांस है और सम्प्रति आधुनिक चित्रकला पर इसका प्रभाव सर्वाधिक है। युद्ध जनित संकट के फलस्वरूप समस्त सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति अनास्था और आक्रोश, साहित्य के क्षेत्र में अस्तित्ववादी आन्दोलन की ही देन है।

१— प्रिफेस : स्टडीज इन योरोपियन रियलिज्म : जार्ज ल्यूकास : पृ० ७।

२— डिक्शनरी आफ फिलासफी ऐण्ड साइकालाजी, सम्पादक : बाल्डविन : पृ० १३८।

३— "ह्वाइल रियलिज्म स्ट्रोव फार ए हारमनी आफ फार्म ऐण्ड ट्रुथ इन लिट्रेरी अचीवमेंट, नेचुरलिज्म कन्सेन्ट्रेटेड अपान दे डेपिक्शन आफ सोशल इनवायरनमेंट स्ट्रेसिंग द डिफेक्शन्स आफ ह्यूमन नेचर ऐण्ड आफ बूर्जुवाज सोसायटी।"

—कौसिल्य इन्साइक्लोपीडिया आफ लिट्रेचर : भाग १ : सं० एस० एच० स्टीनवर्ग : पृ० ३७७।

४— द इंगलिश नावेल : वाल्टर एलेन : पृ० २८२।

मनोविश्लेषणात्मक यथार्थवाद, यथार्थवाद की प्रचलित मान्यताओं की प्रतिक्रिया पर आधारित है। यथार्थवाद की प्रचलित मान्यताओं के अनुसार जहाँ आर्थिक सामाजिक राजनीतिक व सांस्कृतिक परिस्थितियों के समुच्चय को [1] सामाजिक यथार्थ की संज्ञा दी जाती है, वहाँ मनोविश्लेषणात्मक यथार्थवाद मनुष्य की बाह्य परिस्थितियों के प्रभाव को अस्वीकार करता है और मनुष्य के मानसिक जगत् के भीतर ही यथार्थ की सम्पूर्ण-व्याप्ति का अनुभव करता है।

साहित्य में यथार्थवाद के समुदय की पृष्ठभूमि को समझने के लिये आधुनिक विश्व-कथा साहित्य की पृष्ठभूमि को समझना आवश्यक है। विश्व कथा साहित्य के मूल्यगत विकास की दिशाओं का सर्वेक्षण करते हुये हम अनुभव करते हैं कि विक्टर ह्यूगो से लेकर रोमारोलां तक के कथाकारों ने जो आदर्श मूल्य विकसित किये थे वे आगे चलकर विघटित हो गये। आगे जो प्रवृत्तियाँ साहित्य में सामने आयीं उनमें पहली प्रवृत्ति जोला के यथार्थवाद की थी, जिसका उद्देश्य 'प्रकृतवाद' के ही अधिक समीप था। साहित्य में यथार्थवाद की परम्परा तुर्गनेव, तालसताय और दास्टाएव्सकी ने स्थापित की। इन कथाकारों ने जीवन के सर्वतोमुखी चित्रण की सम्भावना को प्रत्यक्ष कर एक स्वस्थ रचनात्मक संवेदना का विकास किया। इस यथार्थवादी साहित्यधारा के मूल में एक सम्पूर्ण मानववादी आस्था थी। जिसके समक्ष 'प्रकृतवाद' का आदर्श बड़ा हीन प्रतीत होता है। जिस समय रूस में इस नयी उपन्यास-कला की परम्परा का उदय हो रहा था, पश्चिमी योरोप में फ्रायड ने मानसिक जगत् के गूढ़ जटिल प्रश्नों का विश्लेषण करते हुये एक नयी पद्धति का समारम्भ किया। फ्रायड, एडलर तथा युंग ने मानव मन की भीतरी समस्याओं के विश्लेषण की दिशा में जो मूल्य स्थापित किए, उनका परिचय हम पहले दे चुके हैं। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि मनोविश्लेषणात्मक यथार्थवाद की नींव इन मनोविश्लेषणवादी चिन्तकों ने डाली, जिसे परवर्ती कथाकारों ने अधिक रचनात्मक दिशायें दीं। विलियम जेम्स के चेतना-प्रवाह-सिद्धान्त का उपयोग करते हुये रिचर्डसन, जेम्स ज्वाइस, वर्जीनिया वुल्फ आदि ने जिस आभ्यन्तर प्रयाण (इनवर्ड टर्निग) की पद्धति का विकास अपनी कथाकृतियों में किया, उससे मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद को एक उचित दिशा मिली। और अब, सात्र, क्रिर्केगार्ड और

१- हिन्दी साहित्य कोश : पृ० ८४०।

यास्पर्स ने 'अस्तित्ववाद' के माध्यम से जीवन के तात्कालिक सम्बन्धों की यथार्थता को अधिक सीमित भूमि पर समझने–समझाने का यत्न किया है।

हिन्दी-कहानी और यथार्थ के बोध की दिशा

हिन्दी–कथा-साहित्य में दो ही प्रकार की यथार्थवादी प्रवृत्तियाँ विकसित हो सकी हैं—जिनमें एक को सामाजिक यथार्थवाद और दूसरी प्रवृत्ति को मनोवैज्ञानिक या मनोविश्लेषणात्मक यथार्थवाद की संज्ञा दी गयी है। मनोविश्लेषणात्मक यथार्थवाद को ही कभी-कभी वैयक्तिक यथार्थवाद भी कहा जाता रहा है। इस सन्दर्भ में सामाजिक यथार्थबोध को ग्रहण करने वाले रचनाकारों ने व्यक्ति को समाज की इकाई में मानकर प्राय: उसके वर्गाश्रित स्वभाव की व्याख्या की है और अधिक व्यापक आधार पर वर्ग–विषमता के कारणों और प्रभावों की सामाजिक व्याख्या प्रस्तुत की है। यह कार्य हिन्दी-कहानी में अधिक व्यापक स्तर पर प्रेमचन्द ने किया था और आगे, यशपाल आदि कहानी लेखकों ने इस परम्परा का विकास किया है। तथा, व्यक्तिवादी या मनोविश्लेषणावादी कहानीकारों ने मनुष्य के मानसिक जगत् की अधिक गूढ़ और आभ्यन्तर प्रतिक्रियाओं कथा संवेदनाओं का चित्रण करने का प्रयास किया। यशपाल के समानधर्मा अन्य कहानीकार हैं, पहाड़ी, अश्क, नरोत्तम नागर, चन्द्रकिरण सोनरिक्सा, अमृतलाल नागर आदि। तथा दूसरी कोटि के लेखकों में अज्ञेय जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी आदि अग्रणी कहानीकार हैं।

आधुनिक हिन्दी–कहानी में यथार्थबोध की सीमायें

आधुनिक हिन्दी-कहानी में यथार्थबोध के चित्रण की सीमाओं के दो महत्वपूर्ण पक्ष हैं। एक ओर कुछ प्रगतिवादी लेखकों ने जहाँ मान लिया है कि यथार्थ भावना का सारा अस्तित्व वर्ग–विषमता के ऊपरी आधारों के निरूपण में सीमित है,[1] वहाँ कुछ कहानीकार अस्तित्व के सामाजिक आधार को छोड़ कर बहुत ही सूक्ष्म अतिरञ्जक कल्पना (फैन्टेसी) का उप–योग करना चाहते हैं।

१– "द प्राग्रेसिविस्ट्स रैन अवे विद द थीसिस दैट प्रेमचन्दस डेवलप-मेन्ट फ्राम रिफार्मिस्ट रैशनलिज्म टु रियलिस्टिक अन्डरस्टैंडिंग आफ सोशल कान्फ्लिक्ट वाज़ टोटल ऐक्सेप्टेन्स आफ द डाक्ट्रिन आफ़ क्लास

"पूर्व अनुभूतियों की पुनर्योजना से अपूर्व की अनुभूति उत्पन्न करने की शक्ति" कल्पना की शक्ति मानी जाती है।[1] इसी का आत्यंतिक उपयोग रचना में "फैन्टेसी" या "विलक्षण कल्पना" का उपयोग माना जाता है। प्रत्यक्ष है कि इस तत्व का उपयोग कहानी के रचनात्मक प्रयोजन की अधिक स्पष्ट पूर्ति की दिशा में भी किया जा सकता है और इसके उपयोग से, कहानी में कथा, चरित्र, वातावरण और संवेदनात्मक लक्ष्य सब का निषेध करते हुए एक अर्थहीन अस्पष्टता की भी सृष्टि की जा सकती है। काफ्का ने "मेटामार्फसिस" कहानी में इस घटना का उल्लेख करते हुए कि "वह व्यक्ति जब सो कर उठा तो उसने अपने को भुनगे के रूप में पाया", अस्तित्व के अति महत्वपूर्ण प्रश्नों को एक सुनिश्चित सन्दर्भ में उठाने की चेष्टा की है और आधुनिक बोध से सम्पन्न पाठक के लिए उसने अपनी कहानी को ऐसी सार्थकता दे दी है कि पाठक कहानी में व्यक्त सन्दर्भों को आधुनिक दृष्टिक्रम के अनुसार रूपांतरित कर सकता है। इसके विपरीत जैनेन्द्र की "नीलमदेश की राजकन्या" आदि कहानियां एक अस्पष्ट परिणति के साथ समाप्त होती हैं। कठिनाई यह है कि इस वायवी अस्पष्टता को ऐसे लेखक अपने लिए "यथार्थ" मानते हैं।[2]

वार, ऐन्ड कम्प्लीटली इगनोर्ड हिज़ रियल कन्ट्रीव्यूशन टु द ग्रोथ आफ हिन्दी नावेल––द कैरेक्टाइजेशन आफ आथेन्टिक इन्डिविडुएल्ज"

–एस०एन्न० वात्स्यायन : कन्टेम्पोरेरी इन्डियन लिट्रेचर : पृ० ८७।

१–हिन्दी साहित्य कोश : पृ० २०६।

२–"कुछ कहानियाँ हैं जो मानो न वस्तु पर और न व्यक्ति पर ही लिखी गई हैं। एक बार मुझे ख्याल है कि संध्यानंतर अकेले सूने मैदान में से जाते हुए मुझे अपनी चेतना पर एक अजब तरह का दबाव अनुभव हुआ था। था कहीं कुछ नहीं, तो भी एक डर लगा। बाहर का "न कुछ" ही जाने "क्या-कुछ" हो गया था। और उसकी सीधी प्रतिक्रिया मेरे अन्तर मानस पर होती थी। मैं तेज चलने लगा था और साँस फूलने लगी थी। छाती धक धक कर आयी थी। वह एक ऐसा अनुभव था कि कुछ देर और टिकता और अधिक तीव्र होता तो उसके नीचे जान ही सुन्न पड़ गई होती। कोरे डर से जाने कितने मर गए हैं। यह डर, जिसे कोरा कहते हैं, क्या है ? वह कुछ है अवश्य। और मानों उसी का संचेतन भाव से पुनः स्पर्श पाने के लिए मैंने एक कहानी लिख दी।

यथार्थ की चेतना का अस्तित्व : रचना-प्रक्रिया का सम्बन्ध

यथार्थबोध के आग्रह के परिणामस्वरूप हिन्दी की आधुनिक कहानी में जिन विशेषताओं का समावेश हुआ, उनमें प्रमुख है व्यक्ति को एक सामाजिक सन्दर्भ में चित्रित करने की चेतना। अधिक सूक्ष्मता से देखने पर ज्ञात होगा कि यह विशेषता रचना-प्रक्रिया से निरपेक्ष नहीं है, बल्कि उसके भीतर से उद्भूत है। यथार्थ की चेतना का अस्तित्व स्वीकार करते हुए अनायास ही रचनाकार कृति में अपने अनुभव के संश्लिष्ट चित्रण, और इस अनुभव की ऐतिहासिक चेतना के पाठक के मन में रूपान्तरण आदि प्रश्नों के प्रति सचेत हो जाता है। आधुनिक कहानी में नये यथार्थ की प्रतिष्ठा होने के साथ ही, रचना-प्रक्रिया के प्रति सचेतनता बढ़ी है, यह आकस्मिक नहीं है। इसके पीछे कला का एक व्यापक सामाजिक अभिप्राय निहित है। भगवतीचरण वर्मा के अनुसार कहानी को "कला" में स्थापित होने की क्षमता यथार्थवाद के कारण ही मिली।[1]

उसमें तो पात्र भी नहीं है, घटना भी नहीं है, केवल मात्र वातावरण है। उसमें प्राणी हैं तो प्रेत के मानिन्द, जिनमें देह है ही नहीं और वे निरे वहम के बने हैं। ऐसी कहानियों में सोते, पेड़, बिछी घास, बहता पानी, सूना विस्तार, रुकी वायु, टिका आस्मान, मटमैला अंधियारा, यही जैसे व्यक्तिगत संज्ञा धारण कर लेते हैं। ऐसे में धरती आसमान से बातें करने लगती है और जो अचर है वह भी मनुष्य की वाणी बोलने लगता है।

क्या मुझे मानना होगा कि जहाँ पेड़ और पौधे और चिड़ियाँ आदमी की बोली में बोलते हैं, वह कहानी अयथार्थ है? क्या वह एकदम असम्भव इसलिए व्यर्थ वस्तु है? हो सकती है वह असम्भव और अयथार्थ। और किसी के लिए तो वह एकदम व्यर्थ-भी हो सकती है। पर डर भी तो अयथार्थ ही है। पर जो डर के मारे मर तक गया है उसकी मृत्यु ही क्या उसके निकट उस डर ले अत्यन्त यथार्थ होने का प्रमाण नहीं है।"

—"अपनी कैफियत" : साहित्य का श्रेय और प्रेय : पृ० ३४३।

१—"कहानी को स्वयं अपने बल कला एवं साहित्य में स्थापित होने की क्षमता यथार्थवाद के कारण मिली......।"

—कहानी के तत्व : भगवतीचरण वर्मा : आजकल : मई, १९६२।

आधुनिक कहानी के विकास की विभिन्न धाराओं को देखते हुए यह जानना सहज है कि आज का श्रेष्ठ कहानीकार यथार्थ के बृहत्तर बोध को स्वीकार करते हुए, सामाजिक जीवन में नित्य बनने तथा बदलने वाले सम्बन्धों को स्मृति तथा कल्पना द्वारा रचना में रूपान्तरित करता है और फिर उसे समुचित तीव्रता के साथ पाठक तक सम्प्रेषित करने की स्वाभाविक कामना से स्वयं रचना से अलग हो जाता है। अज्ञेय की कहानी "पठार को धीरज"[1] में अनुभूति के यथार्थबोध की यह प्रक्रिया देखी जा सकती है।

यथार्थबोध से सम्पन्न आधुनिक कृतिकार की कहानी में जीवन दृष्टि का निश्चित आभास मिलता है। यह आधुनिक कहानी की नयी उपलब्धि है जो यथार्थ के महत्व-स्वीकार के कारण ही संभव हो सकी है। आधुनिक कहानी का यह अपूर्व वैशिष्ट्य ध्यान देने योग्य है, कि उसमें रूप, वस्तु, भाषा, वातावरण, संवेदना का एक समवाय संघटन दिखाई पड़ता है। सूक्ष्मता से विचार किया जाय तो यह विशेषता भी यथार्थबोध के दबाव का परिणाम जान पड़ेगी। चरित्रों के व्यक्तित्व की सम्पूर्ण चेतना की निर्वैयक्तिक अभिव्यक्ति : यह विशेषता भी आधुनिक कहानी में यथार्थ-बोध के महत्व-स्वीकार के परिणाम स्वरूप ही आयी है। आधुनिक कहानी के चरित्र-चित्रण की यह सार्थक दिशा है कि चरित्र अपने अनुभवों का विश्लेषण स्वयं बड़े तटस्थ भाव से करते हैं।[2] इसी प्रकार वातावरण को अनुभूति का विषय बनाकर कहानी में उसका चित्रण करना आधुनिक कहानी की ऐसी विशेषता है जो यथार्थ की प्रतिष्ठा के प्रश्न को रचना-प्रक्रिया का प्रश्न मनाने की रचनात्मक भावना के साथ आयी है।

१—जयदोल : अज्ञेय : पृ० ९।

२—"अंग-अंग में शक्ति देती हुई धूप जहाँ कबूतर चुग रहा है वहाँ को और यहाँ को, जहां मैं बैठा हूँ, छाये हुए है, और वह कबूतर वहां है। वह वहाँ बड़ी देर से है। मैं उसे देर से देख रहा हूँ। मैं प्रतिकृत हूँ।

छत पर बिल्कुल एकान्त है। कोई नहीं है। सहसा लगता है कि सिर्फ हम दो हैं, एक मैं और एक कबूतर। वह आज फिर आ गया है। वही है वह। क्या मुझे चीन्हता है? पर क्यों चीन्हें, मुझे ही क्यों चीन्हे, शायद छत चीन्हता हो? पर वह भी क्या जरूरी है, क्या वह आज फिर उसी सहज भाव से नहीं आ सकता जिससे कल आया था? इसमें उसे क्या बाधा हो सकती है? छत पर बिल्कुल एकान्त है, और मैं भी तो यहाँ उसी क्षण वर्तमान हुआ जिस क्षण आज वह धूप में उतर कर एक पंजे के बल आ बैठा :"

—मुक्ति का एक क्षण : सीढ़ियों पर धूप में : रघुबीरसहाय : पृ० ४०।

कुल मिलाकर आधुनिक कहानी में रचनात्मक संवेदना की नयी स्वीकृति नये यथार्थ बोध की उपलब्धि है और यथार्थ के चित्रण की पूर्ववर्णित सीमाओं के होते हुए भी यह उपलब्धि और अन्य सहयोगी उपलब्धियाँ इतनी सार्थक हैं कि उन्हें पृथक रख कर आधुनिक कहानी की रचना-प्रक्रिया का वैशिष्ट्य समझना संभव नहीं रह गया है।

आधुनिक मानव की परिकल्पना

आधुनिक हिन्दी-कहानी के विकास की प्रक्रिया के अध्ययन से स्पष्ट है कि आधुनिक कहानी आधुनिक मनुष्य की समस्याओं और उसकी चेतना के विभिन्न स्तरों की कहानी है।

आधुनिक मानव की खोज और उसकी परिकल्पना उत्तर-प्रेमचन्द-युग की कहानी का प्रमुख वैशिष्ट्य है। आधुनिक कहानी की रचना-प्रक्रिया संबंधी जागरुकता के कारण जो समस्यायें महत्वपूर्ण समझी गयी हैं उनमें आधुनिक मनुष्य के अन्वेषण की समस्या कई दृष्टियों से एक महत्वपूर्ण समस्या है। सूक्ष्मदर्शी अमरीकी समीक्षक एलेन टेट ने युग के आधुनिक मानव की परिकल्पना को आधुनिक कृतिकार का प्रमुख दायित्व माना है।[1] हिन्दी कहानियों के आधुनिक विकास के सर्वेक्षण से जाना जा सकता है कि जिन लेखकों में आधुनिकता, जो अनिवार्यता किसी काल्पनिक चेतना का बोध नहीं है, का बोध जितना गहरा है, उन्हें आधुनिक मानव की प्रतिमा (इमेज) के परिनिर्माण में उतनी ही सफलता मिली है। जैसा हमने भूमिका में स्पष्ट किया है आधुनिकता एक सविशेष जीवन-दृष्टि है, जिसमें हम प्रत्येक वस्तु को यथार्थ की चेतना से सम्बद्ध करके देखते हैं, जिसमें परिवेश के प्रति सम्पूर्ण संलग्नता, मानवसम्बन्धों की ऐतिहासिक चेतना का पूर्ण साक्षात्कार, अनुभवों की परस्पर सह-सम्बद्धता आदि आधुनिक बोध के विविध स्तर प्रत्यक्ष देखे जा सकते हैं। इस दृष्टि से आधुनिक कहानी का मूल्यांकन करने से लगेगा कि उसमें सर्वत्र,

---

१—'टु द क्वेश्चन ह्वाट शुड वी द मैन आफ लेटर्स बी इन अवर टाइम, वी शुड हैव टु फाइन्ड द ऐन्स्वर इन ह्वाट वी नीड हिम टु डू ही मस्ट डू फर्स्ट ह्वाट ही हैज आल्वेज डन हीं मस्ट रिक्रिएट फार हिज एज द इमेज आफ मैन'

और सम्पूर्णतः तो आधुनिकता का बोध मूर्त नहीं हुआ है पर उसका एक विशेष स्तर अवश्य है जहाँ हम इस बोध का जीवित आभास पाते हैं। यह स्तर अज्ञेय जैसे व्यक्तिवादी और यशपाल जैसे व्यापक सामाजिकतावादी सभी प्रकार के कथाकारों के प्रयत्न से निर्मित हो सका है। अज्ञेय के अनुसार आत्म-चेतना ही आधुनिकता की आधार शिला है, जब कि यशपाल के अनुसार, समाज के विभिन्न वर्गों की समस्याओं और उनके अन्तर्सम्बन्धों की सम्यक् पहचान ही आधुनिकता है।

रावर्ड लिडेल ने आधुनिक कथाकार से जो अपेक्षायें की हैं, [1] उनमें अंतिम, सर्वाधिक महत्वपूर्ण है, कि आधुनिक रचनाकार को अनुभव के मौन संगीत की रचना करनी चाहिए। इस आधार पर विचार करने से, वर्ग चेतना की तीखी पुकार मचानेवाले लेखकों की रचनात्मक सफलता संदिग्ध हो जाती है और उन लेखकों का महत्व हमारे सामने स्पष्ट होने लगता है जो चुप-चुप जीवन का सारा संश्लिष्ट संघर्ष-जीते हैं और अपने पात्रों को भी उसी निर्व्याज भूमिका में पहुंचा देते हैं।

आधुनिकता एक दृष्टि है, एक बोध है : ऐतिहासिक चेतना के विकास की एक सहज परिणति है। जहाँ यह दृष्टिबोध सम्पूर्ण प्रकाशित हो, वहीं आधुनिकता की पूर्ण निष्पत्ति मानी जानी चाहिए। आधुनिक कहनी में व्यापक स्तर पर, अनुभवों के सूक्ष्म स्तरों का चित्रण पाया जा सकता है, [2] पर अनु–

–द मैन आफ आर्टिकिल्स इन द माडर्नवर्ल्ड : अमेरिकन क्रिटिकल एसेज : : ट्वेन्टिएथ सेन्चुरी : पृ० १२९।

१–'ह्वाट वी डू डिमाण्ड आफ ऐन आथर इज रादर, परहैप्स ए फीलिंग आफ सैडनेस, ए लैक आफ फेथ इन सिम्पुल आर ईजी सोल्यूशन्स टु ह्यूमन प्राबलम्स, ए सेन्स आफ द, फेरिली आफ लाइफ···नो लाडड, हार्टी सांग्ज आफ इननोरेसेन्स, बट क्वाएट साँग्ज आफ एक्सपीरियन्स'
—सम प्रिंसिपुल्स आफ फिक्शन : राबर्ट लिडेल : पृ० १४।

२–(क) 'आज दोनों को ही ठीक ऐसी ही लाज थी जैसी कि दो के मन जब प्रति अनावृत हो जाते हैं और तब जो होता है। तटस्थता, खिचाव में परिणत होती है। आज दोनों में ही दूसरे के लिए कुछ कट गया था, खो गया था और जिसे वे सपने में खोजते बैठे रहे। आज उनके बीच बोलने के लिए कुछ भी तो शेष नहीं था और जो शेष था वह था सौजन्य।'
–तथापि : नरेश मेहता : पृ० ११९।

भूति के सूक्ष्म स्तरों का परिग्रहण और चित्रणपूर्ण आधुनिकता नहीं है, क्योंकि उससे आधुनिक मनुष्य की सम्पूर्ण कल्पना स्पष्ट नहीं होती। जहाँ अनुभूति-स्तरों के बीच के सम्बन्धों से आधुनिक मानव-चेतना का समुचित संयोजन दिखाई देता है वहीं सच्ची आधुनिकता की अभिव्यक्ति संभव होती है। आधुनिक मानव-चेतना का यह सम्पूर्ण संयोजन जो अनुभूति-स्तरों के बीच के सम्बन्धों द्वारा कहानी में मूर्तिमान हो उठता है, अज्ञेय और जैनेन्द्र की कहानियों का विशेष आकर्षण है। जैनेन्द्र की कहानी 'स्वतन्त्रता' इस स्तर की एक अति-महत्वपूर्ण कहानी है जिसमें पत्नी को एक ऐसे व्यक्ति के साथ जाने का आदेश देता है जो उसका (पत्नी का) किशोर-मित्र रह चुका है और यह आदेश ऐसी विचित्र हार्दिक पीड़ा के साथ दिया जाता है मानों गहरी आन्तरिक इच्छा से प्रेरित हो।

सच पूछा जाय तो आधुनिकता कृतिकार के यथार्थ-बोध (परिस्थिति-बोध से लेकर नियति-बोध तक) के प्रति नीरन्ध्र उत्तरदायित्व-भाव में निवास करती है। आधुनिक कहानी में पात्रों और परिस्थितियों की निर्मम अनुभूति-जटिलता का जो स्तर पाया जाता है, वह इसी उत्तरदायित्व-भाव को सूचित करता है। मिथ्या के प्रति, चाहे वह कथ्य का हो या कर्म का या अनुभूति का, विद्रोह, आधुनिकता की एक महत्वपूर्ण पहचान है। जहाँ आधुनिक कहानीकार इस विद्रोह को ध्वनित करना चाहता है, वहाँ वह प्रायः 'व्यंग्य' से काम लेता है।[1]

शिल्प के प्रति विशिष्ट आग्रह : प्रयोगों की मौलिकता

रचनात्मक सृजन के सभी पक्षों को देखते हुए, उत्तर-प्रेमचंद युग की

(ख) 'बात करते हुए मिस पाल की आँखें झुकी जा रही थीं, जैसे वह अपने ही सामने किसी चीज के लिए अपराधी हों और लगातार बात करके अपने अपराध के अनुभव को छिपाना चाहती हों। मैं चुप रह कर उसे चाय में चीनी मिलाते देखता रहा। उसे देखते हुए उस समय मेरे मन में कुछ वैसी उदासी भरने लगी जैसी एक निर्जन समुद्र तट पर या ऊंची पहाड़ियों से घिरी हुई किसी एकान्त पथरीली घाटी में जाकर अनायास मन में भर जाती है।'

—मिस पाल : एक और जिन्दगी : मोहन राकेश : पृ० ८२।

१—'पारू ! तुम अपनी ओर से कल सब प्रवाहित कर चुकी हो। तुम अस-म्पृक्त, तुम्हें क्या कहूं और क्यों ? किन्तु पारू ! तुम्हारी विवशता का

हिन्दी कहानी की मुख्य विशेषता : प्रयोगशीलता मानी जायगी। यह इसी से प्रत्यक्ष है कि जिन कहानीकारों ने अपनी समझ से मात्र 'टेकनीक के लिए' रचना नहीं की, वे भी अपने को प्रयोगशील कहते हैं।[1]

आधुनिक कहानी के प्रयोगशील विकास को देखने से ज्ञात होता है कि उसमें मुख्य रूप से निम्नलिखित प्रयोग किए गए–

क: आधुनिक कहानीकारों ने कथानक की परम्परागत धारणा को तोड़ कर, बौद्धिक धरातल से कथानक का (जिसे, कहानीकारों ने घटनाओं के बीच के एक आभ्यंतर सम्बन्ध की संज्ञा दी) चुनाव किया जिसके फलस्वरूप कथा सन्दर्भों में अधिक सूक्ष्म और गहन बौद्धिकता की प्रवृत्ति-लक्षित हुई।

ख : कथानक की व्याप्ति की प्रचलित रूढ़ि छोड़ कर उसमें एक भाव, एक अनुभूति, एक संकेत की प्रतिष्ठा ही पर्याप्त समझी जाने लगी।

ग : सूक्ष्म मनोवेगों की जटिलता को रूपायित करने के लिए कहानी की रूपगत शैली या अभिव्यक्ति की नयी पद्धतियों का आविष्कार किया गया। परिणामतः पत्र या डायरी के रूप में कहानियाँ लिखी गयीं।

घ : कहानियों में घटना-क्रम के विकास की पुरानी रूढ़ मान्यता को तोड़कर, कालानुक्रम के विरुद्ध घटना-सन्दर्भों का विकास किया गया। कहानियों में इस प्रकार के प्रयोग किए गए कि प्राचीन कहानी जहां समाप्त होती थी वहां से नयी कहानियों का समारम्भ होने लगा। अर्थात कहानी में "फ्लैश-बैक टेकनीक" का उपयोग किया जाने लगा।

कोई कारण नहीं है! तुम्हें तुम्हारा मिथ्यात्व घेरे है। पटल के चिर नैकट्य को भी नहीं छोड़ सकती और विपिन से कहती हो कि 'मेरा यह भाग्य कि तुमने मुझे चाहा।' कुछ नहीं पारू! यह अपने प्रति तुम्हारा छल है साथ ही दूसरों के प्रति भी।'

–तथापि : नरेश मेहता : पृ० १२०।

१–"फैशनेबिल प्रयोगवादी न होते हुए भी प्रयोगशील अवश्य रहा हूं। कहने के लिए बात कहने का ढंग भी सोचा गया है। मात्र टकनीक के लिए कभी कोई रचना मुझसे नहीं हुई।"

–निवेदन : एक दिल हजार दास्तां : अमृतलाल नागर :

ड० : कहानी में प्रतीकात्मक योजना एवं बिम्ब-विधान की उपयोगिता को नए सिरे से अनुभव किया गया ।

च : कुल मिलाकर, प्राचीन कहानी की प्रतिक्रिया में आधुनिक कहानी घटना से घटना-हेतु की ओर मुड़ी और उसने तदनुरूप शिल्प का निर्माण किया ।

इस प्रकार उत्तर-प्रेमचन्द–युग की आधुनिक कहानी ने शिल्प की दृष्टि से जो दिशाएं ग्रहण कीं, उनमें अप्रत्याशित मौलिकता दिखाई पड़ी। यह मौलिकता कथा-ग्रहण की विधि, चरित्र-निदर्शन, वातावरण के तथा परिस्थिति के आकलपन और कहानी के सम्पूर्ण संयोजन में समानतः दिखाई दे सकी। कहानी एक साथ ही व्यक्तिगत निबन्ध, रेखा-चित्र, नाटक, रिपोतार्ज, आदि विभिन्न साहित्य रूपों की विशेषताओं को आत्मसात् कर सकी। यह बहुमुखता आधुनिक कहानीकार ने मानों रचना के उपलब्ध माध्यम को अपर्याप्त जानकर अर्जित की। प्रायः ऐसा होता है कि रचनाकार समकालीन जीवानुभवों की संश्लिष्ट जटिलता का चित्रण करने में अपने माध्यम की अपर्याप्तता का अनुभव करने लगता है। रचना के बुद्धिजन्य संस्कार की चेतना के उदय के साथ तो प्रायः ही ऐसा होता है। रांगेयराघव की एक कहानी "एक पत्र" जिसे वे "रिपोर्ताज" कहते हैं–कहानी नाटक, रिपोर्ताज सभी विधाओं का सामंजस्य प्रस्तुत करती है। कहानी 'एक पत्र' कहानी की भाँति आरम्भ होती है,[1] पर बीच में ही कहानीकार अपने पात्र प्रवासी के माध्यम से एक एकाँकी की सारी रूपरेखा प्रस्तुत कर देता है।[2]

१–"मेरी......

आज मैं तुम्हें कुछ लिखने का प्रयत्न कर रहा हूं। तुम पूछ सकती हो, अभी तक क्यों नहीं लिखा ? मैं कह सकता हूं, उस समय मैं तुमसे दूर नहीं था तो क्या आज हममें कुछ अलगाव आ गया है ? मैं यह भी नहीं जानता।

बहुत दिन हुए, हम अलग हुए थे। उसके बाद वह भिन्नता धीरे धीरे मानसिक बनने लगी थी। लेकिन उसकी याद करना बेकार है। जब भीड़ से भरी कलकत्ते की गाड़ी में बैठे-बैठे ऊंघते में से जागकर मैंने बाहर देखा था-शस्यश्यामला पर ऊषा की किरणें फूट रही थीं। दूर सुदरक्षितिज पर तुम तैर रही थीं, किन्तु वह स्वप्न एक भीषण झटके से टूट गया था...।" आदि :–तूफानों के बीच : रांगेयराघव :

२– समय १९४३-४४
स्थान–नोआपाड़ा

मौलिकता की चर्चा करते हुए यहीं यह स्वीकार किया जा सकता है कि आधुनिक कहानी में कुछ ऐसा परिवर्तन भी आया है, जिसे अनुभव तो किया जा सकता है पर उपयुक्त शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। यह परिवर्तन हमारे राग-बोध, हमारी ऐन्द्रिय चेतना में अनायास घटित होने वाला परिवर्तन है जो सम्पूर्णतः स्पष्ट नहीं है। निर्मल वर्मा की कहानी "सितम्बर की एक शाम" का नायक जब सोचता है कि वह मुक्त है तथा सारा विश्व उसके लिए प्रतीक्षारत है तो ऐसे ही अस्पष्ट परिवर्तन की ओर संकेत करता है।[1]

उपर्युक्त संकेत प्रमाण है कि आधुनिक कहानी-शिल्प जिस मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया की सृष्टि करता है, वह पूर्व प्रेमचंद-युग या प्रेमचंद युग की सामान्य शैली या प्रक्रिया से भिन्न है। प्राचीन कहानी का शिल्प कहानी को अप्रतिहत कहानी के रूप में उतार देने में अपनी चरम सार्थकता मानता था। आधुनिक कहानी का मनोवैज्ञानिक शिल्प रचना में व्यक्त अनुभूति-प्रतिक्रियाओं के बीच कहानी को "उपलब्ध" करना चाहता है, यों तो मौलिकता का

थाना–राडज़ान

दृश्य–१

माँ–मैं भूखी मरी।

बेटी–मैं भूखी मरी।

(मौत, कोई नहीं रोया !)

बेटा–(प्रवेश करके) बहू !

बहू–(उठकर) क्या है ?

बेटा–मैंने एक बात सोची है।

बहू–क्या ?

बेटा–तू रंडी हो जा......(दुनियाँ घूमती है)......।"–वही–।

१–"उसे लगा कि उसके पाँव पीछे कोई निशान नहीं छोड़ गये हैं–जैसे वह अभी जन्मा है। उसकी जिन्दगी की गाँठ अतीत के किसी प्रेत से नहीं जुड़ी है, इसलिए वह मुक्त है, और घास पर लेटा है। सारी दुनियाँ उसकी प्रतीक्षा कर रही है कि वह उसे अर्थ दे, उसकी बाट जोह रही है, सांस रोके।"

—दृष्टव्य : परिन्दे : निर्मल वर्मा : पृ० ११४।

अस्तित्व किसी भी रचना-प्रकार में व्यक्त विषय के नये निरूपण में देखा जा सकता है।[1] आधुनिक कथा-शिल्प की मौलिकता इस दृष्टि से अधिक सार्थक है कि उसमें समय की वृहत्तर संवेदना और उसके यथार्थ को व्यंजित करने की सामर्थ्य है। फिर यह मौलिकता निरपेक्ष शिल्प की नहीं, वस्तु और शिल्प दोनों की है।

च—निष्कर्ष

प्रस्तुत युग की हिन्दी-कहानी की रचना-प्रक्रिया के अध्ययन के आधार पर निम्नलिखित बातें कही जा सकती हैं—

आधुनिक कहानीकारों ने रचना–प्रक्रिया के प्रति पहली बार गम्भीर जागरूकता का परिचय दिया। यह मान्यता, कि कहानी प्रत्यक्ष रचना के रूप-विधान में ही नहीं, उस अनुभव की प्रक्रिया में भी है, जो कथानक, चरित्र या वातावरण या संवेदना के सूत्र देती है, और जो पहली बार आधुनिक कहानी-कारों द्वारा प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकी।

आधुनिक कहानी ने कथानक, चरित्र, कौतूहल आदि के रूढ़ नियमों को तोड़ कर जिस अधिक ऋजु एवं सूक्ष्म शिल्प का आविष्कार किया, उसके द्वारा आधुनिक कहानीकार युग की संश्लिष्ट जटिलता और उसके प्रति अपनी अनुभूति-प्रतिक्रिया को अपेक्षित तीव्रता के साथ व्यक्त कर सका।

आधुनिक कहानी ने कलात्मक तत्वों का उपयोग कौतुक–रस की सृष्टि के लिये नहीं, वास्तविक जीवन–मर्म (विजन) को उद्‌घाटित करने के लिये किया। आधुनिक कहानी की अन्यतम उपलब्धि है : मानवीय चेतना का नवीन बोध : जो "रचना" को एक गहरी अर्थवत्ता से सम्बद्ध, करता है। इसी दृष्टि से वह आज के प्रबुद्ध पाठक की सहानुभूति[2] की अधिकारिणी है।

१—"ओरिजिनल्टी कान्सिस्ट्स इन द मोड आफ ट्रीटिंग ए सब्जेक्ट।"
—डिक्शनरी आफ वर्ल्ड लिट्रेचर : शिप्ले : पृ० ४१६।

२ "कहानी के नए पन की कसौटी तो यही होनी चाहिए कि वह पाठक की सहानुभूति और विश्वास जीवन के नए दृष्टिकोणों के प्रति जगा सके।"
—नई कहानी : यशपाल : आजकल : मई १९६२।

६

हिन्दी-कहानी और यथार्थ

क—यथार्थ के प्रति विभिन्न युगों की हिन्दी-कहानी के दृष्टिकोणों में मौलिक अन्तर

एक आधुनिक कहानी-लेखक के अनुसार "कहानियों के सत्य में उतनी व्याप्ति नहीं होती,[1] पर कहानियों में सत्य तो होता ही है। सत्य की अभिव्यक्ति में अनुपात का अन्तर हो सकता है, एक युग तथा दूसरे युग के यथार्थ-चित्रण सम्बन्धी दृष्टिकोण भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। आर्थर क्वेस्टलर ने अपने निबन्ध "उपन्यास का भविष्य" में लिखा है: "आख्यान-साहित्य में यथार्थवाद का मतलब है, अपनी योग्यतानुसार यथासम्भव पूर्वग्रहों, रीतियों और अभ्यासों की उपेक्षा करके खुले मन से मानवीय अवस्था की यथार्थता के निकटतम जाने का प्रयत्न करना। उसका मतलब है उन रूढ़ियों का तिरस्करण जो कि मानव जीवन की मूल रेखाकृतियों को छिपाती हैं और मनोविज्ञान, समाजशास्त्र और भाषा के विकास के सहारे पाये जाने वाले नये दृष्टि-विस्तार का भरपूर उपयोग।"[2] तालसताय की दृष्टि में

१—"उपन्यास के बारे में तो फिर भी कुछ कहने की गुंजाइश होती है, क्योंकि उसमें जीवन का एक दर्शन होता है। कहानियों के सत्य में उतनी व्याप्ति नहीं होती, वह एक क्षण का, एक मनःस्थिति का सत्य है—एक दौड़ती लहर का गति-चित्र।"

—जयदोल : भूमिका : अज्ञेय।

२—"उपन्यास का भविष्य" : आर्थर क्वेस्टलर : प्रतीक : द्वै० साहित्यसंकलन : शरद अंक : संख्या ९ : पृ० ३८।

कथाकार के यथार्थ बोध के प्रमुख लक्षण हैं :

(क) वस्तु के प्रति कथाकार की उचित अर्थात् नैतिक दृष्टि,

(ख) अभिव्यक्ति की स्पष्टता या शैलीगत की सौन्दर्य की अनन्यता, तथा

(ग) सत्य-निष्ठा (सिन्सियारिटी। [1]

जार्ज ल्यूकाक्स ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ "स्टडीज इन योरोपियन रियलिज्म" की भूमिका में लिखा है "सच्चा श्रेष्ठ यथार्थवाद मनुष्य एवं समाज को पूर्ण सत्ता (एण्टिटीज) के रूप में चित्रित करता है, उसके किसी अकेले एकांगी पक्ष का चित्रण नहीं करता।" [2] उनके अनुसार सच्चे यथार्थवाद में "भावात्मक (इमोशनल) और बौद्धिक (इण्टेलेक्चुएल) गतिवाद कहीं से भी निषिद्ध नहीं है जिसका विकास अनिवार्यतया आधुनिक विश्व के साथ होता है।" [3] विलियम वाल्स ने रचनाकार के यथार्थबोध से अभिस्रावित जटिल सत्य की अनुभूति को किसी कलाकृति की मूल उपलब्धि माना है।"[4]

जीवन-मूल्यों और यथार्थबोध के विकास की सम्भावनाओं के परिप्रेक्ष्य में हमें विचार करना है कि हिन्दी-कहानी के विविध युगों (पूर्व-प्रेमचन्द-युग, प्रेमचन्द-युग एवं प्रेमचन्दोत्तर-युग) के दृष्टिकोण में क्या मौलिक अन्तर है ? अर्थात् जीवन-यथार्थ को भिन्न-भिन्न युगों के लेखकों ने किन दृष्टियों से देखा है और किस कौशल से चित्रित किया है ? इस तुलनात्मक अध्ययन से हम इन युगों के लेखकों की रचना-पद्धति (क्रिएटिवेमेथड्स) के मौलिक (बेसिक) भेद को समझ सकेंगे। यही भेद इन लेखकों की रचना-प्रक्रिया को समझने में सहायक होंगे। विचार करना होगा, कि क्या एक

१—मोपासां साहित्य के रूसी संस्करण की भूमिका।

१—स्टडीज इन योरोपियन रियलिज्म : भूमिका : जार्ज ल्यूकाक्स, पृ० ६।

३—वही, पृ० ६।

४—द यूज आफ इमैजिनेशन : विलियम वाल्स, पृ० १३८।

युग का अनुभव दूसरे युग के अनुभव से भिन्न है या अनुभव वही है—केवल अनुभूति और अभि व्यक्ति के कोण ही बदल गए हैं, प्रणालियाँ ही बदल गई हैं। विचार करना होगा कि कल्पित स्थितियों और वास्तविकता के बीच किस प्रकार की मनोवैज्ञानिक या व्यावहारिक समस्याओं का साक्षात् इन विभिन्न युगों के कहानी-लेखकों ने किया है।

प्राचीन कहानी : कल्पना का अतिरेक : फैन्टेसी का आग्रह

पूर्व प्रेमचन्द-युग की हिन्दी-कहानी (जिसे हम प्राचीन हिन्दी-कहानी कहते हैं) में यथार्थ के नाम पर मनोवैज्ञानिक तथ्य, स्वाभाविक सच्चाई और हेतु या तर्क की संगति ढूँढ़ना निरर्थ है, क्योंकि उसमें कल्पनातिरेक या अद्भुत कल्पना (फैन्टेसी) का तत्व प्रधान है, यथार्थ का नहीं। "फैन्टेसी" के ऐसे ही उपयोग को ध्यान में रखकर कोस्टर ने उसे यथार्थ-विरोधी तत्व के रूप में स्वीकार किया है।[1] शिप्ले द्वारा सम्पादित साहित्यकोश के अनुसार, फैन्टेसी तत्व के कारण कार्य, चरित्र और योजना (सेटिंग) में उन वस्तुओं की प्रतिष्ठा होती है जो सामान्य स्थितियों या मानव घटनाओं की सामान्य प्रक्रिया के भीतर असंभव हैं।"[2] फैन्टेसी या अद्भुत कल्पना का जो रूप प्राचीन आख्यान साहित्य में बिखरा हुआ है उससे प्रत्यक्ष होता है यह तत्व प्राय: उतना ही बौद्धिक एवं मानवीय भी होता है, जितना आनन्दपूर्ण और यह भी, कि प्रत्येक रचना जिसके लक्षण विस्मयकारक या असाधारण है "फैन्टेसी" नहीं कहला सकती। शिप्ले के साहित्यकोश में ही आगे कहा गया हैं कि "लेखक तथा उसके प्रबुद्ध पाठक वर्ग द्वारा स्वीकृत शुद्ध काल्पनिक व्यापार फैंन्टेसी के स्वाभाविक तत्व को संगठित करता है।[3]

१–द वर्ल्ड आफ फैन्टेसी स्टैन्ड्स ओवर अगेन्स्ट द वर्ल्ड आफ रियलिटी"
—साइकोएनालिसिस फार नार्मल पिपुल : कोस्टर : पृ० २३।

२–"फैन्टेसी इन्क्लूड्स इन द ऐक्शन, कैरेक्टर्स आर सेटिंग, थिंग्ज़ दैट आर इम्पासिबुल अन्डर आर्डिनरी कन्डीशन्स आर इन द नार्मल कोर्स आफ ह्यूमन इवेन्ट्स"
—डिक्शनरी आफ वर्ल्ड लिट्रेचर : सं० जोज़ेफ टी० शिप्ले, पृ० २३३।

३–"ओन्ली प्योरली इमैजिनरी फिनामिना, ऐक्सेप्टेड ऐज़ सच बाइ द आथर ऐन्ड हिज़ इन्टेलिजेंट एडल्ट रीडर्स कान्स्टीट्यूट द कोरेक्टरिस्टिक मैटर आफ फैन्टेसी।"
—डिक्शनरी आफ वर्ल्ड लिट्रेचर : सं० शिप्ले : पृ० २३४।

कुछ चित्रकारों की मान्यता है कि विलक्षण रसात्मक प्रभाव की सृष्टि करने वाली बिलक्षण साहित्यिक कल्पनाएं (लिटरेरी फैन्टेसीज़) उनकी प्रयोगशीलता के लिए पूर्व-आधार प्रस्तुत करती हैं, यद्यपि उनके प्रयोजन में यह तत्परता नहीं झलकती। पर यह विकसित मानस वाले विशेष अभिव्यक्ति-क्षम कलाकारों की रचनात्मक शक्ति पर निर्भर है कि वे फैन्टेसी का ऐसा उपयोग कर सकें अन्यथा फैन्टेसी के प्रतीकात्मक मूल्य का यथार्थ चित्रण के लिए उपयोग बहुत कम किया गया है।

प्राचीन हिन्दी-कहानी में, अपरिपक्व मानस वाले कथाकारों ने यथार्थ का सामना न कर सकने के कारण अद्भुत कल्पना (फैन्टेसी) का या उसके निकट का कोई मार्ग चुना है। ध्यान देने की बात यह है कि अद्भुत कल्पना या फैन्टेसी का यह विषमस्तरीय उपयोग केवल हिन्दी-कहानी में ही नहीं, विश्व के समस्त प्राचीन आख्यानक साहित्य में प्राप्त होता है, जहाँ अद्भुत कल्पना की रूढ़ियाँ बन गई हैं।

फैन्टेसी के नाम पर प्राप्त होने वाली कुछ रचनाएं केवल समय यापन के लिए होती हैं। उन्हें कैथरीन लिवर ने पलायनवादी साहित्य [1] (एस्केपिस्ट लिट्रेचर) की संज्ञा दी है, और उसका ही सामान्य रूप बताया है। फैन्टेसी की संज्ञा प्राप्त करने वाली कुछ रचनाएं नैतिक एवं पारमार्थिक सिद्धान्त शिक्षण के प्रयोजन से निर्मित होती हैं। सी० एल० लिविस तथा की चार्ल्स विलियम को कथाकृतियां इसी श्रेणी की हैं। फैन्टेसी-कोटि की कुछ कहानियों में व्यंग-तत्व की प्रधानता होती है। इनमें सम्प्रेषित "अर्थ विधान" में हमें किंचित् यथार्थपरता भी दिखाई देती है। प्राचीन हिन्दी कहानियों में किसी-न-किसी रूप में इन सभी कोटियों की कल्पनामूलक कहानियां प्राप्त होती हैं। [2] यही कारण है कि प्राचीन कहानी की रूपात्मक विशेषताओं के लिए "गल्प" नाम अधिक उपयुक्त माना गया है।

१–द नावेंल ऐन्ड द रीडर : कैथरीन लिवर : पृ० २३।

२–"प्राचीन कहानियाँ साधारण वर्णनात्मक शैली में सम्पूर्ण जीवन-वृत्त को संक्षेप में उपस्थित करती थीं। उनमें कथावस्तु, चरित्रचित्रण, किसी विशेष मानसिक द्वन्द या स्थिति का चित्रण कम होता था। उन्हें सुनकर कहानी कहनेवाले ने "क्या कहा" इस जिज्ञासा की पूर्ति होती थी, लेकिन "कैसे ढंग से कहा" इस पर विशेष ध्यान न दिया जाता था। नीति, व्यवहार तथा जीवन के स्थूल पर सारपूर्ण घटना संवलित व्यापारों तथा मनोगत भावों के सहारे ही कलात्मक रीति से कहानी कह दी जाती थी।
—हिन्दी-साहित्य के अस्सी वर्ष-शिवद्रान सिंह चौहान-पृ० १७२-७२।

प्राचीन हिन्दी-कहानी में अद्भुततत्व

कहानी अपने साथ जो वास्तविक परिप्रेक्ष्य (पर्सपेक्टिव) लेकर आती है, वह प्रेमचंद से पहले की हिन्दी-कहानी में अनुपलब्ध है। उदाहरण के लिए, गोपालराम गहमरी की कहानी "गुमनाम चिट्ठी" [1] में पहला, दूसरा, तीसरा, इस क्रम से भेदों का तो क्रम ही है पर यथार्थ का आँशिक आभास भी नहीं है। यही स्थिति इन्शा की बहुचर्चित रचना "रानी केतकी की कहानी" की भी है जो अपनी मूल संवेदना में "गल्प" नाम को ही अधिक सार्थक करती है। पूर्व प्रेमचंद-युग की अधिकांश कहानियों में कुतूहल, दैवी संयोग और चमत्कारपूर्ण तत्व प्राप्त होते हैं। केशवप्रसाद सिंह की कहानी "आपत्तियों का पर्वत" तथा "चन्द्रलोक की यात्रा", रामचंद्र शुक्ल की कहानी "ग्यारह वर्ष का समय" तथा किशोरीलाल गोस्वामी की कहानी "इन्दुमती" में यथार्थ बोध का अभाव प्रत्यक्ष है। इस काल की कहानियों में कुछ तो पौराणिक कहानियाँ हैं और कुछ काल्पनिक। पौराणिक कहानियों में तो "यथार्थ चित्रण" का प्रश्न उठता ही नहीं, काल्पनिक कहानियों में भी चमत्कार और कुतूहल को प्रधानता दी गई है। वस्तुत: सामाजिक यथार्थ का वह बोध इन कहानियों में है ही नहीं जो सामयिक जीवन–मूल्यों की प्रतिष्ठा कर सकता है। पूर्व प्रेमचन्द-युग की हिन्दी–कहानी का उद्देश्य है: उदात्त शाश्वत आदर्श मूल्यों की उद्भावना तथा उनकी परिकल्पना के लिए रहस्यपूर्ण चमत्कार से युक्त अद्भुत कथानकों की सृष्टि। इसीलिए इस युग की कहानियों के विषय हैं-दया, परोपकार, करुणा, अपरिग्रह, त्याग, संयम आदि। इस दृष्टि से इस युग की अधिसंख्य कहानियाँ नीतिमूलक कही जाएंगी। इनमें अपने समय के राजनीतिक या सामाजिक संघर्ष का आभास देखना व्यर्थ है। यथार्थ के चित्रण के लिए जैसी लाक्षणिकतारहित, स्पष्ट भाषा अपेक्षित है, संभव है, उसके अभाव में ही लेखकों ने "फैन्टेसी" और "नीति" की दिशाओं को ग्रहण किया हो। हम मानते हैं कि भाषा और "वक्तव्य" में अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है और यह मानते हुए, स्पष्ट भाषा से हमारा तात्पर्य ऐसी भाषा से है जो काडवेल के शब्दों में वाह्य यथार्थ और आभ्यंतर यथार्थ-तथ्यों और भावनाओं दोनों को व्यक्त करती है। [2] कहना न होगा कि यह भाषा प्रेमचन्द के साथ ही हिन्दी कहानी में

१–"जासूस" १९३२ में प्रकाशित।

२–"लैंग्वेज एक्सप्रेसेज़ बोथ एक्सटर्नल रियलिटी ऐन्ड इन्टर्नल रियलिटी-फैक्ट्स एन्ड फीलिंग्ज़"

–इल्यूज़न ऐन्ड रियलिटी, क्रिस्टोफर काडवेल, पृ० २४७।

आई। पर प्रश्न केवल भाषा का नहीं, पूरे युग के सीमित भावबोध का है जहाँ अभिप्राय तो दिखाई देते हैं पर "वस्तु" नहीं। उदाहरण के लिए हम साहित्यिक अतीत की ओर जाकर पुराणों में वर्णित "अपाला की साधना"[1] सम्बन्धी कहानी ले सकते हैं जिसमें यही वर्णन करना अभीष्ट है कि किस प्रकार अपने माता-पिता के अमोघ आशीर्वाद तथा अपनी अटूट सेवा परायणता से तथा साधना से महर्षि अत्रि की पुत्री अपाला ने न केवल अपना विगलित सौन्दर्य एवं यौवन ही प्राप्त किया वरन् उसने अपने पति तथा सास-ससुर से अपूर्व आदर एवं अभ्यर्थना प्राप्त की। विषय और समस्या इस कहानी में नीतिमूलक है और कहानी जिस पद्धति से कही गयी है वह फैन्टेसी के ही निकट की है। इस नीति-संवेदना की कहानियाँ प्रेमचन्द से पूर्व बहुत लिखी गई हैं, यद्यपि साहित्यिक मूल्य से हीन होने के कारण आगे वे चर्चित नहीं हुई। इन कहानियों में प्रायः अलौकिक रहस्यपूर्ण घटनाओं का आडम्बर खड़ा किया गया है। इस दृष्टि से इनमें से अधिकांश कहानियों की संवेदना प्रेमाख्यानक काव्यों की संवेदना के समीप जान पड़ती है। "रानी केतकी की कहानी"[2] में राजकुमार कुंवर उदैभान और रानी केतकी का प्रेम, कुंवर उदैभान की मानसिक व्याकुलता और पीड़ा, विवाह सम्बन्ध की प्रस्तावना, असहमति, परिणाम स्वरूप युद्ध, जोगी महेन्दर की सहायता से योगक्रिया का दुहरा आरोप-आदि सभी घटनाएं प्रेमाख्यानों में वर्णित घटनाओं का स्मरण कराती हैं। प्रत्यक्ष रूप से इस कहानी का कोई महत्व है तो अद्भुत कल्पना की दृष्टि से, अन्यथा कहानी में रचनात्मक-अर्थ की संभावना नहीं के बराबर है। "खड़ी बोली के गद्य के इतिहास" में इस कहानी का स्थान "सुरक्षित" है[3] तो केवल इसकी कल्पना-मूलकता के कारण। पूर्व प्रेमचन्द-युग की हिन्दी-कहानी से वास्तविकता और यथार्थ जीवन-मूल्यों के चित्रण की आशा करना व्यर्थ है। परिस्थितियों के यथातथ्य अंकन और चरित्रों की यथार्थ-प्रतिष्ठा का प्रश्न सच पूछिए तो प्रेमचन्द से पहले के कहानीकारों के समक्ष इस रूप में है ही नहीं, कि उसकी रचनात्मक आवश्यकता की अनुभूति हो सके।

१—पुराणों की अमर कहानियां : भाग प्रथम : रामप्रताप शास्त्री : पृ० ६६।

२—रानी केतकी की कहानी : इन्शा अल्ला खाँ।

३—आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका : डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : पृ० २७७।

(१७५७-१८५७)

प्रेमचन्द युग : साहित्य में यथार्थ की अभिव्यक्ति का प्रश्न

प्रेमचन्द के समय तक आते-आते हम अनुभव करते हैं कि "कहानी" ही क्यों समूचे "साहित्य" के प्रति धारणा ही बदल गयी है। सम्पूर्ण युग का बोध जीवन और यथार्थ के प्रति बदल गया है, और कहानी अन्य साहित्य-रूपों की भांति जीवन की आलोचना [1] और व्याख्या समझी जाने लगी है। इस परिवर्तन का आभास यद्यपि पहले से ही कहीं-कहीं मिलने लगा था, पर प्रेमचन्द के समय में ही वह स्पष्ट हो सका। प्रेमचन्द साहित्य ही उस रचना को मानते हैं जिसमें जीवन और परिस्थिति की सच्ची अभिव्यक्ति हो। वह कल्पना जो "फैन्टेसी" का पर्याय बनकर रह जाय और केवल कुतूहलमिश्रित वैचित्र्य की सृष्टि करे, प्रेमचन्द को ग्राह्य नहीं है। अपनी इन्हीं नयी मान्यताओं के साथ प्रेमचन्द एक उचित आधुनिक बोध के उन्मेष के चित्रण में प्रवृत्त हुए हैं। संघर्ष का चित्रण करनेवाली "कहानी" [2] ही प्रेमचन्द की "कहानी" का आदर्श है।

शिप्ले ने 'यथार्थवाद' की व्याख्या करते हुए लिखा है कि 'साहित्यिक आलोचना में यथार्थवाद उन कृतियों में निहित माना जाता है जो वास्तविक जीवन के अत्यन्त निकट होती है। और जिनकी विषय-वस्तु वास्तविक जीवन

१– हम कार्ल शैपिरो से अपनी विनम्र असहमति प्रकट करते हैं जिन्होंने प्रतिपादित किया है कि शुद्ध कला किसी भी अवस्था में जीवन की आलोचना नहीं कहला सकती : "एनी हेल्दी आर्ट इज ए थ्रेट टु कलासिकल स्टैन्डर्ड्स, एन्ड इट इज नेवर ए क्रिटिसिज्म आफ लाइफ..........ओन्ली प्रोपोगेन्डा। आर्ट इज ए क्रिटिसिज्म आफ लाइफ" (द्रष्टव्य : द फार्मर एन्ड द पोएट : कार्ल शैपिरो : पोएट्री : जून १९६१ : पृ० १७६)। हमारी दृष्टि में कला और साहित्य का कोई भी रूप, जीवन के यथार्थ को प्रतिबिम्बित करने की प्रक्रिया में, अनिवार्यतः जीवन की आलोचना होती है। कला और साहित्य की अपनी सम्भावनायें होती हैं और वे जीवन की आलोचना से निरपेक्ष नहीं होतीं।

२– "इन फिक्शन, ए स्टोरी इज यूजुवली कन्सिडर्ड द प्रेजेन्टेशन आफ ए स्ट्रगिल।" –डिक्शनरी आफ वर्ल्ड लिट्रेचर : शिप्ले : पृ० ५५२।

से ग्रहीत होती है।' [1] इस व्याख्या के प्रकाश में प्रेमचन्द की कहानियों पर विचार करें, तो वे यथार्थ जीवन से अनुप्राणित और जीवन के सही परिवेश से ग्रहीत जान पड़ती हैं। प्रेमचन्द के समय की बहुत-सी कहानियों पर इन कहानियों का प्रभाव है। पर अपने आभ्यंतर मानस में प्रेमचन्द आदर्शवादी हैं और उनके इस रूप का भी प्रभाव सम्पूर्ण युग में देखा जा सकता है। अतः प्रेमचन्द-युग में लेखकों की दृष्टि 'आदर्शोन्मुख यथार्थ, की दृष्टि है। धीरे-धीरे परिस्थितियों के आघात से आदर्शवादी विश्वासों के छिन्न-भिन्न हो जाने से शुद्ध यथार्थवादी दृष्टि का विकास हुआ है। पर यह समय, प्रेमचन्द-युग के समाप्त होते–होते आया है। प्रेमचन्द की कुछ कहानियों में ही आदर्श-भंग की स्थिति प्रत्यक्ष हो सकी है अन्यथा उनकी कहानियाँ यथार्थ के स्तर से आरम्भ होकर किसी आदर्शवादी परिणति को प्राप्त होती हैं। इसका अर्थ यह न लिया जाय, कि यथार्थ की सम्पूर्ण चेतना का बोध प्रेमचन्द को नहीं था, बल्कि केवल यह कि सुधारवादी परिस्थितियों के बीच रहते हुए प्रेमचन्द ने एक मध्यम मार्ग निकालने की चेष्टा की और उसके अनुसार कहानियों का रूप उन्होंने सदा बदला। [2] 'अलग्योझा' और 'पूस की रात' प्रेमचन्द के दो भिन्न भाव-स्तरों की कहानियाँ हैं। 'अलग्योझा' की समस्या एक परिवार की है और कहानी में यही दिखाना अभीष्ट है कि कैसे परिवार टूटते-टूटते बन जाता है। रग्घू का जीवन-दीपक बुझते ही 'अलग्योझा' टूट जाता है। जो एक दूसरे को देख नहीं सकते थे, केदार और मुलिया स्नेह से रहने लगे हैं। केदार घर का मालिक है और मुलिया मालकिन। रग्घू के लड़के केदार के अपने लड़के हैं। और मुलिया से पन्ना जब केदार के विवाह का प्रस्ताव करती हैं तो 'वैधव्य के शोक

१–"इन लिट्रेरी क्रिटिसिज्म द टर्म (रियलिज्म) इज अप्लाएड टु दोज वर्क्स आफ लिट्रेचर दैट आर फैशन्ड इन क्लोज इमिटेशन आफ रियल लाइफ ऐन्ड ह्विच हैव देयर सब्जेक्ट मैटर टेकेन फ्राम द रियल वर्ल्ड"

—डिक्शनरी आफ वर्ल्ड लिट्रेचर : शिप्ले : पृ० ४७० ।

२–'कहानी का रूप कहानी के भीतर ही बदला जा सकता है जैसा कि समय-समय पर महान कहानीकारों ने किया है। कहानी का रूप प्रेमचंद ने कब नहीं बदला ? 'पूस की रात', 'कफन', ईदगाह', 'शतरंज के खिलाड़ी' 'और' सवासेर गेहूं इन कहानियों का रूप एक-सा नहीं है…।'

—नयी कहानी : सफलता और सार्थकता : नामवर सिंह 'कहानी' विशेषांक पृ० ९ ।

से मुरझाया हुआ मुलिया का पीत वदन कमल की भांति अरुण हो उठता है।'[1] विचारणीय है कि प्रेमचन्द का यह आदर्श-भाव क्या निरपेक्ष भाव है ? केवल 'आरोपित' भाव है ? हमारी दृष्टि में प्रेमचन्द का यह आदर्श भाव सहानुभूति' का भाव है। यथार्थ से परिचित होते हुए भी प्रेमचन्द आदर्श की संभावना अपनी कहानियों द्वारा दिखाते हैं-इसके पीछे प्रेमचन्द की 'सहा-नुभूति' ही है। आलोचकों ने इस दृष्टि से प्रेमचन्द के 'आदर्शवाद' पर विचार नहीं किया है और प्रगतिशील आलोचकों ने तो आदर्श से यथार्थ तक की भावना-यात्रा दिखाते हुए मान ही लिया है कि प्रेमचन्द का आदर्शभाव एक झूठा समझौता है, जिसकी यथार्थ के साथ कोई संगति नहीं है। हमें तो प्रेमचंद की कहानियां चेखब की कहानियों की भांति लगती हैं, जिसने स्थान-स्थान पर प्रकृति के सुन्दर लैंड स्कैप-चित्रों की उद्‌भावना केवल इस लिए की है कि उनकी परिकल्पना से, उसके लिए प्रकृति और परिस्थिति पहले से अधिक सुन्दर हो जाती थी[2] 'अलग्योझा' जैसी कहानियों के दूसरी ओर प्रेमचन्द की 'पूस की रात' और 'कफन' जैसी कहानियाँ हैं, जिनमें किन्हीं परिस्थितियों के यथार्थ को निर्मम रूप में उतार दिया गया है। संघर्ष करते-करते एक ऐसी अवस्था भी आती है जब सामाजिक विषमता की पीड़ा के प्रति कोई प्रतिकार-भाव नहीं रहता और व्यक्ति निराश परिस्थिति के प्रति सर्मपित हो जाता है। प्रायः यथार्थ-परक कहानियों का यही भावक्षेत्र है।

प्रेमचन्द के युग की यह विशिष्टता तो मानी ही जायगी कि इस अवधि के लेखकों ने कहानी को जीवन के निकट ला दिया और कहानी की परिभाषा बदल दी। यथार्थ का बोध जो कहानी को जीवन के अधिक समीप ले आता है प्रायः सभी लेखकों के विचारों, कल्पनाओं में विद्यमान है। कुछ कहानी लेखक जहाँ उसे अपने कृतित्व में रूपान्तरित कर सकें हैं, वहां कुछ विस्मय-

---

१-मानसरोवर : भाग : पृ० २२।

२-'फार चेखोब, लैंडस्केप इज आल्वेज ए रिमाइन्डर आफ हाउ ब्यूटिफुल द लाइफ आफ ह्यूमन बीइंग्ज़ कुड ऐन्ड शुड बी, इट इज कन्डेम्नेशन आफ द डिस्टार्शन ऐन्ड स्क्वैलर आफ लाइफ, इट इज बाइ मीन्स आफ लैंडस्कैप दैट चेखोब पासेज जजमेन्ट आन लाइफ ऐज इट शुड बी, ह्वेन ब्यूटी ऐट लास्ट ट्रियूम्फ्ज, देयर इज रिप्रोच ऐन्ड ग्रीफ ऐन्ड सैडनेस ऐन्ड होप इन हिज लैन्डस्कैप्स'

-ए० पी० चेखोव : व्लादमीर यरमिलोव (रूसी से अनु० आइवी लितविनवो पृ० ९८।

भाव से उसे देखते हैं और कल्पना में ही साकार करना चाहते हैं। इस असंगति के मूल में राष्ट्रीय आन्दोलन के विकास की क्रमिक चेतना है, समाज सुधार से राजनीतिक सत्ता तक खिंच आने की चेतना है, जातीय एकता से राष्ट्रीय एकता तक आने की चेतना है। इन सबने मिलकर प्रेमचंद के युग के लेखकों के रचनात्मक मानस का परिनिर्माण किया है और परिस्थितियों के यथार्थ की तीव्रतर प्रक्रिया से उन्हें परिचित कराया है। प्रेमचंद के शब्द [1] : 'जब तक करेन्ट अफेयर्स से लगाव न रहे किसी मजमून पर लिखने की तहरीक नहीं होती'–प्रेमचन्द के युग की रचनात्मक चेतना के यथार्थ-बोध के परिचायक है। इस युग के लेखक का मन कोने में बैंठकर अतिरंजित कल्पना की सामग्री जुटाने में नहीं, परिस्थितियों के यथार्थ को समझने में रस लेता था।

उत्तर-प्रेमचंद-युग की कहानी और यथार्थ-बोध का विकास

उत्तर-प्रेमचन्द–युग की कहानी में यथार्थ-बोध के विविध स्तर दिखाई देते हैं। एक ओर यशपाल, अश्क, नागार्जुन, राँगेयराघव जैसे कहानीकार हैं जो युग की परिस्थितियों के निर्मम यथार्थ को सम्पूर्ण तीव्रता के साथ तथा अविकलरूप में चित्रित करना चाहते हैं तो दूसरी ओर अज्ञेय, जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी जैसे कहानी लेखक हैं जो मन के सूक्ष्मातिसूक्ष्म यथार्थ को अपनी कहानियों का विषय बनाते हैं। सब मिलाकर इस युग का यथार्थबोध विविधता से युक्त हैं और उसका प्रयोग अपूर्व रचनात्मक संभावनाओं के साथ किया जा रहा है। विकास के साथ, यह दावा किया जाने लगा है कि यथार्थबोध दूरगामी सन्दर्भों की ओर संकेत करने वाला है। लियोन इडेल ने 'आधुनिक' की संज्ञा उन उपन्यासों को दी है जो समय की अधिक गहरी और अधिक अन्वेषणीय आभ्यंतरता को सूचित करते हैं। [2] आधुनिक कहानी में यथार्थता वहाँ मानी जा रही है जहां 'जो दीखता है' के पीछे 'जो है',उसे व्यक्त करने का प्रयास किया जाता है। 'विपथगा', 'छाया', 'कोठरी की बात', 'जयदोल' आदि संग्रहों में अज्ञेय की बीसों कहानियाँ मिल जायेंगी जिनमें एक दूरगामी सन्दर्भ है। आकस्मिक नहीं है, कि अज्ञेय की कहानी 'पठार का धीरज' यथार्थ की बौद्धिक व्याख्या से आरम्भ होती है। [3]

१–प्रेमचन्द : कलम का सिपाही (जीवनी) : अमृतराय : पृ० १२२।

२–द साइकोलाजिकल नावेल (१९००–१९५०) : लियोन इडेल : पृ०२८।

३–'ऊंचे–नीचे टीले, खंडहर, मटमैली-भूरी हरियाली, धुंधले छोटे झांप, अंधेरी खोहें, बिखरे हुए पत्थर, कुछ गोल, कुछ चपटे, कुछ उभरे, कुछ

यथार्थ के दूरगामी संदर्भ और आधुनिक कहानी

आधुनिक कहानी में अभिव्यक्त यथार्थ–बोध को देखते हुए कहा जा सकता है कि पहले की कहानी में जीवन-यथार्थ के प्रति लेखकों का दृष्टिकोण और संवेदन भावात्मक था और इस युग में आकर वह बौद्धिक और ज्ञानात्मक हो चला है। यह परिवर्तन, साधारण नहीं है और यथार्थबोध के इस परिवर्तन के पीछे जहां अन्य सामाजिक प्रभाव हैं, वहीं चेतना के आभ्यंतर प्रवाह (स्ट्रीम आफ कान्शसनेस) की विचारधारा के यशस्वी लेखकों (मार्सल प्रूस्त, जेम्स ज्वाएस, रिचर्डसन्, हेनरी जेम्स, वर्जीनियाँ वुल्फ आदि) का प्रभाव भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। टी० एस० इलियट की भाषा में कहा जाय, कि इस युग की कहानी "रूप रहित आकार" (शेप विदाउट फार्म) तथा "रंगहीन छाया" (शेड विदाउट कलर)[1] यथार्थ के इन सूक्ष्म स्तरों को भी पकड़ती, और चित्रित करती है।

कुछ चुभन से तीखे, दूर पर चपटी लम्बी इमारत की बत्तियाँ, मानों रेलगाड़ी खड़ी हो।
"ये सब यथार्थ हैं।
"फिर पठार का धीरज–भरा फैलाव, दुराव भरा सन्नाटा, झनझनाती तेज हवा, चपटे पत्थरों पर मीन के–से हरे–चिट्टे–लिलौंहे काही के तारा फूल, उड़ते-उड़ते बे-भरोस बादल, तीतरों की चौंकी-सी पुकार 'तत्तीत्तिरि-तत्तीत्तिरीत तु :', दूर पर गीदड़ का रोने और भूंकने के बीच का सा सुर।
'ये भी यथार्थ हैं।
'लेकिन यथार्थ के भी स्तर हैं। स्थूल वास्तव, फिर सूक्ष्म वास्तव, जिसमें हमारे भाव का भी आरोप है, फिर-क्या और भी कोटियां नहीं हैं, जहाँ भाव ही प्रधान हो, जहां तथ्य वहीं पहचाना जाय जहाँ वह व्यक्ति-जीवन के प्रसार में गहरी लीकें काट गया हो, नहीं तो और पहचानने का कोई उपाय न हो, क्योंकि व्यक्ति-जीवन, व्यक्ति-जीवन के क्षण का स्पन्दन इतना तीव्र हो कि सब कुछ उसी से गूँज रहा हो, और कोई ध्वनि न सुनी जा सके।......" –जय दोल –अज्ञेय : पृ० ११।

१– द हालो मैनः टी० एस० इलियट–
–कलेक्टेड पोएम्स (१९०९-१९३५) पृ० ८७।

आधुनिक कहानी की रचनात्मक प्रक्रिया के विश्लेषण के परिणाम स्वरूप हम अनुभव करते हैं कि कहानी में यथार्थानुभव निरन्तर तीव्र, गहन और जटिल होते जा रहे हैं। आधुनिक कहानी का यथार्थबोध एक तो उन कहानियों में है जिनमें व्यक्ति–मन के कुरूप यथार्थ यौन-अपृप्ति और रुग्ण कुंठा की अभिव्यक्ति है और दूसरी ओर सर्वथा भिन्न धरातल पर उन कहानियों में है जिनमें आत्मावलोकन की शुद्ध संवेदना[1] का चित्रण है। घटनाओं के ऊपरी यथार्थ के चित्रण की तुलना में इन्द्रियबोधों के सूक्ष्मातिसूक्ष्म यथार्थ का चित्रण एक गहरी रचनात्मक महत्वाकांक्षा का सूचक है, पर वह साथ ही अधिक गहरे अभिव्यक्ति–संयम की माँग भी करता है, और अनुभव के वस्तु-रूप के प्रति तटस्थता की भी अपेक्षा रखता है। प्रत्यक्ष है कि आधुनिक कहानी, पहले की कहानी की तुलना में यथार्थ–बोध के संवेदनात्मक स्तर की कहानी है।

जहाँ निर्मल वर्मा, कृष्णा सोवती और रामकुमार की कहानियाँ प्रमाणित करती हैं कि आज की कहानी में आविष्कृत यथार्थ–चित्रण–पद्धति प्रेमचंद-काल में प्रचलित सहज यथार्थ-चित्रण-पद्धति की प्रतिक्रिया है, वहीं अमरकान्त की "जिन्दगी और जोंक" आदि कहानियों में वर्णित यथार्थबोध प्रेमचन्द के यथार्थ–बोध का सहज विकास प्रतीत होता है। प्रत्यक्ष है कि मनोविश्लेषणवादी और समाजवादी यथार्थ-चित्रण की इन दोनों प्रणालियों ने

१– "यह मैं लेटा हूँ, संज्ञाहीन नहीं, फिर भी विचार शून्य, चेतना की अन्धी गली पर चिमगादड़ के मनहूस डैनों से फड़फड़ाते प्राणों को लिए, बिस्तर से चिपका हुआ, नींद की नीली झील पर कुहरा-सा तिरता, डूबता, प्रतीक्षा करता हुआ, उस अशरीरी रहस्यमय चमत्कार का, जो लावा-सा भीतर ही भीतर घुलता है- जिसका विस्फोटन नहीं होता, होने न होने के बीच अनिश्चित टंगा है……।

क्षुब्ध कुहासा–धूल की तहों में दबा, लिपटा पीलापन–अजीब भुतैली सी थकी-थकी चांदनी, जो ईटों की टूटी दीवार पर गिर रही है, उस बीच–फंसी गौरय्या के घोंसले पर गिर रही है, चाची की छत पर गिर रही है, बिट्टो के सारे शरीर पर-बिट्टो की आँखों, बाहों, बालों की लटों पर गिर रही है………………।"

–डायरी का खेल : परिन्दे : निर्मल वर्मा : पृ० २७-२८।

कहानी को समान रूप से प्रभावित किया है जिसके कारण एक और कहानी में बाह्य यथार्थ मूर्तिमान हो सका है, तो दूसरी ओर आभ्यंतर। वर्जीनियाँ वुल्फ की भाषा में [1] कहा जाय कि आधुनिक कहानीकारों ने "यथार्थ" के अधिक समीप आने के लिए ही प्राचीन मान्यताओं (कन्वेन्शन्स) को तोड़ा है और "कहानी" के लिए आत्यन्तिक रूप से महत्वपूर्ण समझे जाने वाले तत्वों को तटस्थ भाव से छोड़ दिया है।

यथार्थ के प्रति विभिन्न युगों की हिन्दी–कहानी के रचनाकारों के भिन्न-भिन्न दृष्टिबोधों के तुलनात्मक अध्ययन से प्रत्यक्ष है कि–

(क) किसी कहानी में व्यक्त "कल्पित" अर्थ किस सीमा तक "वास्तविक" अथवा "यथार्थ" हो पाता है– यह बात कहानी में वर्णित भाव-प्रतिक्रियाओं, स्थितियों और दृश्य-बिम्बों एवं चरित्रों के बीच के आभ्यंतर सम्बन्धों पर निर्भर करती है।

(ख) तथा, आधुनिक कहानीकार अपनी रचना में ऐसे वातावरण को मूर्तिमान करना चाहता है, जिसके आयाम विविध हैं। आयामों की यह विविधता उसकी रचना को "यथार्थग्राही" बनाती है। पर यहां यह स्वीकार करना आवश्यक जान पड़ता है कि यथार्थबोध के आयामों की विविधता जो निरन्तर एक प्रकार के रचनात्मक संघर्ष से अनुप्राणित होती रहती है अन्ततः एक संश्लिष्ट एकता की ओर बढ़ती है। आल्वेयर कामू ने इस स्थिति की ओर संकेत करते हुए जिस भावना को विद्रोह (रेवेलियन) की भावना कहा है, [2] उसे हम संघर्ष की भावना ही कहाना चाहेंगे।

१– ट्वेन्टिएथ सेन्चुरी इंग्लिश क्रिटिकल एसेज : पृ० ३९४।

२– "बट रेबेलियन, ह्विच इज वन आफ द सोर्सेज आफ द आर्ट आफ फिक्शन, कैन फाइन्ड सटिस्फैक्शन वोन्ली इन कन्स्ट्रक्टिंग यूनिटी आन द बेसिस आफ अर्फामिग दिस इन्टीरियर रियलिटी ऐन्ड नाट आफ डिनाइनिंग इट।"

– द रेबेल : आल्वेयर कामू : पृ० २६५।

ख—आलोच्य युगों की हिन्दी-कहानी के प्रेरणा-स्रोतों की भिन्नता पर विचार

प्राचीन अर्थात् पूर्व प्रेमचन्द-युग की कहानी के प्रेरक तत्व : कुतूहल, चमत्कार और दैवी संयोग

पूर्व प्रेमचन्द-युग की हिन्दी-कहानी के प्रेरक हैं : कुतूहल, चमत्कार, दैवी–संयोग आदि । प्रेमचन्द-युग की कहानी का प्रेरक तत्व है : सामाजिक तथा व्यावहारिक मनोविज्ञान । तथा, उत्तर प्रेमचन्द-युग की कहानी का प्रेरक तत्व है : "आधुनिक मानव" की खोज । इनकी परस्पर तुलना करने से हिन्दी-कहानी के विविध युगों की रचनात्मक-प्रक्रिया से सम्बन्धित कुछ महत्वपूर्ण सूत्रों का पता चल सकता है ।

पूर्व प्रेमचन्द–युग की कहानियों में कुतूहल, चमत्कार, तथा दैवी संयोग का प्राधान्य दिखाई पड़ता है और अधिकाँश कहानियों का प्रयोजन इन्हीं रहस्यपूर्ण तत्वों में निःशेष दिखाई पड़ता है । इन्शा की कहानी "रानी केतकी की कहानी", किशोरीलाल गोस्वामी की कहानी "इन्दुमती", रामचंद्र शुक्ल की कहानी "ग्यारह वर्ष का समय", केशवप्रसाद सिंह की कहानी "आपत्तियों का पर्वत" आदि में अलौकिक घटना-चमत्कार की प्रधानता स्पष्ट दिखाई पड़ती है । असम्भव घटनाओं से भरी हुई इंशा की कहानी (रानी केतकी की कहानी) में कहानी के अनुकूल कथा–संगठन बहुत साधारण है, केवल कुतूहलपूर्ण वैचित्र्य सर्वत्र मिलता है ।[1] साथ ही, इस कहानी के

१– "असम्भव घटनाओं का समावेश तो अवश्य है और ऐसा पुराने उपन्यासों में प्रायः मिलता है । उर्दू की मसनवियों तथा पुरानी प्रेम कहानियों के कथावस्तु यदि संक्षेप में लिखे जाँय तो उनका सार यही निकलेगा कि अकस्मात् मिलने से प्रेमोत्पत्ति हुई, जादू आदि के जोर से पशु बनाकर या ऐसी ही घटना से विरह हुआ और फिर दोनों मिल गये । वैसी ही कथावस्तु इस कहानी में है जो, कहना चाहिये कि विशेष रोचक नहीं है ।"
—इंशा, उनका काव्य तथा रानी केतकी की कहानी :
(कमलमणि ग्रन्थमाला-४) ले० और सं० ब्रजरत्नदास, बी० ए०, पृ० ७।

लेखक का वक्तव्य [1] भी अस्वाभाविक कुतूहल से युक्त है। प्रत्यक्ष है कि "फूल उगलने वाली" इस कहानी से यथार्थ की अभिव्यक्ति की आशा करना व्यर्थ है। यह शुद्ध कुतूहल-स्तर की कहानी है, जिसकी प्रेरणा घटनात्मक वैचित्र्य तथा दैवी संयोग में निहित है।

किशोरीलाल गोस्वामी की कहानी "इन्दुमती" [2] में अनेक भाव-प्रतिक्रियाओं के चित्रण की सम्भावना विद्यमान है पर मूलतः कहानी की घटनाओं की रहस्यपूर्ण परिधि में सीमित जान पड़ती है। "इन्दुमती" जैसे चरित्र की खोज ही लेखक की रचनात्मक प्रेरणा और रुचि को ज्ञापित करती है, जो जब से परिस्थिति को समझने योग्य हुई तब से नाना प्रकार के बनैले पशु. पक्षियों, वृक्षावलियों और गंगा की धारा के बीच ही रहती आई और जान ही न सकी कि "संसार का संसारी सुख क्या है और इसमें कैसे-कैसे विचित्र पदार्थ भरे पड़े हैं।" [3] चरित्र का यह विस्मयादिबोधक भाव ही इस कहानी की प्रेरणा की दिशा को सूचित करता है।

रामचन्द्र शुक्ल की कहानी "ग्यारह वर्ष का समय" [4] आदि से अंत तक कुतूहलप्रद वैचित्र्य से परिपूर्ण है। जिस दैव-योग से कहानी के चरित्रों

१— "टुक घोड़े पर चढ़के अपने आता हूँ मैं
करतब जो कुछ है कर दिखाता हूँ मैं
उस चाहने वाले ने जो चाहा तो अभी
कहता जो कुछ हूँ कर दिखाता हूँ मैं

अब आप कान रखके, आँखें मिलाके, सन्मुख होके टुक इधर देखिये, किस ढब से बढ़ चलता हूँ और अपने फूल के पंखड़े जैसे होठों से किस–किस रूप के फूल उगलता हूँ।"

—इंशा, उनका काव्य तथा रानी केतकी की कहानी,
स० ब्रजरत्नदास : पृ० ९०।

२—सरस्वती, भाग १, संख्या ६, जून १९०० ई०।

३—वही, पृ० १७८।

४—सरस्वती, भाग ४, संख्या ९, सितम्बर, १९०३ ई०।

को ऊँची पहाड़ी दीख पड़ती है और वहीं देव–मन्दिर में रंग बिरंगी चूड़ियों के टुकड़े दीख पड़ते हैं और ज्योत्स्नालोक में श्वेत परिच्छेद वारिणी स्त्री जल का पात्र लिये खण्डहर के एक पार्श्व से दूसरे पार्श्व की ओर निकलती हुई लक्षित होती है––यह सब कुछ मिलकर कहानी के रहस्यात्मक विधान को अधिक जटिल बना देता है। और इस रहस्यात्मकता का चरमोत्कर्ष यह है कि वर्षा के वियुक्त दम्पत्ति मिल जाते हैं।

उपर्युक्त सभी कहानियों की सीमा यह है कि जो इनके प्रेरक तत्व हैं, वही इनकी परिणति या उपलब्धियाँ भी हैं। पूर्व-प्रेमचन्द युग की ये कहानियाँ अपने रूप विधान में "ऐन्द्रजालिक" कही जा सकती हैं।

पूर्व–प्रेमचन्द–युग की कहानी के प्रेरक तत्वों की उपर्युक्त सीमाओं की पृष्ठभूमि में ऐतिहासिक परिस्थितियों को ध्यान में रखना आवश्यक है। जैसा हमने पहले संकेत किया है, पूर्व–प्रेमचन्द युग का साहित्य प्रथम महायुद्ध (सन् १९१४) से पहले का साहित्य है। उस युग में छिटपुट रूप से तो राजनीतिक चेतना का आभास मिलता है पर युग की व्यापक जीवन–दृष्टि का योग उससे नहीं हो पाया था। कहीं हिन्दू राष्ट्रीयता की भावना का उन्मेष दिखाई पड़ता है, तो कहीं ब्रिटिश साम्राज्यवाद का प्रच्छन्न या प्रत्यक्ष विरोध दिखाई पड़ता है, पर कुल मिलाकर १९१४ से पूर्व की जीवन–दृष्टि परिस्थितियों की वास्तविक प्रक्रिया से उस अर्थ में अनुप्राणित नहीं है जिस अर्थ में वह परवर्ती युगों में दिखाई पड़ती है। पं० नेहरू की आत्मकथा में इस स्थिति का बड़ा मार्मिक संकेत है।[1] और, उसे देखते हुए इस युग के प्रेरक तत्वों की सीमाओं का अनुमान किया जा सकता है। इन सीमाओं को देखने से स्पष्ट होता है कि समाजसुधार की आदर्शवादी भावना का ही उन्मेष इस समय तक हो पाया था। तिलक और गोखले का सामयिक

१––"टुवर्ड्स द एण्ड आफ १९१२ इण्डिया वाज, पोलीटिकली, वेरी डल। तिलक वाज इन गोल, द एक्सट्रीमिस्ट्स हैड बीन सैट अपान एण्ड वेयर लाइंग लो विदाउट एनीं इफैक्टिव लीडर शिप,………………………द कांग्रेस वाज माडरेट ग्रुप मीटिंग एनुअली, पासिंग सम फीबुल रिजोल्यूशन्स, एण्ड अट्रैक्टिंग लिटिल अटेन्शन।"

––ऐन आटोवायोग्राफी : जवाहरलाल नेहरू : पृ० २७।

प्रश्नों पर मतभेद उस समय की असंगति का महत्वपूर्ण उदाहरण है। तिलक जहाँ नौकरशाही के प्रति संघर्ष की चेतना फैलाना चाहते थे, वहाँ गोखले को नौकरशाही के साथ मिलकर कार्य करना होता था। पर धीरे–धीरे विद्रोह की चेतना विकसित हो रही थी और इस समय के अन्तिम वर्षों में राज–नीतिक चेतना की प्रभविष्णुता बढ़ने भी लगी थी। पर ये सारे परिवर्तन बुद्धिजीवी वर्ग को ही छू सके थे, व्यापक युग–चेतना का अंग नहीं बन सके थे। यही कारण है कि पूर्व-प्रेमचन्द-युग की कहानियों में यह परिवर्तित चेतना बहुत कम और प्रायः अस्पष्ट रूप में दिखाई पड़ती है। कुछ कहानियों में स्वप्न कथाओं द्वारा ही उन्हें अभिव्यक्ति दी गई है।

प्रेमचन्द-युग की कहानी : आधुनिक बोध के आरम्भ की कहानी-प्रेरक तत्व : सामाजिक तथा व्यावहारिक मनोविज्ञान–

प्रेमचन्द-युग की हिन्दी कहानी का प्रेरक तत्व है-सामाजिक तथा व्यावहारिक मनोविज्ञान। यही कारण है कि इस युग की कहानियों में समाज की परिस्थितियों, सम्बन्धों, चरित्रों, व्यावहारिक कार्यकलापों, घटनाओं का सहज स्वाभाविक वर्णन प्राप्त होता है। सामाजिक संस्थाओं का मानवीय आचरण पर अनिवार्यतः प्रभाव पड़ता है। जैसे-जैसे सामाजिक संस्थाओं का रूप बदलता है, मानव-व्यवहार भी बदलता है। साहित्य मानवीय व्यवहार तथा मानव के सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन, पर्यवेक्षण और चित्रण करता है, अतः युग के अनुसार उसके मूल्य भी बदलते हैं। प्रमुख समस्या यह होती है कि किस रूप में मानव के सामाजिक सम्बन्ध साहित्य में मूर्त हो पाते हैं। यह प्रश्न कथासाहित्य की दृष्टि से कहीं अधिक महत्वपूर्ण माना जाना चाहिए; क्योंकि मानव के सामाजिक सम्बन्धों का जितना व्यापक एवं गहन चित्रण कथा-साहित्य के क्षेत्र में संभव है, अन्यत्र नहीं। मानव-सम्बन्ध सभ्यता के साथ जितने ही जटिल होते गए हैं, कथाकार के दायित्व उतने बढ़ते गए हैं। "उपन्यास" को आधुनिक युग में "महाकाव्य" की संज्ञा और प्रतिष्ठा दी जाने लगी है, [1] यह बात आकस्मिक नहीं है। आधुनिक आलोचकों की दृष्टि में "कृति" तथा "समाज" के बीच के आन्तरिक सम्बन्ध में ही उसका वास्तविक मूल्य निहित है। [2]

१– द नावेल ऐण्ड द पिपुल : राल्फ फाक्स (१९५४) पृ० ९०।
२– डिक्शनरी आफ वर्ल्ड लिट्रेचर : शिप्ले : पृ० ३६२।

प्रेमचन्द-युग के कथाकारों ने, कतिपय सीमाओं के होते हुए भी उपरिनिर्दिष्ट मान्यता में अपने विश्वास का परिचय दिया है, और क्योंकि, उनकी प्रेरणा का स्रोत समाज का व्यवहार-मनोविज्ञान ही है, अतः स्वाभाविक रूप से समाज के तथा व्यक्ति के अनेकशः सम्बन्धों का चित्रण तत्कालीन कहानियों में उपलब्ध होता है। प्रेमचन्द, प्रसाद, कौशिक, सुदर्शन आदि की कहानियों में ये विशेषताएँ स्पष्ट दिखाई देती हैं।

प्रेमचन्द की कहानी "बूढ़ी काकी" इस दृष्टि से, अत्यन्त महत्वपूर्ण कहानी है जिसमें एक साथ ही शिशु–मनोविज्ञान, तथा वृद्धावस्था का मनोविज्ञान चित्रित है। अवस्थाओं से सम्बन्धित मनोविज्ञान के अतिरिक्त भाव–प्रतिक्रियाओं का सूक्ष्म मनोविज्ञान भी इस कहानी में प्रत्यक्ष है। लाड़ली के मन में जहाँ एक स्नेहसुलभ आकांक्षा है कि वह बूढ़ी काकी को परितृप्ति दे सके, वहीं अपराध का भय भी है।[1] इस भय–मनोविज्ञान

१– "उनके बुढ़ापे पर, दीनता पर, हतज्ञान पर किसी को करुणा न आती थी। अकेली लाड़ली उनके लिये कुढ़ रही थी।.....................बेचारी भोली लड़की थी। बाल विनोद और चञ्चलता की उसमें गन्ध तक न थी। दोनों बार जब उसके माता-पिता ने काकी को निर्दयता पूर्वक घसीटा तो लड़की-का हृदय ऐंठ कर रह गया। वह झुंझला रही थी कि यह लोग काकी को क्यों बहुत–सी पूड़ियाँ नहीं दे देते? क्या मेहमान सब की सब खा जायेंगे। और यदि काकी ने मेहमानों से पहले खा लिया तो क्या बिगड़ जायगा? वह काकी के पास जाकर उन्हें धैर्य देना चाहती थी, परन्तु माता के भय से न जाती थी। उसने अपने हिस्से की पूड़ियाँ बिल्कुल न खाई थीं।...........वह उन पूड़ियों को काकी के पास ले जाना जाहती थी।............

बूढ़ी काकी मेरी बात सुनते ही उठ बैठेंगी। पूड़ियाँ देखकर कैसी प्रसन्न होंगी। मुझे खूब प्यार करेंगी। ....काकी को पूड़ियाँ खिलाने की खुशी उसे सोने न देती थी।..........जब विश्वास हो गया कि अम्मा सो रही हैं, तो वह चुपके से उठी..........चारों ओर अंधेरा था। केवल चूल्हों में आग चमक रही थीं, और चूल्हों के पास एक कुत्ता लेटा हुआ था। लाड़ली की दृष्टि द्वार के सामने वाले नीम की ओर

का विश्लेषण करते हुये डा० सत्येन्द्र ने संकेत किया है[1] कि बालकों में भय निश्चित आकार ग्रहण करके आता है। अतः लाड़ली के भय के लिये हनुमान की कल्पना निश्चित आलम्बन बनकर आती है, हमारी दृष्टि में लाड़ली के भय का आलम्बन सारा वातावरण ही है जिसमें नीम-वृक्ष भी है, हनुमान भी।

कौशिक की "ताई"[2] शीर्षक कहानी इसका उदाहरण है कि कैसे इस युग के कहानीकारों ने व्यक्ति के व्यवहार-मनोविज्ञान को अपनी कहानी का उपजीव्य बनाया है। बाबू रामदास जी के प्रश्न : "और अपनी ताई को नहीं ले जायेगा ?" पर बालक का असहमति का भाव मुख पर लाना और कहना : "ताई को नहीं ले जायेंगे" परिस्थिति में एक तीव्र मनोवैज्ञानिक संघर्ष उपस्थित करता है। कहानी में व्यक्त मानव-व्यवहार के चित्रण को देखकर सहज ही जाना जा सकता है कि लेखक के चरित्र-चित्रण का आधार व्यवहार-मनोविज्ञान ही है—परिस्थितियों के सीधे आघातों ने जिसका निर्माण किया है।

प्रेमचन्द-युग की अधिसंख्य कहानियों में सामाजिक तथा व्यावहारिक मनोविज्ञान का अध्ययन है। कुछ कहानियों में यह मनोविज्ञान अत्यन्त सहज और कुछ में अत्यन्त सूक्ष्म रूप में चित्रित हुआ है। उदाहरण के लिए "प्रसाद"

गयी उसे मालूम हुआ कि उस पर हनुमान जी बैठे हुये हैं। उनकी पूँछ उनकी गदा स्पष्ट दिखलाई दे रही थी। मारे भय के उसने आँखें बन्द कर लीं, इतने में कुत्ता उठ बैठा—लाड़ली को ढाढ़स हुआ।"

—प्रेमपचीसी—प्रेमचन्द : पृ० ९३।

१– "भय का तत्व सबमें विद्यमान रहता है।............पर भय का रूप सबके लिये भिन्न होता है। बड़े मनुष्यों में परिज्ञान सीमा के आधार पर अनुमान, आशंका, भेद, अज्ञान आदि उपादानों के कारण भय पैदा होता बालक की अविकसित मानसिक अवस्था में ये ऊँचे सूक्ष्म स्थान्तर पैदा नहीं होते, उनका भय तो कोई निश्चित आकार ग्रहण करके आता है।"

—प्रेमचन्द : उनकी कहानी कला : डा० सत्येन्द्र : पृ० २०८।

२– चित्रशाला, विश्वम्भरनाथ शर्मा "कौशिक", पृ० ३९।

की मनोवैज्ञानिक कहानियों में मन के अधिक सूक्ष्म व्यवहारों, सम्बन्धों और अन्तर्द्वन्द्वों का चित्रण है । "पुरस्कार" "आकाशदीप", "मधुआ", "व्रतभंग" आदि कहानियाँ इसी विशिष्ट मनोवैज्ञानिक स्तर की रचनायें हैं । इनमें सामाजिक व्यवहार के तलस्पर्शी मनोविज्ञान का उपयोग नहीं मिलेगा पर यही बात "प्रसाद की रचनात्मक विशेषताओं से प्रभावित सभी कहानियों के लिए नहीं कही जा सकती है । उदाहरण के लिए रायकृष्णदास की कहानियों में तो यह विशेषता देखी जा सकती है, पर हृदयेश की कहानियों में नहीं । इसी प्रकार चतुरसेन शास्त्री और उग्र की कहानियों की रचना–प्रक्रिया के अध्ययन से ज्ञात होता है कि सामाजिक मनोविज्ञान के उपयोग की उनकी पद्धति सबसे भिन्न है । चतुरसेन शास्त्री ने जहां चौपाटी का चक्कर लगा–लगाकर सामाजिक मनोविज्ञान का अध्ययन किया है और उससे प्रभावित हुए हैं वहाँ उग्र ने जीवन के नंगे यथार्थ का साक्षात्कार करते हुए सामाजिक मनोविज्ञान को ग्रहण करना चाहा है और व्यंग्य-विधान में उसका उपयोग किया है ।

प्रेमचंद-युग का साहित्य जैसा हमने पहले निवेदन किया है, हमारे देश के राजनीतिक एवं सामाजिक उथल–पुथल के समय का साहित्य है । इस युग के रचनाकारों के मन पर जहाँ मानवजीवन की स्वाभाविक परिस्थितियों की चेतना का प्रभाव रहा है, वहीं देश की ऐतिहासिक चेतना के विकास के साथ परिवर्तित परिस्थितियों की प्रतिक्रिया का प्रभाव भी रहा है । प्रेमचन्द-युग के कहानीकारों ने सन्देह और आदर्श-संकोच की सीमा के होते हुये भी परिस्थितियों के वास्तविक बोध का साक्षात्कार किया है, इसके पीछे बहुत से कारण रहे हैं । मुख्यत: गाँधी जी के नेतृत्व के फलस्वरूप देश में आयी हुई राष्ट्रीय चेतना की लहर ने इस युग के कृतिकारों के रचनात्मक मानस को आन्दोलित किया है । यही कारण है कि प्रेमचन्द-युग की कहानी की चेतनता और असंगति "गांधीवाद" की चेतना और असंगति के समतुल्य जान पड़ती है ।

प्रेमचन्द–युग की कहानी के प्रेरक तत्वों में सबसे महत्वपूर्ण स्थान स्वराज्य आन्दोलन के विकास का है । १९१४ से १९३६ के बीच की परिस्थितियों ने इस युग के रचनाकारों को तीव्रता से आन्दोलित किया है । इस युग के जो लेखक इस अवधि के आन्दोलनों में प्रत्यक्षत: सम्मिलित नहीं हुये हैं, वे भी दूर-दूर से उन्हें देखते और समझते रहे हैं । राष्ट्रीय जीवन में आनेवाले स्फूर्त परिवर्तन ने प्रेमचन्द-युग के रचनात्मक मानस को पिछले युग की तुलना

में बहुत अधिक प्रभावित किया है। जिन प्रेरणाओं ने प्रेमचन्द-युग के रचनात्मक मानस का निर्माण किया है, उन्होंने इस युग के लेखकों में यह चेतना भी जगा दी है कि "यह संसार चुपके से रामभरोसे बैठनेवालों के लिए नहीं है। यहाँ तो अंत समय तक (खटना) और लड़ना है।" [1]

उत्तर प्रेमचंद-युग की कहानी : आधुनिक बोध के विकास की कहानीप्रेरक तत्व : आधुनिक मनुष्य की खोज आधुनिक-समस्याओं की खोज-आधुनिक यथार्थ की खोज

जैसे-जैसे बौद्धिक संवेदना गहरी होती गयी है, कहानी में आधुनिक यथार्थ की खोजपूर्ण व्याकुलता प्रधान होती गयी है और कृतिकार आधुनिक मनुष्य की गहरी समस्याओं के सर्वेक्षण और चित्रण में संलग्न होते गये हैं। पर, आधुनिक यथार्थ के प्रति यह औत्सुक्य कहानी में व्यक्त होते हुए आधुनिक भाव-बोध का परिणाम नहीं, कारण है, प्रेरकतत्व है। समय और सभ्यता के विकास और मूल्यगत संक्रमण तथा परिवर्तन के साथ मानव-सम्बन्धों के बीच जो तनाव आया है, जो जटिलता आयी है– उसी के यथार्थ रूप की खोज उत्तर प्रेमचन्द-युग की कहानियों में प्रत्यक्ष है। अज्ञेय तथा जैनेन्द्र, यशपाल तथा "अश्क" की अधिकाँश कहानियों का यही आधारभूत विषय है। इसी समस्या को यशपाल और किसी सीमा तक उपेन्द्रनाथ "अश्क" ने अधिक सामाजिक स्तर और अज्ञेय तथा जैनेन्द्र ने अधिक वैयक्तिक भूमि पर देखने का यत्न किया है। आधुनिक कहानीलेखकों ने आधुनिक सम्बन्धों के साम्प्रतिक गूढ़ तनाव को अधिक सूक्ष्म, परन्तु निर्मम भाव से चित्रित करने का प्रयत्न किया है।

उत्तर प्रेमचंद-युग की कहानी आधुनिक बोध के विकास की कहानी है, इसमें सन्देह नहीं। इस युग की कहानी में व्यक्त आधुनिक समस्याओं का यथार्थ-बोध आधुनिक मनुष्य की संवेदनात्मक प्रतिक्रिया और उसके अन्तर्गत घटित होनेवाली वृहत्तर भावनात्मक क्रान्ति का सूचक है। विचारणीय है कि यह आधुनिक मनुष्य कौन है ? वह, जिसे अपने परिवेश का निर्माण करनेवाले

४१–जैनेन्द्र को लिखे गये प्रेमचन्द के पत्र से
चिट्ठी पत्री : प्रेमचन्द : भाग २ (संक० अमृतराय) पृ० ३५।

सभी ज्ञात–अज्ञात सन्दर्भ-सूत्रों की सम्यक् ऐतिहासिक चेतना है, और जो अपने छोटे-से-छोटे अनुभवों के प्रति सम्पूर्ण संसक्ति का अनुभव करता है तथा जो मानव-मूल्यों के प्रति निरन्तर आस्थावान है, आधुनिक मनुष्य है, या वह जो अस्तित्व को नकारता है, मानव-मूल्यों और मर्यादाओं तथा मानव-भविष्य के प्रति आस्थापूर्ण है और समाज के विकास की ऐतिहासिक प्रक्रिया से अपने को सर्वथा विच्छिन्न अनुभव करता है, "आधुनिक मनुष्य" है। हमारी दृष्टि में मानव-भविष्य को अस्वीकार करनेवाला व्यक्ति "मनुष्य" होने के अर्थपूर्ण दायित्व से ही विमुख होता है, वह यंत्र हो सकता है मनुष्य नहीं। जैसा हमने, भूमिका में और आगे की व्याख्याओं में संकेत किया है, आधुनिकता, हमारी दृष्टि में, वह विशेष भावबोध है जो "वस्तु" को या "वस्तु" के प्रति-क्रियात्मक "अनुभव" को एक निश्चित ऐतिहासिक प्रक्रिया में देखने की शक्ति देता है। इस आधार पर "आधुनिक मनुष्य" की संज्ञा उसे देना ही उचित है, जो परिवेश के यथार्थ को सम्यक् जानता है, जिसे परिवेश और परम्परा की सम्यक् चेतना है, जो परम्परा-विरोधी नहीं, है पर परम्परा के निर्जीव मूल्यों व झूठी मर्यादाओं को अस्वीकार करता है तथा जीवन की निरन्तर एषणा जिसमें बनी हुई है। उत्तर प्रेमचन्द-युग की कहानी में यह धारणा बार-बार पुष्ट होती है कि "आधुनिक मनुष्य" अपने विभक्त व्यक्तित्व की बहुमुखी प्रतिक्रियाओं का भोक्ता है और यही कारण है कि समान प्रतिक्रियाओं को बहन करने वाले चरित्र आधुनिक कहानी में लक्षित नहीं होते।

अनुभवों के प्रति सम्पूर्ण संसक्त होते हुए भी आधुनिक मनुष्य एक विशेष संवेदनात्मक स्तर पर अपनी आत्मीय निजता को पृथक रखना चाहता है, यह एक आश्चर्यपूर्ण विडम्बना जैसी स्थिति है। अज्ञेय की कहानियाँ, "मेजर चौधरी की वापसी"[1] तथा "वे दूसरे",[2] नरेश मेहता की कहानियाँ, "चाँदनी"[3] और "तथापि"[4] राजेन्द्र यादव की कहानी "खेल"[5] इसी संवेदनात्मक स्तर की कहानियाँ हैं। एक ही धरातल पर,

---

१– जयदोल : अज्ञेय : पृ० १३९।

२– वही –पृ० ७१।

३– तथापि : नरेश मेहता : पृ० ३।

४– वही : पृ० १०९।

५– छोटे-छोटे ताजमहल और अन्य कहानियाँ : राजेन्द्र यादव : पृ० २३।

अनुभवों के प्रति सम्बद्धता और निरपेक्षता—यह कोरा विरोधाभास नहीं है, इस विरोधाभास का एक दर्शन भी है : विभक्त व्यक्तित्व का दर्शन।

आधुनिक यथार्थ की खोज का दावा करनेवाले लेखकों ने जो समस्यायें उठायी हैं, उनमें मुख्य हैं : विघटित जीवन-मूल्यों की समस्या, स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों की नैतिकता की समस्या, व्यक्ति की स्वतन्त्रता की समस्या आदि। समस्याएं और भी हैं, और वे बृहत्तर सामाजिक जीवन—सन्दर्भों से संबन्धित हैं—पर उनकी ओर कम ध्यान दिया गया है। यह मान लेने की भूल भी की गई है कि आधुनिक भाव-बोध के चित्रण की संभावना उन समस्याओं के भीतर कम है। कुछ थोड़े से कहानीकार, विष्णुप्रभाकर, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, द्विजेन्द्रनाथ मिश्र 'निर्गुण', भैरव प्रसाद गुप्त आदि, उन्हीं समस्याओं पर कहानियाँ लिखने का प्रयोग कर रहे हैं, यह सोचकर संतोष होता है। अस्तु,

जिस 'आधुनिक मानव' की खोज, यथार्थ के प्रति जागरूक आधुनिक कहानी में है, उसकी मुख्य समस्या विघटित जीवन-मूल्यों की समस्या है। अज्ञेय तथा यशपाल की कहानियों में यह समस्या भिन्न-भिन्न कोण से उठायी गयी है। तथा, कुछ अन्य कहानीकारों ने भी यह जटिल समस्या उठाने का साहस किया है। आधुनिक कहानियों में व्यक्त यौन समस्याओं के अध्ययन से यह सहज ही जाना जा सकता है कि समस्या यौन अतृप्ति या कुंठा की न होकर विघटित जीवन-मूल्यों की ही है। अज्ञेय की कहानी 'मेजर चौधरी की वापसी'[1] में एक फौजी व्यक्ति एकाधिक स्त्रियों से यौनसम्बन्ध इसलिए स्थापित करना चाहता है कि वह अपने सहकर्मियों के बराबर हो सके। विचारणीय है कि क्या यह समस्या यौन-अतृप्ति की समस्या है या अनैतिक असन्तोष कुंठा की है। क्या इस समस्या के पीछे युद्ध पीड़ित तथा तत्सम्बन्धी आतंक से भरे हुए विकृत जीवन और मनःस्थिति की गूंज नहीं है? इसी प्रकार यशपाल की कहानी 'आबरू'[2] में जो स्त्री अपने 'तन' का व्यवसाय करती है क्या उसकी समस्या यौन-अनैतिकता की समस्या है? संभवतः नहीं। कहानी में ही ये संकेत दिए गए हैं कि परिवार सम्बन्धों की जानकारी में किया हुआ तन का व्यवसाय जीवन चलाने की विवशता से प्रेरित है। यश-

---

१—जयदोल : अज्ञेय : पृ० १३९।
२—तुमने क्यों कहा था मैं सुन्दर हूँ : यशपाल : पृ० ८३।

पाल की ही अन्य कहानी 'पराया सुख' [1] में उर्मिला सेठी की स्नेह-कृपा के सम्मुख पराजित होकर अपनी विवश परिस्थिति के शाप का सम्पूर्ण अनुभव करती है। मन्नू भण्डारी की कहानी 'ईसा के घर इन्सान' [2] में युवा अध्यापिकाओं की यौनकुंठा का चित्रण है, पर वह उस बड़ी यौन-अनैतिकता पर व्यंग करने के उद्देश्य से चित्रित है जो 'धर्म' और 'संस्कृति' के नाम पर समाज में पूजित होता है। चलते समय अन्य अध्यापिकाओं से कहे हुए सिस्टर एंजिला के शब्द : 'मुझे कोई नहीं रोक सकता, जहाँ मेरा मन होगा, मैं जाऊंगी। मैने तुम्हारे फादर......अब वे कभी ऐसी फालतू बातें नहीं करेंगे :[3] धर्म के नाम पर पूजित अनैतिकता पर बड़ा तीव्र आधात करते हैं।

वैज्ञानिक और औद्योगिक सभ्यता ने विश्व-स्तर पर जो महत्वपूर्ण प्रतिक्रियायें विकसित कीं, उनमें प्रमुख थी : धर्म के प्रति अनास्था। जैसे, जीवन के दूसरे आदर्श मूल्य नष्ट हुए, वैसे ही धर्म के प्रति विश्वास नष्ट हुआ। निर्मल वर्मा की कहानी 'परिन्दे' [4] में अन्य विघटित जीवन-मूल्यों के चित्रण के साथ धार्मिक अनास्था के उदय का भी चित्रण है। इस कहानी में एक ओर फादर एल्मंड प्रार्थना पढ़ रहे हैं : 'जीसस सेड आई एम द लाइट आफ द वर्ल्ड—ही टू फालोएथ भी शैल नाट वाक इन डार्कनेस, बट शैल हैव द लाइट आफ लाइफ,...और दूसरी ओर डाक्टर मुकर्जी ऊब और उकताहट से भरी जम्हाई लेते हुए सोचते हैं : 'कब यह किस्सा खत्म होगा !'

"नैतिकता" नामक प्रत्यय के प्रति एक विद्रूप भाव आधुनिक युग की अधिकाँश कहानियों में दिखाई पड़ता है। प्रकारान्तर से यह प्रश्न श्लील और अश्लील का भी है, क्योंकि अनैतिक वर्णनों में प्राय: अश्लीलता का आरोप कर लिया जाता है। प्रश्न यह है कि कहानी समाज की अनैतिकता को जहाँ उद्घाटित करने की प्रक्रिया में अनैतिक सम्बन्धों का चित्रण करना चाहती है वहाँ भी क्या अश्लीलता का निवास ही माना जायगा। नैतिकता जैसे सापेक्ष मूल्य है, वैसे ही 'श्लीलता' भी सापेक्ष मूल्य है। प्राय: आलोचकों ने इस 'सापेक्ष मूल्य-भावना' को पृथक् रख कर आधुनिक कहानी का मूल्यांकन

१—यशपाल की श्रेष्ठ कहानियाँ : (राज० प्रका०) पृ० ७।
२—मैं हार गई : मन्नू भण्डारी : पृ० ११।
३—मैं हार गई : मन्नू भण्डारी : पृ० २५।
४—परिन्दे : निर्मल वर्मा : पृ० १३७।

किया है जिसके उत्तर में यशपाल का यह कथन विचारणीय है कि 'कला, साहित्य और संस्कृति पर व्यक्तिगत, देशकाल से सीमित सामाजिक संस्कारों और अभ्यासों के बन्धन लगा देना उचित नहीं।'[1]

नैतिकता का व्यंगपूर्ण उपहास करनेवाली आधुनिक कहानियाँ कभी-कभी हास्यास्पद युक्ति की प्रतिष्ठा भी करती हैं, राजेन्द्र यादव की कहानी 'अन्धा शिल्पी और आँखों वाली राजकुमारी'[2] इसका उदाहरण है। पर प्रेम, सौन्दर्य और रसानुभूति की समस्याओं को उपहास के स्तर पर टालना आधुनिकता नहीं, आधुनिकता का भ्रम मात्र है। प्रेम के आधुनिक भाव–बोध की कहानियां कम लिखी गई हैं और उनमें भी ऐसी कहानियाँ तो बहुत थोड़ी हैं जिनकी कलात्मक सफलता को आदर्श कहा जा सके। रघुवीरसहाय की कहानी 'इन्द्रधनुष' ऐसी ही एक कहानी है। प्रेम का एक अभूतपूर्व संवेदन अयाचित ही कथानायक के मन को छू जाता है और वह इस अनायास घटित अनुभव के प्रति कृतज्ञ अपनी धर्मप्रिया के निकट आ खड़ा होता है, तो उसके पास इस चरम रागात्मक अनुभव को व्यक्त करने के लिए उपयुक्त शब्द नहीं होते–प्रस्तुत कहानी इस तीव्र आधुनिक रागबोध की कहानी है, जिसका अन्त[3] मानों इस भावबोध की व्याख्या है।

१–"कला, साहित्य और संस्कृति पर व्यक्तिगत, देशकाल से सीमित सामाजिक संस्कारों और अभ्यासों के बन्धन लगा देना उचित नहीं। न उस दृष्टिकोण से साहित्य, कला और संस्कृति की उपलब्धियों के औचित्य, अनौचित्य, श्लीलता अथवा अश्लीलता का निर्णय किया जाना चाहिए। इन उपलब्धियों को व्यक्तिगत और संस्कार विशेष के दृष्किोण से सीमित करने का प्रयत्न उन्हें पंगु और विरूप बना देना है।'

—मेरी रचनाओं में अश्लीलता का प्रश्न : यशपाल : सारिका, सितम्बर १९६२।

२–अभिमन्यु की आत्महत्या, राजेन्द्र यादव : पृ० २१।

३–'उसने दरवाजा खोला और वे शब्द जो वह दरवाजा खोलने पर मानो हमेशा कहती है मैने स्पष्ट सुने। वह मुस्कराहट भी नहीं थी और हंसी भी नहीं, बल्कि उसका स्वागत था जो उसके चेहरे पर आया और मैंने सिर उठा कर उससे आँखें मिला दीं। तुम खुश हो, पर तुम नहीं जानती कि अभी क्या हुआ है, मैंने कहा।

जब रवीन्द्रनाथ ने 'निर्विकार तद्गत भाव से देखने [1]' को 'आधुनिकता' की संज्ञा दी थी, तो संभवतः उन्होंने इस पर बल देना चाहा था कि आधुनिक व्यक्ति अपनी यथार्थ समस्याओं की प्रतिक्रिया भी भावात्मक (सेन्टीमेन्टल) स्तर पर देखना चाहता है ताकि वह 'निरासक्त' चित्त से 'वस्तु' और "वस्तु की प्रतिक्रिया" अर्थात् अनुभव को देख सके। आधुनिक कहानी में कुछ समस्यायें, जिनके कारण शुद्ध सामाजिक यथार्थ से सम्बन्धित हैं, अत्यन्त भावात्मक स्तर पर चित्रित की गयी हैं। 'खाली विद्रोह' और 'छूछे प्यार' की समस्यायें ऐसी ही समस्यायें हैं। इन समस्याओं को अधिक निजी, वैयक्तिक भूमि पर भोगनेवाले 'व्यक्ति' ही निर्मल वर्मा की कहानियों के नायक हैं जो अपने अतीत के प्रति 'लज्जा' का अनुभव करते हैं, बोलते हैं, तो दूसरों की बातें चुराकर बोलते हैं और प्रायः बोलने के क्रम में गलत शब्द चुन लेते हैं।[2] आधुनिक व्यक्ति के खोखलेपन को चित्रित करनेवाली इन कहानियों का कोई महत्व है तो यह देखने के लिए कि आधुनिक आत्मचेतस् व्यक्ति आत्मावलोकन करते हुए किन-किन परिस्थितियों और प्रतिघातों से गुजरता है जो एक संक्रमण

उसने मेरी भीगी आंखों को देखा, पूछा, क्या हुआ।

बहुत कुछ, मैंने मन में कहा और तुम कितनी सुन्दर हो, पर एक शब्द भी मैं बोलूंगा नहीं क्योंकि जो भी कहूँगा, अप्रासंगिक होगा।...

मैंने झुककर उसके सीने पर सिर रख दिया। देखो, मैं वापस आ गया हूं और टूटा नहीं हूं। उसके गोरे सीने पर सोने की माला थी जो गले के चारों ओर घूम गयी थी जैसे एक कहानी पूरी हो गयी हो।......

उसने अपने हाथ का काम रख दिया और मुझ पर हाथ रख कर पूछा, क्या हुआ ?

नहीं, मैंने कहा, कोशिश मत करो, ऐसी ही रहो जैसी तुम हो सुन्दर और उज्ज्वल और बिना वह जानते जो मेरे अन्दर हुआ है।...'

—इन्द्रधनुष, सीढ़ियों पर धूप में, रघुवीरसहाय, पृ० ५३-५५।

१—साहित्य के पथ पर : रवीन्द्रनाथ ठाकुर : पृ० ८३।

२—'लगता है, मानों हम किसी दूसरे आदमियों की बातों को चुराकर बोल रहे हैं। हमें अपने अतीत पर बहुत शर्म आती है। यह बहुत अच्छा है कि जो लोग हमसे आज मिलते हैं वे हमारे उन दिनों से अपरिचित हैं जब हम हर रात डायरी लिखकर दूसरे दिन एक दूसरे को सुनाते थे और सोचते थे कि हम एक दूसरे से भिन्न हैं।

काल की देन हैं। अज्ञेय की कहानी 'वे दूसरे' में हेमन्त का स्मृति–चिन्तन [1] इसी स्तर का है। अपने–अपने दायित्व की व्यंगपूर्ण युक्ति से आहत यशपाल की कहानी 'अपनी–अपनी जिम्मेवारी' की नायिका प्रभा अपने कृत्रिम प्रेम के खोखलेपन को सीधी सामाजिक प्रतिक्रिया के अनुसार अनुभव करती है। उसके ये शब्द :'''मुझे क्या भय ? समझ खोकर धोखे में आ रही थी।''' अपनी जिम्मेवारी समझती हूं' [२] मानों उसे ही व्यंग्य का विषय बनाते हैं।

कुछ आधुनिक लेखक "आधुनिक मानव" को "लघुमानव" का पर्याय समझने और उसे वैसा ही चित्रित करने लगे हैं, पर यह एक भ्रामक विचार–धारा का परिणाम है जिसकी ऐतिहासिक परम्परा सविशेष गौरव से युक्त रही हो और जिसे परम्परा द्वारा बृहत्तर संवेदनाओं का महत्वपूर्ण दाय मिला हो वह "भारतीय" आधुनिक मनुष्य "लघुता" का पर्याय हो सकता है, यह सोचकर आश्चर्य होता है। माना कि समय और सभ्यता के विकास के साथ देश और काल की सीमायें विलीन हो रही हैं पर जीवित ऐतिहासिक

जो आज हमें देखेगा, वह कुछ नहीं जानेगा। आज जब हम अपनी पुरानी डायरी पढ़ते हैं तो खिसियाने से हंसते हैं। चारों ओर देखते हैं कि हमें कोई देख तो नहीं रहा।'''हमारा बड़प्पन सब कोई देखते हैं, हमारी शर्म केवल हम देख पाते हैं।'—परिन्दे : निर्मल वर्मा : पृ० ९७।

१–'कहीं नीले-नीले पानी में से मछलियों की तरह निःशब्द से वे दोनों एक दूसरे के पास आए थे, और जैसे मछलियां पानी में भी बलखाती-सी मानों एक दूसरे से सटती सी पेच देती-सी चली जाती हैं, उसी तरह धीरे-धीरे आगे बढ़ गए थे'''फिर सहसा उसने पाया था कि उन मछलियों के पेच नहीं खुल रहे हैं कि वह ठिठुरा हुआ साँप जैसे जाग उठा है–और उसकी गुंजलक में वे दोनों कसे जा रहे हैं, पर पानी नीला होता जा रहा है और उनके कपड़े भी मानों मोम से जान पड़ रहे हैं या कि हैं ही नहीं, केवल नीले पानी में कांपती उनकी परछाई है······

और फिर सब नीला हो गया था, एक द्रव जिसमें वे जड़ होते जा रहे हैं, न उलझे न अलग, गर्म पानी में पड़ी हुई मोम की बूंद जो न घुल सकती है, न जम सकती है।'

—जयदोल : अज्ञेय : पृ० ८१।

२–यशपाल की श्रेष्ठ कहानियां : (राज० प्रका०) : पृ० ७४।

परम्परा की चेतना को अस्वीकार करने से ही क्या यह "लघुता" का आदर्श प्रचारित करने वाली "आधुनिकता" पायी जा सकती है। आधुनिकता, यदि रचनात्मक भाव-बोध या दृष्टि है तो वह मनुष्य की सृजनशील आस्था को बृहत्तर परिप्रेक्ष्य देगी और इस तात्कालिक असहायता और अवसाद को दूर करेगी, ऐसी आशा की जा सकती है।

तब तक, हमें पुनः विचार करने की आवश्यकता बनी रहेगी कि सच्ची आधुनिकता क्या है ? सच्चा आधुनिक मनुष्य कौन है ? क्या वह अपरिचित या "अजनबी" है ? उसके "अजनबीपन" के पीछे कौन से सामाजिक कारण हैं ? आकस्मिक नहीं है कि, अल्फ्रेड काजिन ने आधुनिकता की इस परिणति के प्रति असन्तोष प्रकट किया है।[1]

आधुनिक मानव के "विभक्त व्यक्तित्वों" की समस्या रचनाकार के ही लिए नहीं, पाठक के लिए बड़ी महत्वपूर्ण चुनौती है।[2] रचनाकार ने तो यह चुनौती स्वीकार की है, पाठक को यह कार्य करना अभी शेष है—जिसके लिए पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा : कि "उसका मन बुद्धि से भरा है, भावावेग को वह एकदम तो कैसे छोड़ सकता है पर उससे चालित होने में वह आधुनिकता का तिरस्कार देखता है।"[3]

संक्षेप में, प्रेमचन्द-युग और उत्तर प्रेमचन्द-युग की हिन्दी-कहानी के प्रेरणा-स्रोतों की भिन्नता का प्रधान परिणाम प्रत्यक्ष है कि प्रेमचन्द-युग की कहानी जहाँ व्यावहारिक तथा सामाजिक मनोविज्ञान के धरातल पर मानव-जीवन की समस्याओं तथा उनके भोक्ता चरित्रों को अधिक बाह्य रूप में चित्रित

१– "साइकोएनालिसिस ऐण्ड लिट्रेरी कल्चर टु डे" : अल्फ्रेड काजिन : : पार्टिजन रिव्यू : १९५६।

२– "इट इज इम्पासिबुल टु डिवाइड ए रीडर इण्टू सो मेनी मेन—ऐन एस्थिटिक मैन, ए मारल मैन, ए प्रेक्टिकल मैन, ए पोलिटिकल मैन, ऐन इन्टेलेक्चुएल मैन एण्ड सो आन।"
—प्रिंसिपुल्स आफ लिट्रेरी क्रिटिसिज्म : आइ० ए० रिचर्ड्स पृ० ७९।

३– साहित्य का मर्म : हजारीप्रसाद द्विवेदी : पृ० २४।
(लखनऊ विश्वविद्यालय व्याख्यानमाला : १)

करती हैं, वहाँ परवर्ती विकास-युग की आधुनिक कहानी आधुनिक मनुष्य के मनोवैश्लेषिक एवं मनोदैहिक प्रश्नों के भीतर प्रवेश करती है। जीवन के यथार्थ की प्रश्नाकुल खोज आधुनिक कहानी को प्राचीन कहानी से पृथक् करती है और उसे सर्वथा नए धरातल पर प्रतिष्ठित करती है। पर इसका यह अर्थ नहीं कि सामयिक परिस्थितियों की प्रेरणा का योग उत्तर-प्रेमचन्द-युग के कहानीकारों में है ही नहीं। जैनेन्द्र की कहानियाँ गान्धीवादी दर्शन की आभ्यन्तर चेतना से सीधे प्रभावित हैं। अज्ञेय की क्रान्ति-चेतना से सम्बन्धित कहानियाँ राष्ट्रीय आन्दोलन की आतंकवादी चेतना को आत्मसात कर सकी हैं। यशपाल की कहानियों की रचनात्मक प्रेरणाओं में बदलते हुए सामाजिक वर्गगत और नैतिक मूल्यों का बहुत बड़ा स्थान है। इसी प्रकार रांगेयराघव, विष्णुप्रभाकर तथा चन्द्रगुप्त विद्यालंकार की कहानियों में देश के परिवर्तित जीवन–मूल्यों की सीधी अभिव्यक्ति है।

स्वातन्त्र्योत्तर परिस्थितियों में जो परिवर्तन होते रहे हैं, उन्हें और उनके महत्व को तो अस्वीकार किया ही नहीं जा सकता, पर उनसे पूर्व और उनसे बाद भी मनोविज्ञान के क्षेत्र में होने वाले गहन अन्वेषण और अध्ययन ने आधुनिक कहानीकारों के रचनात्मक दृष्टिकोण को प्रभावित किया है। यही कारण है कि प्रेमचन्द-युग की कहानी जहाँ परिस्थितियों के बाह्य संघर्ष को व्यक्त करती हैं, वहाँ प्रेमचन्द्रोत्तर कहानी मानसिक रहस्यों के विश्लेषण और चित्रण में तत्पर दिखाई देती है। इस युग के जो लेखक बाह्य राष्ट्रीय और सामाजिक परिस्थितियों से प्रभावित भी हैं, वे भी रचनात्मक समस्याओं का समाधान "भीतर" ही ढूंढ़ना चाहते हैं।

उत्तर प्रेमचन्द-युग के कृतिकारों के रचनात्मक मानस का निर्माण करने में बाह्य परिस्थितियों का जितना योग है उससे अधिक योग फ्रायड, एडलर और युङ्ग जैसे मनोविश्लेषणवादियों का तथा सार्त्र या यास्पर्स जैसे अस्तित्व-वादी दार्शनिकों का है। इनके सम्मिलित प्रभाव को वहन करने वाले पश्चिम के ज्वायस, वुल्फ, लारेन्स जैसे कथाकारों का प्रभाव भी इस युग के रचनात्मक मानस पर कम नहीं है। इस युग के कहानीकारों ने इसीलिए ज्ञानात्मक, भावात्मक एवं क्रियात्मक, सभी प्रेरणाओं को ग्रहण करते हुये संवेदनाओं के भिन्न–भिन्न स्तरों को पहचानते हुए, गेल्टाल्टवादी मनोविज्ञान के अनुसार "वस्तु" तथा "अनुभव" के प्रत्यक्षीकरण को सम्पूर्णता में ही सम्भव माना है।

ग—शिल्प-विधि की दिशा में लक्षित होने वाले परिवर्तन

शिल्पविधि तथा रचना-प्रक्रिया में अन्तर

भ्रमवश कभी-कभी शिल्प-विधि को रचना-प्रक्रिया का पर्याय मान लिया जाता है। शिल्पविधि रचना की प्रक्रिया का केवल एक पक्ष है—निश्चित रूप से एक बहुत महत्वपूर्ण पक्ष है। रचना का "वक्तव्य" एक महत्वपूर्ण शिल्प के भीतर से ही व्यक्त होता है और उसके द्वारा ही संप्रेषित होता है। रचना यदि अभिप्रेत को उचित प्रभाव के साथ व्यक्त करने में सफल होती है तो उससे "शिल्प" का गौरव ही बढ़ता है। शिल्प एक रचना का भी होता है और सम्पूर्ण युग का भी एक शिल्प होता है, जिसमें युग के अधिकाधिक रचनाकार प्रयोग करते हुए पाए जाते हैं। साथ ही पाठक का भी एक "शिल्प" होता है जिसे वह अपने बोध की शक्ति और सीमा के आधार पर "रचना" में से काट-छाँट करके निकाल लेता है। पर यहाँ शिल्प के इन स्तर-भेदों में प्रवेश करना व्यर्थ होगा। यहाँ तो सुविधा-पूर्वक हम मान सकते हैं कि कहानी की शिल्प-विधि से हमारा प्रयोजन है, कहानी की विशेष अभिव्यक्ति पद्धति। जब रचनात्मक प्रवृत्तियों में महत्वपूर्ण परिवर्तन होते हैं तो रचना की शिल्प–विधि भी बदल जाती है, उसके आदर्श भी बदल जाते हैं और उसके मूल्यांकन के प्रतिमान भी बदल जाते हैं। रचना के इतिहास में इस "परिवर्तित शिल्प-विधि" के अध्ययन की अपनी पृथक् उपयोगिता होती है। जब हम रचना में निहित "वक्तव्य" या "अर्थ" के आन्तरिक स्वरूप के विविध पक्षों का मूल्यांकन करना चाहते हैं तो रचना के उपादानों में सबसे महत्वपूर्ण माध्यम शिल्प ही होता है। इस दृष्टि से उसके विधान की परिवर्तित दिशाओं के अध्ययन से निश्चय ही रचनात्मक प्रक्रिया के विकास की दिशाओं को समझने में सहायता मिल सकती है।

"कहानी" की शिल्पिविधि (टेकनीक) का विचार करते हुए हम यह देखना चाहते हैं कि कहानी किस पद्धति से, किस विधि से कही गयी है, जैसे,

---

१—"फार द क्रैफ्ट इज आन इट्स आनर टु डील वाइज्ली एण्ड फेथफुली विद द मैटर एण्ट्रस्टेड टु इट, ऐण्ड टु डु आल दैट इज पासिबुल फार इट्स ऐडवान्टेज।"

—प्रिफेस : द क्रैफ्ट आफ फिक्शन : पर्सील्युबक : पृ० ६७।

कथानक सीधा, सम, सरल है या रहस्यपूर्ण, सांकेतिक और जटिल है तथा उसकी अभिव्यक्ति वर्णनात्मक शैली में है, या आत्मकथात्मक शैली में है, या ऐतिहासिक शैली में, या पत्र, डायरी, चिन्तन-प्रसंग, यात्रा, संस्मरण की शैली में है ? हमारी दृष्टि में शिल्प सम्बन्धी विचार इतने यान्त्रिक स्तर पर नहीं होना चाहिए। शिल्प की रचनात्मक संभावनाओं से अभिज्ञ पाठक कभी भी शिल्प को यन्त्र नहीं मानना चाहेगा। पर साहित्य में आलोचनात्मक शब्द–मूल्यों की रूढ़ि बन जाया करती है, तो उसे तोड़ना कठिन होता है। "शिल्प" के साथ भी ऐसा हुआ है। पिछले दिनों कहानी और उपन्यास की शिल्प विधि पर जो महत्वपूर्ण ग्रन्थ और शोध-प्रबन्ध सामने आए हैं, उनमें भी इस रूढ़ि का ही निर्वाह किया गया है। हम उनका ध्यान शिल्प के रचनात्मक पक्ष और उसकी रचनात्मक संभावनाओं की ओर दिलाते हुए, निवेदन करना चाहेंगे कि "शिल्प" एक रचनात्मक "मूल्य" है, यन्त्र नहीं है। हम जिस प्रत्युत्पन्न रचना को इष्ट मानते हैं उसका "शिल्प" यन्त्र कैसे हो सकता है। यह "शिल्प" पर निर्भर करता है कि रचनात्मक विचार "वस्तु" में बदल जाता है और "वस्तु" मूल्य में परिणित हो जाती है।

उपर्युक्त आधार पर विचार करने से, सहज ही ज्ञात होता है कि हिन्दी–कहानी अपने आधुनिक-विकास-क्रम में ही शिल्प की रचनात्मक सार्थ–कता को उपलब्ध कर सकी है, यों तो एक स्वाभाविक परिवर्तन आरम्भ से ही निरन्तर कहानी के ऐतिहासिक विकास में लक्षित होता है। शिल्प की रचनात्मक अर्थवक्ता के विकास के साथ ही हम अनुभव करते हैं कि रचनाकार की संवेदनशीलता व्यापक होती गयी है और उसमें गुणात्मक परिवर्तन उप-स्थित होता रहा है।

प्राचीन कहानी-शिल्प की सीमाएँ प्राचीन कथात्मक पद्धतियों का असतर्क सम्मिश्रण

पूर्व प्रेमचन्द–युग की हिन्दी-कहानी में कहानी कहने के एकाधिक प्राचीन माध्यमों का असतर्क सम्मिश्रण है। कहीं कहानी पर पुराणों और उपनिषदों की शैली का प्रभाव है, कहीं पंचतन्त्र और जातक कथाओं का, तथा कहीं प्राचीन लोकगाथाओं, लोक-वार्ताओं या प्रेमाख्यानों की शैली का प्रभाव है। प्रेमचंद से पहले की कहानी में कई कथात्मक पद्धतियों का मिश्रण

है।[1] पूर्व प्रेमचन्द–युग के कथा-शिल्प की सीमाओं पर विचार करने के लिए प्राचीन कथात्मक कृतियों के कुछ उदाहरण-खण्डों पर विचार करना आवश्यक है, जिनके आधार पर तत्कालीन शिल्प सम्बन्धी सीमाओं को निर्दिष्ट किया जा सके और जिनकी तुलना कुछ आगे की रचनात्मक कृतियों के शिल्प से की जा सके। ऐसे कुछ उदाहरण-खण्ड नीचे दिए जाते हैं :

क : "इतनी कथा सुनाय शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा, हे महाराज ! कंस तो इस अनीति से मथुरा में राज करने लगा और उग्रसेन दुख भरने। देवक जो कंस का चाचा था, उसकी कन्या देवकी जब व्याहन योग हुई तब विन्ने जा कंस से कहा कि यह लड़की किसको दें। वह बोला ! सूरसेन के पुत्र वसुदेव को दीजिए। इतनी बात सुनते ही देवक ने एक ब्राह्मण को बुलाय शुभ लग्न ठहराय, सूरसेन के घर टीका भेज दिया, तब तो सूरसेन भी बड़ी धूम धाम से बरात बनाय, सब देश-देश के नरेश साथ ले मथुरा में वसुदेव को व्याहन आए।"[2]

ख : "यह सुनते ही राजा चहुंक उठे। क्षण एक तो ईश्वर का ध्यान किया। फिर बोले कि महारानी ! शीघ्र कहो। क्या ऐसा अनर्थ हुआ कि जिससे इतनी घबरा रही हो ? मैंने जीव दान दिया। इसका कारण कहो। हमारे जीते जी तुम्हारी यह अवस्था होय। रानी बोली महाराज ! बड़ा अद्भुत वृत्तान्त है। आपकी कन्या को बिना पुरुष-संसर्ग के गर्भ भया है। सो यह कुल को दूषन देने हारा और कीर्ति को नाश कर निहारा है। यह सुनि

१– "प्रारंभिक रचनाओं में एक साथ ही संस्कृत महाकाव्यों की वर्णन-परम्परा, उर्दू का चुलबुलापन तथा बृहत् कथानकों की ढीली विलम्बि शैली देखने को मिलती है–ठीक वैसे ही जैसी उस पीढ़ी का आदमी अपने रहन-सहन, वेषभूषा तथा मानसिक रुझान में एक अजीब सम्मिश्रण था- मन उसका अभी भी पीछे दौड़ता था, समस्यायें सामने थीं, पर इतनी उग्र नहीं थीं कि उसे लाचार कर दें।"

–हिन्दी कहानी : ठाकुरप्रसाद सिंह : आलोचना, इतिहास विशेषांक, अक्तूबर १९५२ : पृ० १३२।

२ —प्रेमसागर : लल्लू लाल।

राजा क्षणभर तो चुप रहे। पीछे क्रोधित हो बोले, अरे पापिनी ! तूने यह क्या किया ? ऐसा कहके उसको वन में छोड़ आने की आज्ञा दी।"[1]

ग : "सिर झुका कर नाक रगड़ता हूँ उस अपने बनानेवाले के सामने जिसने हम सबको बनाया और बात की बात में वह कर दिखाया कि जिसका भेद किसी ने न पाया। आतियां जातियां जो सांसें हैं, उसके बिन ध्यान यह सब फांसे हैं। यह कल का पुतला जो अपने इस खेलाड़ी की सुध रक्खे तो खटाई में क्यों पड़े और कड़ुआ कसैला क्यों हो।"[2]

इन उपर्युक्त उदाहरण-खण्डों द्वारा हम न केवल यह संकेत करना चाहते हैं कि इनकी भावभूमि और भाषा "कहानी" के अननुकूल है, बल्कि यह कि जिन प्राचीन कहानियों या आख्यानों से ये खण्ड उद्धृत हैं उनमें "कथातत्व" तो है पर "कहानी" की रचनात्मक संभावना सीमित पौराणिक तथा धार्मिक अभिप्रायों में निःशेष हो गयी है, और इस धरातल पर शिल्प की रचनात्मक संभावना का तो प्रश्न उठाना ही व्यर्थ है। वास्तविकता यह है कि प्राचीन कहानियों की एक परम्परागत अभ्यासपरक शैली तो है पर उनमें कोई रचनात्मक-शिल्प है ही नहीं। इन कहानियों से आगे आकर ही "कहानी" को एक "साहित्य-रूप" माना गया है और उसकी रचनात्मक संभावना पर ध्यान दिया गया है। इन प्राचीन कहानियों को साहित्यिक-शिल्प के विकास में बाधक सर्वाधिक महत्वपूर्ण सीमा तो अति भावुकता की है। यहां कहना अप्रासंगिक न होगा कि भावुकता विचारों में ही नहीं, शिल्प में भी होती है।

प्राचीन कहानी की इन सीमाओं के सन्दर्भ में अगले विकास-युग अर्थात् भारतेन्दु–युग की कहानियों का महत्व बहुत अधिक बढ़ जाता है। भारतेन्दु-युग के लखकों ने व्यंग-सृष्टि के उद्देश्य से जिन लघु कथानकों का उपयोग अपनी कहानियों में किया है उनका प्रतीकात्मक कौशल सराहनीय है। भारतेन्दु की कहानी "एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न" राधाचरण गोस्वामी की कहानी "यमलोक की यात्रा"—आदि कथानक-सौष्ठव की दृष्टि से पठनीय कहानियां हैं। इनमें पहली बार "कहानी" की साहित्यिक आवश्यकताओं की (आँशिक ही सही) पूर्ति दिखाई पड़ती है। प्राचीन शिल्प संस्कार-के प्रभाव

१— नासिकेतोपाख्यान : सदल मिश्र।

सदल मिश्र-ग्रन्थावली : सं० नलिनविलोचन शर्मा : पृ० ९।

२— रानी केतकी की कहानी : इंशा। ना० प्र० सभा संस्करण : पृ० १

से सर्वथा मुक्त तो ये कहानियाँ भी नहीं हैं और न इनमें आधुनिकता की सच्ची चेतना ही दिखाई देती है, पर आधुनिक-युग की ओर इनकी उत्सुकता, इनके प्रयोजन में, स्पष्ट है। परिस्थितियों के होते हुए भी कहानी के विकास में विलम्ब हुआ, इसमें सन्देह नहीं।[1] पर इस विलम्ब के पीछे निश्चित् सामाजिक तथा साहित्यिक कारण थे, जिनका संकेत पहले किया गया है।

माध्यम की एकोन्मुखता का अभाव

इस प्रकार, शिल्पविधान की दृष्टि से प्राचीन कहानी की कुछ निश्चित सीमाएं हैं। एक बड़ी सीमा तो यह है कि प्राचीन कहानीलेखक अपने माध्यम को एकोन्मुख नहीं बना पाता है और अपने रचनात्मक माध्यम के प्रति उसके अपने मन में एक भावुकतापूर्ण संशय है। यही कारण है, कि वह कविता, नाटक आदि विभिन्न साहित्य-रूपों के माध्यमों का कथासूत्रों के बीच-बीच में उपयोग करता है। उदाहरण के लिए 'रानी केतकी की कहानी' को इन्शा छन्दों की सहायता से अधिक ऋजु एवं प्रभावशाली बनाना चाहते हैं।[2] निश्चय ही, इन्शा का महत्व है कि उन्होंने 'सुबोध, सजीव और रोचक भाषा में कहानी लिखकर एक सुन्दर गद्यप्रणाली की नींव डाली"[3] पर उनकी

१—"भारतेन्दु-युग में या उससे पूर्व ही कहानी—विकास की समस्त परिस्थितियाँ उपस्थित थीं। मानवसंघर्ष राजनीतिक और सामाजिक दोनों रूपों में प्रबल हो चुका था लेकिन फिर भी कहानी के विकास में आश्चर्यजनक विलम्ब हुआ।"

—हिन्दीकहानियों की शिल्पविधि का विकास

—डा० लक्ष्मीनारायण लाल : पृ० ४५।

२—रानी को बहुत-सी बेकली थी
कब सूझती कुछ बुरी भली थी
चुपके चुपके कराहती थी
जीना अपना न चाहती थी।: उद्धृत आधुनिक हिन्दीसाहित्य की भूमिका : ल० सा० वार्ष्णेय : पृ० २८६

... ...

छा गयी ठंडी साँस झाड़ों में
पड़ गई कूक सी पहाड़ों में......। (रानी केतकी की कहानी : इन्शा।)

—उद्धृत, वही पृष्ठ २८६

३—आधुनिक हिन्दीसाहित्य की भूमिका-डा० ल० सा० वार्ष्णेय : पृ० २८७।

कहानी के शिल्प-विधान की सीमाएं अपने स्थान पर हैं। इस कहानी के शिल्प को "आधुनिक" तो किसी भी दशा में नहीं कहा जा सकता। कहानी में अलौकिक घटनाओं का समावेश तो है ही; उनका वर्णन और भी अतिरंजित है। केतकी का सौन्दर्यवर्णन करना हुआ, तो लेखक ने नख-शिख के स्थूल सौन्दर्य को अतिरंजित और अमर्यादित ढंग से प्रस्तुत कर दिया है।[1] शिल्प का संयम इन वर्णनों में कहीं नहीं दिखाई पड़ता। आधुनिक कहानी-लेखक सौन्दर्य का वर्णन करता है तो अभूतपूर्व मानसिक संयम का परिचय देता है।[2] पर यह अन्तर क्या केवल शिल्प की परिपक्वता का अन्तर है? हमारी दृष्टि में यह अन्तर मुख्यतः रचनात्मक प्रक्रिया का है और जैसा हम पहले कहते आए हैं-शिल्पविधि इस प्रक्रिया का केवल एक (निस्संदेह महत्वपूर्ण) पक्ष है। सुदर्शन ने अपने एक संग्रह की भूमिका लिखते हुए संकेत किया है कि प्राचीन कहानी के विषय और चरित्र "कल्पना" में सीमित थे।[3]

१–"केतकी का भला लगना लिखने पढ़ने से बाहर है वह दोनों भवों की खिचावट और पुतलियों में लाज की समावट और नोकीले पलकों की रुधावट, हंसी की लगावट, और दन्तड़ियों में मिस्सी की उदाहट और इतनी सी बात पर रुकावट है। नाक और त्योरी का चढ़ा लेना, सहेलियों को गालियाँ देना और चल निकलना और हिरनों के रूप में करद्वालें मार कर परे उछलना कुछ कहने में नहीं आता।"
–रानी केतकी की कहानी -इन्शा : उद्धृत आधुनिक हिन्दी–साहित्य की की भूमिका : ल० सा० वार्ष्णेय : पृष्ठ २८४।

२–"उस दिन मुझे लगा कि दुर्गा "खोकी" से "लक्खी" हो गयी। यह सब कैसे हो जाता है, इसका गणित उस हो जाने वाले के पास भी नहीं होता, बस हो जाता है। हम सहज से सहजतर होने के लिए बड़े नहीं होते वरन् गूढ़ या गोपन के लिए बड़े होते हैं। हम सरल उस दिन हो जाते हैं जिस दिन हमारा गोप्य चुक-चुका होता है। संकोच का होना, बड़ा होना है। संकोच सम्बन्धों का नहीं होता वरन् वयस का होता है।......तो दुर्गा में उस दिन प्रथम बार मैंने संकोच पाया। उसके शंख, अरुण लग रहे थे......।"आदि।–तथापि : नरेश मेहता : पृ० ५३।

३–"पुराने युग में जो कहानियाँ कही जाती थीं, उनके पात्र दुनियाँ के लोग न थे, कल्पना के जीव थे। उनका एक एक वीर एक एक हजार दुश्मन पर भारी होता था। उनका नायक ऐसा महात्मा था, जिसमें

इसमें सन्देह नहीं कि इन्शा, किशोरीलाल गोस्वामी, रामचन्द्र शुक्ल, ठा० जगमोहन सिंह, काशीनाथ खत्री, कार्तिकप्रसाद खत्री, राधाचरण गोस्वामी, अम्बिकादत्त व्यास, गोपालराम गहमरी, गिरिजादत्त वाजपेयी, भारतेन्दु आदि कहानीकारों की कहानियों ने शिल्पसम्बन्धी सीमाओं के होते हुए भी प्राचीन "कहानी" को शिल्पसम्बन्धी पर्याप्त विविधता दी है। इस युग की कहानी की शिल्पगत सीमाओं (संयोगात्मक कथानक, काल्पनिक चरित्र, वर्णनात्मक सपाट शैली, रोमांस तथा तिलस्म भरे घटना-चक्र आदि) के पीछे पुरानी पीढ़ी का भावबोध है जिसके निर्माण में अनिश्चयभरी परिस्थितियों और अनिश्चित जीवन-दृष्टि का योग है। अतिनाटकीय अन्त, कृत्रिम कथानक, भावुकता की अतिशयता और सबके बीच-बीच में रचनाकर की अपनी टिप्पणियां-इन सीमाओं को तोड़ कर ही आधुनिक कहानी-शिल्प का विकास किया जा सकता है, इसका बोध भी इस युग के कहानी लेखकों को हो चुका था।

प्रेमचन्द-युग के कहानी-शिल्प की विशेषताएं : 'कथा : रस की रचनात्मक स्तर पर प्रतिष्ठा

हिन्दीकहानी-साहित्य के क्षितिज पर प्रेमचन्द का आगमन आधुनिक हिन्दी-कहानी के विकास की बहुत बड़ी घटना है। अत्यन्त विकसित सामाजिक दृष्टि एवं कथा-शिल्प के कारण ही प्रेमचन्द एक विशेष युग का निर्माण कर सके हैं। प्राचीन कथा-शिल्प की परम्परा के गुणात्मक लक्षणों के साथ आधुनिक कथा-शिल्प का सामंजस्य स्थापित करते हुए-प्रेमचन्द-युग के कहानीलेखकों ने पहली बार कहानी के शिल्प की रचनात्मक संभावनाओं के विकास का पथ प्रशस्त किया। संक्षेप में इस युग की कहानी की शिल्पविधि की प्रमुख विशेषताएं हैं : कथानक-सृष्टि में सार्थक क्रमबद्धता, कथा-रस की रचनात्मक स्तर पर प्रतिष्ठा, चरित्र की सूक्ष्म और सहज विशेषताओं का आकलन तथा मनोवैज्ञानिकता और आदर्शोन्मुख यथार्थ-दृष्टि का उपयोग आदि।

गुण सभी थे, अवगुण एक भी न था। उनका खल ऐसा दानव था, जिसमें बुराइयां सभी थीं, भलाई एक भी न थी।"
—सुदर्शन सुधा : भूमिका : पृ० ६।

प्रस्तुत युग की कहानियों के कथानकों में एक निश्चित विकास-क्रम का आभास मिलता है। इस विकास-क्रम के मुख्य स्तर परिचय, घटना-प्रवेश, उत्तेजक घटनात्मक आवेग, व्याख्या, घात-प्रतिघात, निष्कर्ष, इस युग की अधिसंख्य कहानियों में पहचाने जा सकते हैं। लेखक यदि कहानी के कथानक का परिचय देना चाहता है तो प्राचीन कहानी लेखक की भाँति अनावश्यक भूमिका न देकर सीधे समस्या के संकेत से अपने "वक्तव्य" का आरम्भ करता है।[1] कहने का तात्पर्य यह कि इस युग की कहानियों के कथानक सुविभाजित और सुसंगठित हैं। अतिसंगठित क्रमबद्धता इस युग की कहानी की शिल्प सम्बन्धी विशेषता भी है और सीमा भी-जिसकी ओर कम ध्यान दिया गया है। प्रसाद की कहानियों में कथानक की जो आँतरिक क्रमबद्धता की लय पाई जाती है, वह स्थूल क्रमबद्धता से बहुत भिन्न है। उदाहरण के आधार पर कहा जाय कि "पुरस्कार"[2] कहानी के कथानक की क्रमबद्धता ऊपरी ढाँचे में सीमित याँत्रिक क्रमबद्धता नहीं है। मधूलिका के जीवन में जो संघर्ष आता है, बाह्य या मानसिक, उसमें एक आँतरिक क्रम है। एक प्रसन्न वातावरण में[3] मधूलिका का बीजों का थाल लिये महाराज के साथ

१–"भोला महतो ने पहली स्त्री के मर जाने के बाद दूसरी सगाई की तो उसके लड़के रग्घू के लिए बुरे दिन आ गए। रग्घू की उम्र उस समय केवल दस वर्ष की थी। चैन से गाँव में गुल्ली डंडा खेलता फिरता था। मां के आते ही चक्की में जुतना पड़ा। पन्ना रूपवती स्त्री थी और रूप और गर्व में चोली दामन का नाता है। वह अपने हाथों से कोई मोटा काम न करती।"

–अलग्योझा–मानसरोवर (प्रेमचन्द) भाग १ : पृ० १।

२–आँधी : जयशंकर प्रसाद : पृ० ११२।

३–"आर्दा नक्षत्र, आकाश में काले-काले बादलों की घुमड़, जिसमें देव-दुन्दुभी का गम्भीर घोष। प्राची के एक निरभ्र कोने से स्वर्ण-पुरुष झाँकने लगा था–देखने लगा महाराज की सवारी। शैलमाला के अंचल में समतल उर्वरा भूमि से सोंधी वास उठ रही थी। नगर तोरण से जयघोष हुआ, भीड़ में गजराज का चामरधारी झुण्ड उन्नत दिखाई पड़ा। वह हर्ष और उत्साह का समुद्र हिलोर भरता हुआ आगे बढ़ने लगा।" वही, पृ०११२।

चलना और राजकुमार अरुण का उसे देखना–[1] कथानक की प्रस्तावना इन सन्दर्भों में एक भीतरी सम्बन्ध है। आत्म-सम्मान एवं स्वाभिमान के प्रश्न पर मधूलिका की उत्तेजना [2] और आगे राजकुमार का मधूलिका के निकट प्रेम निवेदन–[3] ऊपर से असम्बद्ध दिखाई देने वाले इन घटना-सूत्रों में एक पृथक आंतरिक सम्बन्ध है। इन सम्बन्धों पर जितना ही हम विचार करते हैं "कथानक" के प्रश्न पर उतना ही अधिक फिर से विचार करने की आवश्यकता प्रतीत होती है। "पुरस्कार" ऐसी सूक्ष्म कथानक-प्रधान कहानियों को देखकर ही अनुभव किया जाने लगा है कि "कथानक" की कोई सुधाजनक परिभाषा देना कठिन है। इसीलिए फार्स्टर ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "ऐस्पेक्ट्स आफ द नावेल" में दृष्टान्तपूर्ण युक्तियों का उपयोग किया है। [4] फार्स्टर की व्याख्या के अनुसार, 'राजा मर गया और तब रानी मर गई" कहानी है तथा "राजा मर गया और तब रानी दुख से मर गई" कथानक है। समय का अनुक्रम परिरक्षित है, परन्तु आकस्मिकता का भाव इसे ढंक लेता है। फार्स्टर ने एक और उदाहरण दिया है–"रानी मर गई। कोई नहीं जानता था कि क्यों जब तक कि यह जाना नहीं जा सका कि ऐसा राजा की मृत्यु के दुख से हुआ।" फार्स्टर के अनुसार यह एक रहस्यपूर्ण कथानक है, जिसका रूप आगे विकसित किये जाने की संभावना से युक्त

१–"सब लोग महाराज का हल चलाना देख रहे थे–विस्मय से, कुतूहल से और अरुण देख रहा था कृषककुमारी मधूलिका को :"––वही, पृ० ११२।

२–"देव ! यह मेरे पितृ-पितामहों की भूमि है। इसे बेचना अपराध है, इसलिए मूल्य स्वीकार करना मेरी सामर्थ्य के बाहर है।" –वही, पृ० ११४।

३–"मेरा हृदय तुम्हारी उस छवि का भक्त बन गया है देवि।" –वही, पृ० ११६।

४–"लेट अस डिफाइन ए प्लाट। वी हैव डिफाइन्ड ए स्टोरी ऐज़ ए नैरेटिव इवेन्ट्स अरेन्ज्ड इन देयर टाइम्स सिक्वेन्स : ए प्लाट इज़ आल्सो ए नैरेटिव आफ इवेन्ट्स, द इम्फोसिस फालिंग आन कैज़ुएलिटी।"
–ऐस्पेक्ट्स आफ द नावेल : ई० एम० फार्स्टर : पृ० ८२ :

है ।[1] यहां समय का अनुक्रम नहीं है, वह अपनी सीमाओं के भीतर कहानी से दूर ही होता जाता है । फार्स्टर ने संकेत किया है कि इस सन्दर्भ में "रानी की मृत्यु" विचारणीय है । यह सन्दर्भ कहानी में हो तो हम पूछते हैं । "और तब ! परन्तु यदि कथानक में है तो हम पूछते हैं । "क्यों ?"[2] फार्स्टर की व्याख्या की निष्पत्ति यह है कि कार्य-कारण श्रृंखला का होना "कथानक" में आवश्यक है । हम यहाँ निवेदन करेंगे कि "कथानक" "कहानी" में निहित घटनाओं के बीच का एक आँतरिक सम्बन्ध-सूत्र है और 'कहानी' की रचना-त्मक संभावनाएं इतनी सरल और स्थूल नहीं होतीं जितनी फार्स्टर के दिए हुए उदाहरण में दिखाई पड़ती हैं । "पुरस्कार" कहानी के "कथानक" की विशिष्टता पर हम इसी दृष्टि से बल देना चाहते हैं कि कार्य-कारण-सम्बन्ध और संगत से युक्त होते हुए वह स्थूल या यान्त्रिक नहीं है । इस कथानक की संगति उसके यान्त्रिक रूप (फार्म) में ही नहीं, सूक्ष्म सम्बन्धों के बीच विद्यमान है । प्रेमचंद की कहानी "पूस की रात"[3] का कथानक इसी विशिष्ट कलात्मक योग्यता से समुत्पन्न है । हल्कू से मुन्नी की आरंभिक बातचीत में निहित यह चिन्ता कि "कम्बल" के बिना शीत का सामना कैसे किया जा सकेगा, आगे पूस की रात में हल्कू का खेत के किनारे ऊख के पत्तों की छतरी के नीचे बाँस के खटोले पर पुरानी चादर ओढ़े पड़ जाना, वहीं नीचे "जबरा" का सर्दी से कूं-कूं करना, और-आगे उसे गोदी में सुला लेना, सर्दी के असह्य हो जाने पर अलाव जलाकर तापना और फिर इस तरह सो जाना कि सारा खेत नीलगायें चर जायं, तथा अन्त में चिन्ता को निर्विकार भाव से टाल जाना-इन सभी घटनाओं के बीच एक आँतरिक संगति है ।[4]

कथानक-रचना की इन्हीं महत्वपूर्ण समस्याओं को लक्ष्य कर एडविन म्योर ने कथानक के दो रूप माने हैं : एक, जहां कथानक नियमपूर्वक विकसित

१—"दिस इज़ ए प्लाट विद ए मिस्ट्री इन इट, ए फार्म कैपेबुल आफ हाई डेवलपमेन्ट ।" —वही, पृ० ८३ ।

२—वही, पृ० ८३ ।

३—मानसरोवर : प्रेमचन्द : भाग १ : पृ० १४६ ।

४—"दोनों फिर खेत के डाँड पर आए । देखा सारा खेत रौंदा पड़ा है । मुन्नीं ने चिन्तित होकर कहा— अब मजूरी करके मालगुजारी भरनी पड़ेगी । हल्कू ने प्रसन्नमुख से कहा-रात की ठंड में यहाँ सोना तो न पड़ेगा ।"
—मानसरोवर : भाग १ : पृ० १५२ ।

होता है, और दूसरा, जहां कथानक अधिक से अधिक ऋजु, असंवेष्टित रूप में विकासमान होता है ।[1] कहा जा सकता है कि म्योर ने "कथानक" की रचनात्मक संभावनाओं को ध्यान में रखते हुए ही अपना यह सिद्धान्त स्थिर किया है । कथानक के सम्बन्ध सूत्र कभी-कभी इतने विरल होते हैं कि उनमें नियमपूर्ण क्रमबद्धता का निर्वाह सम्भव नहीं होता । रचनात्मक कला के मूल्यों के विकास के साथ हमारे अनुभव जगत् की परिचित, अपरिचित, बाह्य, आभ्यंतर, प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष, ऐन्द्रियबद्ध, इन्द्रियातीत सभी प्रकार की संवेदनाएं जब "कथानक" से सम्बद्ध होना चाहती हैं तो कथानक को अधिक ऋजु एवं असंवेष्टित रूप देना ही पड़ता है । प्रेमचन्द-युग की कहानी के शिल्प-विधान के विश्लेषण से इस धारणा की पुष्टि होती है कि इस समय की कहानियों में "कथानक" की रचनात्मक सम्भावनाओं का उपयोग किया गया है ।

चरित्र-विधान में मनोवैश्लेषिक शैली का उपयोग

मनोवैश्लेषिक वर्णन शैली का उपयोग इस युग की कहानियों की शिल्प-विधि सम्बन्धी अन्य उल्लेख्य विशेषता है । कहानियों के चरित्रों, चाहे वे ("आकाशदीप" कहानी की चम्पा की तरह) शुद्ध भावमूलक हों या (पूस की रात के हल्कू किसान की भांति) के यथार्थमूलक, निरूपण में मनोवैज्ञानिक वर्णन शैली के उपयोग का बड़ा महत्वपूर्ण योग रहा । इस विशेषता को एक उदाहरण के प्रकाश में देखना ही उचित होगा : "पूस की रात" कहानी में प्रेमचन्द एक परिस्थिति को चित्रित करते हुये लिखते हैं :

"जब किसी तरह न रहा गया तो उसने जबरा को धीरे से उठाया और उसके सिर को थपथपाकर उसे अपनी गोद में सुला लिया । कुत्ते के देह से जाने कैसी दुर्गन्ध आ रही थी, वह उसे अपनी गोद से चिपटाये हुये ऐसे सुख का अनुभव कर रहा था, जो इधर उसे महीनों से न मिला था ।[2]

१– "........वन इन ह्विच द प्लाट मस्ट बी स्ट्रिक्टली डेवलप्ड, ऐन्ड वन इन ह्विच इट बेस्ट बी लूज्ली इम्प्रोवाइज्ड ।"
–द स्ट्रक्चर आफ द नावेल : एडविन म्योर : पृ० २७ ।

२– मानसरोवर : प्रथम भाग : पृ० १४८

यह विचार के लिए प्रस्तुत एक उदाहरण है। प्रस्तुत युग की कहानियों से ऐसे अनेक उदाहरण [1] चुने जा सकते हैं जिनमें मनोवैज्ञानिक वर्णन शैली का उपयोग किया, गया है। ऊपर उदाहृत अंश को देखने से ज्ञात होगा कि इसमें कई मनोवैज्ञानिक संकेत निहित हैं। हल्कू का दैन्य एवं अभाव-बोध, दैन्य द्वारा प्रेरित मानव जगत् एवं मानवेतर प्रकृति दोनों के प्रति विनम्र समानता और कृतज्ञता का भाव, परिस्थिति की असहायता के बीच जबरा की निस्पृह मैत्री का स्वीकार–कितनी ही बातें हैं जिनका आधार मनोवैज्ञानिक है और जिन्हें उद्घाटित करने का प्रयत्न रचनाधर्मी कहानी के शिल्प से अभिज्ञ लेखक ने यहाँ किया है।

शिल्प-सम्बन्धी अन्य प्रयोग

प्रेमचन्द–युग की कहानियों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि कथात्मक पद्धति सम्बन्धी या अभिव्यक्ति–शिल्प–सम्बन्धी कुछ अन्य प्रकार के प्रयोग भी यहाँ किये गये हैं। जैसे, कुछ लेखकों ने अपनी कुछ कहानियाँ

---

१. (क) "मुलिया के हाथ सुन्न हो गए, खुरपी हाथ में जम सी गयी, घास नजर ही न आती थी। जी चाहता था, जमीन फट जाय और मैं समा जाऊँ। जमीन आँखों के सामने तैरने लगी।

चैन सिंह ने आश्वासन दिया–छीलती क्यों नहीं ! मैं तुझसे कुछ कहता थोड़े ही हूँ। यहीं रोज चली आया कर, मैं छील दिया करूँगा।

मुलिया चित्र लिखित सी बैठी रही।"

---घासवाली–मानसरोवर–भाग १ : पृ० २९९।

(ख) "आज मधूलिका उस बीते हुये क्षण को लौटा लेने के लिये विकल थी।...........मगध की प्रसाद-माला के वैभव का काल्पनिक चित्र उन सूखे डंठलों के रन्ध्रों से, नभ में—बिजली के आलोक में–नाचता हुआ दिखाई देने लगा। खिलवाड़ी शिशु जैसे श्रावण की सन्ध्या में जुगनू को पकड़ने के लिये हाथ लपकाता है, वैसे ही मधूलिका मन ही मन कह रही थी। "अभी वह निकल गया।"

—पुरस्कार-आंधी : प्रसाद : पृ० ११७-११८।

पत्रात्मक या डायरी आदि की शैली में भी लिखी हैं। प्रेमचन्द की कहानी "दो सखियाँ" पत्र–शैली में है तो "मोटेराम की डायरी" डायरी की शैली में। शैली सम्बन्धी इस प्रयोगशीलता का कुछ प्रभाव तो कहानी के रूपात्मक विधान पर पड़ा ही है। इसी प्रक्रिया में कहानियों के शीर्षक लाक्षणिक और सांकेतिक बन पड़े हैं। भगवतीचरण वर्मा की कहानी "काश कि मैं कह सकता" [1] इसका प्रमाण है। पर अधिकांश लेखकों द्वारा लिखी गई वर्णनात्मक एवं इस स्तर की प्रयोगात्मक कहानियों की संवेदना एक–सी है। उत्तर–प्रेमचन्द–युग की कहानी में शिल्प–सम्बन्धी जो प्रयोग किये गये हैं उन्होंने कहानी की रचनात्मक सम्भावनाओं का बहुमुखी विकास किया है और कहानी के माध्यम को अन्तर्मुखी मनोविज्ञान की अभिव्यक्ति के योग्य बनाया है। पर, प्रेमचन्द–युग की कहानी में जो प्रयोग किए गए हैं उनका कलात्मक स्तर साधारण है। उदाहरण के लिये सुदर्शन की कहानी "२१ अगस्त, १९०३" का आरम्भिक अंश लें [2] तो लगेगा रूप (फार्म) की नवीनता होते हुये भी यह कहानी कथा–शिल्प की दिशा में आगे बढ़ती हुई नहीं दिखाई देती। इसी प्रकार सुदर्शन की अन्य कहानी "कवि की स्त्री" [3] डायरी शैली में रचित होने पर भी कोई मौलिकता नहीं दिखाती।

इस प्रकार, हम देखते हैं कि शिल्प–विधि की दृष्टि से भी, प्रेमचन्द-युग के साथ हिन्दी–कहानी का एक ऐतिहासिक विकास पूरा होता है। इस काल के प्रयत्नों में यद्यपि आधुनिक कहानी की रचनात्मक सम्भावनाओं का

१– दो बाँके : भगवतीचरण वर्मा : पृ० ३१।

२– "माई डियर लालचन्द !

मिनर्वा लाज, जेहलम
२, जून, १९०५

कब तक लौटोगे ? मेरा जी तो अभी से घबराने लगा। जब तक तुम यहाँ थे, मैं तुम्हें समझ न सका। परन्तु अब पता लगा कि तुम्हारे और हरदयाल के बिना जीवन नीरस है, जैसे नमक-मिर्च के बिना भाजी बेस्वाद होती है।"…………आदि।

–सुदर्शन सुधा (चौथा संस्करण) : पृ० १०६।

३– तीर्थयात्रा : सुदर्शन : पृ० १८२।

समुचित विकास नहीं लक्षित होता है, पर उसका पूर्वाभास इन प्रयत्नों में स्पष्ट है। प्रेमचन्द–युग की कहानी आधुनिकता के प्रारम्भिक चरण की कहानी है, आधुनिकता के प्रवेश की कहानी है।

प्रेमचन्द की अन्तिम कहानियों को[1] पढ़ने से प्रेमचन्द–युग की कहानी के रचना–शिल्प के स्पष्ट विकास का बोध होता है। समस्याप्रधान कहानियों में यह, विकास की प्रक्रिया अत्यन्त स्पष्ट रूप में दिखाई देती है। इस युग की आरम्भिक समस्याप्रधान कहानियों में जहाँ आक्रोश ही अधिक दिखाई देता है वहाँ इस युग की अन्तिम कहानियों में सहानुभूति और पीड़ा की गहराई प्राप्ति होती है। व्यक्ति और परिवेश की निजता में व्याप्त सूक्ष्म अन्तःसंघर्ष को चित्रित करने के लिए जिस सूक्ष्म रचना–शिल्प का निर्माण आधुनिकता के विकास–युग अर्थात् उत्तर–प्रेमचन्द–युग की कहानी में हुआ है उसकी आरम्भिक भूमिका प्रेमचन्द–युग के कहानीकारों द्वारा ही निर्मित हुई है।

उत्तर-प्रेमचन्द-युग की कहानी का रचनात्मक शिल्प : आधुनिक बोध और शिल्प के विकास का दूसरा चरण

प्रेमचन्दोत्तर युग की हिन्दी-कहानी का अध्ययन शिल्प-विधि की दृष्टि से करें तो पहली ही दृष्टि में लगेगा, कि यह युग हिन्दी-कहानी के रचनात्मक शिल्प का उत्कर्ष–युग है। शब्द की सम्पूर्ण सच्चाई[2] के साथ आनेवाले जीवित चरित्रों को तथा उनकी गूढ़ जटिल परिस्थितियों और गहन समस्याओं को लेकर जो नवीन कथा–शिल्प इस युग की हिन्दी-कहानी में

१– "ऐसी ही नए ढंग की, नयी कथावस्तु और नए शिल्प की कहानियाँ मुन्शी जी ने कई लिखीं जिनमें उनकी पहले की कहानियों जैसा घना और मजबूती से बुना हुआ कथा का जाल नहीं है, बस कोई नन्हीं-सी बात है, कोई हल्का-सा नुक्ता, कोई योंही-सी मनःस्थिति, किसी चीज को देखने का अपना एक ढंग, सौन्दर्य की सत्य की कोई उड़ती–सी झलक, जिसे कथानक की बहुत चिन्ता किये बगैर यों ही बातचीत के अन्दाज में कह दिया गया है।"

—कलम का सिपाही : प्रेमचन्द : अमृतराय : पृ० ५६५।

२– जैनेन्द्र की श्रेष्ठ कहानियाँ (राज० प्रका०) पृ० ३४–३५।

विकसित हुआ, वह पूर्ववर्ती कथा–शिल्प का विकास होकर भी अपनी रचनात्मक संवेदनाओं और सम्भावनाओं में उससे भिन्न था। एक विशेष सार्थक सांकेतिकता का समुदय इस युग की कहानी के रचनात्मक शिल्प के विकास के साथ हुआ जिसने "कहानी" नामक साहित्यिक माध्यम की रचनात्मक संभावनाओं को बढ़ा दिया, जैसे प्रतीक–पद्धति के उपयोग से काव्य-रचना की प्रक्रिया बदल जाती है" और रचना में "अर्थ" की विशिष्ट उपलब्धि सम्भव हो पाती है, वैसे ही इस नयी साँकेतिकता से सम्पन्न प्रस्तुत युग की कहानी के रचनात्मक–शिल्प ने कहानी में नये अनुभवों तथा भावस्तरों की विशिष्ट उपलब्धि और अभिव्यक्ति की संभावनायें बढ़ा दीं।

आधुनिक कहानी में शिल्प सम्बन्धी विविध प्रयोग इस कारण भी किए गए हैं कि उस पर एक ही साथ संक्रमणशील परिस्थितियों के नाना सन्दर्भों की अभिव्यक्ति का दायित्व रहा है। आधुनिक कहानी ने प्रमाणित किया है कि कहानी का उद्देश्य जीवन-यथार्थ को ज्यों का त्यों चित्रित करना नहीं है, बल्कि उसके द्वारा जीवन के अधिक सृजनशील अर्थों की सृष्टि करना है।[1]

आधुनिक कहानी के शिल्प–विधान की विशेषता यह भी है कि उसमें प्रचलित कहानी–शिल्प के नियम-बद्ध लक्षणों या तत्वों को पहले की तरह आत्यन्तिक महत्व नहीं दिया गया है। कथानक, चरित्र, वातावरण सम्बन्धी विशेषतायें प्राचीन कहानी के शिल्प की परिधि में आकर रूढ़ हो गयी थीं। आधुनिक दृष्टिसम्पन्न लेखकों ने इस "रूढ़ि" को तोड़ कर जिस नये कथा–शिल्प का निर्माण किया है वह अधिक मनोवैज्ञानिक, सजीव और स्वाभाविक है। शिल्प सम्बन्धी इन विविध प्रयोगों द्वारा "कहानी" के रूप में जो नवीनता उत्पन्न की गयी है प्राचीन कहानी के पाठक को उसका आस्वाद सर्वथा भिन्न और कभी–कभी विस्मयकारक जान पड़ता है। आधुनिक कथा–शिल्प का सार्थक उदाहरण प्रस्तुत करनेवाली कहानियों को पढ़ने के बाद ऐसा लगता है, मानों केवल एक अस्पष्ट गूँज मन में रह गयी हो। विश्लेषण करने से लगता है, कि यह गूँज अकेले "वस्तु" की नहीं है, "चरित्र" की भी नहीं, "वातावरण" की भी नहीं, बल्कि संभवतः सबकी सम्मिलित गूँज है। और, फिर, कहानी के सम्पूर्ण रचनात्मक गठन और शिल्प पर ध्यान देने से लगता है, कि यही गूँज "कहानी" में निहित "वक्तव्य" है।

१– "………इफ फिक्शन इज ऐन आर्ट ऐट ग्राल, ऐन्ड ऐन आर्ट इट मस्ट बी, सिन्स ए लिटरल ट्रान्सक्रिप्ट आफ लाइफ इज प्लेनली इम्पासिबुल"
–द क्रैफ्ट आफ फिक्शन : पर्सी ल्यूबक : पृ० ९-१०।

आधुनिक कहानी–लेखकों में कुछ रचनात्मक शिल्प के प्रति अति जागरूक आत्मचेतस् कृतिकार हैं, जैसे : अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी, उपेन्द्रनाथ अश्क, यशपाल, विष्णुप्रभाकर और बाद की पीढ़ी के रेणु, रघुवीरसहाय, निर्मल वर्मा, राजेन्द्र यादव आदि। कुछ शिल्प को नकारने वाले लेखक हैं जैसे नागार्जुन, भैरवप्रसाद गुप्त, अमरकान्त आदि। और कुछ 'शिल्प' के प्रति अनासक्ति का दावा करने वाले तथा अचेतन भाव से कहानी के रचनात्मक शिल्प के प्रति अधिक जागरूक रचनाकार हैं, जैसे जैनेन्द्र। आधुनिक कहानी के रचनात्मक–शिल्प के विरोधाभास के श्रेष्ठतम उदाहरण जैनेन्द्र हैं, जिनकी असतर्कता ही कहानी का सतर्क शिल्प है। 'खेल', [1] 'अपना अपना भाग्य', [2] ''व्याह', [3] 'तमाशा' [4] आदि जैनेन्द्र की कहानियाँ असतर्क कहानियों के सतर्क-शिल्प का श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। इनमें लेखक 'कहानी' में व्यक्त परिस्थिति से दूर-ही-दूर दिखाई देता है, फिर भी उसकी रचनात्मक चेतना सभी परिस्थितियों में अन्तर्लीन जान पड़ती है।

रघुवीरसहाय की कहानी 'कहानी की कला' [5] कहानी–शिल्प संबंधी आधुनिक सतर्कता का अच्छा उदाहरण है। कहानी का आरम्भ लेखक की ऐसी विज्ञप्ति के साथ होता है कि लगता ही नहीं कि 'कहानी' में सचमुच कोई घटना होगी ही। [6] आगे जहाँ 'घटना' की अभिव्यक्ति का अवसर आता है लेखक घटना को एक काल्पनिक हेतु से सम्बद्ध कर देता है [7] और अन्त में

१–जैनेन्द्र की श्रेष्ठ कहानियां : १९५७ : वातायन : (हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर) पृ० ११।

२–वही, पृ० २५।

३–वही, पृ० ७०।

४–वही, पृ० १४३।

५–सीढ़ियों पर धूप में : रघुवीरसहाय : पृ० ७४।

६—'कहानी बहुत छोटी-सी है, ज्यादा वक्त नहीं लूंगा, यानी उससे ज्यादा नहीं, जितना आपने मुझे दिया है मगर सम्भव है कि···बल्कि डर है, कि कहानी वक्त से पहले ही न समाप्त हो जाय और आप कान लगाये सुनते रह जायं कि और क्या कहता है, और इधर मुह बाए बैठा ही रह जाऊं।' —वही, पृ० ७४।

७'—···मैं हिचकता हूं यह सोचकर कि कहानी तो है बहुत छोटी-सी, इत्ती

कहानी का जो 'वक्तव्य' पाठक के हाथ आता है[1] वह कहानी की रचनात्मक प्रक्रिया की व्याख्या से सम्बन्धित है। व्याख्या यह है कि 'कला तो यह है कि हम उसमें रत मानवों के पारस्परिक सम्बन्ध को तुरन्त देख सकें······।'[2]

कहानी में ही 'कहानी' की रचना–प्रक्रिया की व्याख्या की संभावना को प्रत्यक्ष कर सकता, आधुनिक कहानी के अति–विकसित शिल्प की मूल्यगत श्रेष्ठता का प्रमाण है। 'कृति' में 'कृति' के रचना–विधान से सम्बन्धित स्थाई महत्व के मूल्यों की उपलब्धि आधुनिक कथा–शिल्प के विकास की बड़ी महत्वपूर्ण घटना है। जैनेन्द्र की कहानियों का आरम्भ ही कैसे कहानी में व्यक्त

सी क्योंकि वह सरल है, और वह सरल इसीलिए है कि वह सच्ची है और मानवीय है, पर मन है आपसे बातें करने का । अच्छा अगर इस लोभ को तज भी दूँ तो भी क्या कहानी को वैसे ही कह पाऊंगा जैसे कि वह है ? कोशिश करके देखता हूं। सुनिए।

'किसी व्यक्ति ने तीसरे दर्जे के एक डब्बे में घुसकर देखा, कोई लेटा है, कोई अधलेटा पड़ा है, किसी ने बेंच पर सामान फैला रक्खा है। कहीं भी बैठने की जगह नहीं है···'

अब इसी को मैं यों भी कह सकता हूँ कि एक बार की बात है, दिल्ली शहर से एक आदमी लखनऊ के लिए चला···या उस आदमी के साधारण मानवीय व्यवहार में आपको कोई महत्ता न दिखाई दे तो उसको थोड़ा असाधारण हीन या उत्कृष्ट दिखला सकता हूं, जैसे सुनिए···' आदि।

—सीढ़ियों पर धूप में : रघुवीरसहाय : पृ० ७५।

१—'इसलिए हमारी कहानी यह है कि एक यात्री ने दूसरे से कहा 'भाई, जरा हमको भी बैठने दो।' दूसरे ने कहा, 'नहीं. मैं आराम करूंगा'।' पहला आदमी खड़ा रहा। उसे जगह नहीं मिली पर वह चुपचाप खड़ा रहा। दूसरा आदमी बैठा रहा और देखता रहा। बड़ी देर तक वह उसे खड़े हुए देखता रहा। अचानक उसने उठकर जगह कर दी और कहा—'भाई, अब मुझसे बरदाश्त नहीं होता। आप यहाँ बैठ जाइए।'

—वही, पृ० ८२।

२—वही, पृ० ८२।

नाना सन्दर्भों की भावपूर्ण भूमिका बन कर आता है, 'वह चेहरा' [1] शीर्षक कहानी इसका उदाहरण है। जैनेन्द्र की कहानी चरित्र और अनुभूति को किन स्तरों पर प्राप्त करती है, इसकी व्याख्या इस कहानी में ही उपस्थित है। कहानी के शिल्प की 'रचनात्मकता' पर हम निरन्तर जो बल देते आए हैं, वह इसी लिये कि कहानीकार कथानक, चरित्र, वातावरण को अनुभूति और संवेदना के जिस स्तर पर प्राप्त करता है उसी स्तर पर व्यक्त कर सकने की सार्थक योग्यता कहानी के शिल्प में अन्तर्निहित होनी चाहिए। प्राचीन कहानी बाह्य घटनाओं का जो ऊहापोह दिखाई देता है वह इसी लिए कि उसका शिल्प नितान्त कमजोर और असमर्थ है।

आधुनिक कथा-शिल्प का वैशिष्ट्य यह भी है कि उसमें सूक्ष्म-से-सूक्ष्म इन्द्रियबोधों को अभिव्यक्त करने की अद्भुत क्षमता विद्यमान है। यह क्षमता पहले की कहानी में कभी भी इस स्तर पर नहीं देखी गयी। प्रसाद और प्रेमचन्द की कहानियों में आविष्कृत बिम्ब–विधान को देख कर कभी कभी इस क्षमता का आभास अवश्य होता है पर आधुनिक कहानीकारों में इन्द्रिय-बोधों की अभिव्यक्ति में सहायक बिम्बों की सत्ता के प्रति जैसी जागरूकता परिलक्षित होती है वह पहले इस रूप में नहीं दिखाई देती है। सूक्ष्म रंग–बोध की ऐन्द्रिय संवेदना के कुछ उदाहरण लें, [2] तो सहज ही देख सकेंगे कि 'कहानी' में व्यक्त

१–'याद करता हूं तो चेहरे एक से अधिक हैं जो ध्यान से नहीं उतरते। यह भी अचरज की बात है कि वे सिर्फ चेहरे हैं, चरित्र नहीं, यानी उन्हें जानने का मौका नहीं आया। जिन्हें जाना है और भुगता हैं, ऐसे लोगों के चेहरे मन पर उतने साफ नहीं रह गए, उनकी याद इतनी सचित्र नहीं हो पाती, जैसे उनको समेटना और जुटाना पड़ता है। और जो ध्यान से हटते नहीं, वे हैं जिनके साथ लगभग व्यवहार बरताव का मौका ही नहीं आया। चरित्र खुलता है और धीरे–धीरे खुलता है । चरित्र जब सामने होता हैं तो चेहरा ओझल होने लगता है। उसके मुकाबले चेहरा खोलता है, कभी खुद पूरी तरह नहीं खुलता । इस लिए हम अपनी तरफ से जितना चाहें उसमें डाल दे सकते हैं। प्रेम चेहरे से होता है, ज्ञान से नहीं। यहाँ उल्लेख मैं उस चेहरे का करूंगा जो सबको ही एक उम्र में दीखता है।' –जैनेन्द्र की श्रेष्ठ कहानियाँ : (राज० प्रकाशन) : पृ० ७२।

२–(क) 'देखता क्या हूं कि चेहरा है जिस पर एक रंग नहीं, पल-पल जिस

ऐन्द्रिय अनुभवों की यह चेतना कविता और चित्रकला के कितने समीप है। अत्यन्त सूक्ष्म ऐन्द्रिय बोध की संवेदना से युक्त, तथा उसे वहन करने में समर्थ, पारदर्शी भाषा का निर्माण, आधुनिक कहानी के रचनात्मक शिल्प की महत्व-पूर्ण उपलब्धि है। इस उपलब्धि के प्रकाश में आधुनिक कहानी में प्रयुक्त बिम्बों का अध्ययन करने से जाना जा सकता है कि आज की कहानी में सूक्ष्म इन्द्रिय संवेदन, सूक्ष्म सौन्दर्य बोध, प्रतीकार्थों की उपलब्धि आदि कितनी ही विशेष-ताओं का समावेश हो गया है जो कविता और चित्रकला में समानतः पाई जाती हैं। 'अज्ञेय' की कहानियों में ये विशेषताएं पहली बार देखी गयीं। उनकी 'पठार का धीरज' 'हीलीबोन की बत्तखें' आदि कहानियों में इन विशेषताओं का उत्कृष्ट उपयोग देखा जा सकता है। 'कुंड पर अठखेलियाँ करती' तथा

पर रंग आते और जाते हैं। निश्चय ही उसका रंग उजला है और गोरा है, और वही बना रहता है। लेकिन गोराई में अनेक रंग हैं और उन्हीं की छायाएँ भागती-सी उस चेहरे पर लहराती रहती हैं।'

—जैनेन्द्र की श्रेष्ठ कहानियां (राज० प्रका०) : पृ० ७२।

(ख) 'हीली देख रही थी, बुरूस के वे इक्के दुक्के गुच्छे न जाने कहाँ अन्ध-कार-लीन हो गए हैं, जब कि चीड़ के बृक्षों के आकार अभी एक दूसरे से अलग स्पष्ट पहचाने जा सकते हैं। क्यों रंग ही पहले बुझता है, फूल ही पहले ओझल होते हैं, जब कि परिपार्श्व की एकरूपता बनी रहती है।'

—जयदोल : अज्ञेय : पृ० ६२—

(ग) 'रूनी घास पर भाग रही है बंगले की तरफ···पीली रोशनी में भीगी घास के तिनकों पर रेंगती हरी, गुलाबी धूप और दिल की धड़कन, हवा, दूर की हवा के मटियाले पंख एरियल-पोल को सहला जाते हैं सर्र सर्र··· और गिरती हुई लहरों की तरह झांड़ियाँ झुक जाती हैं। आँखों से फिसल कर वह बूंद पलकों की छाँह में कांपती है जैसे वह दिल की एक धड़कन है, जो पानी में उत्तर आयी है।'

—दहलीज, निर्मल वर्मा : कहानी : जून, १९५८ : पृ० १०।

(घ) 'बायें हाथ, कोण में द्रोपदी घाट पर बड़ी नाव का मस्तूल आकाश में उग आया था। रह—रहकर कच्ची कगारें गंगा में टूट—टूट कर गिरते 'छप' बोल जाती। आकाश इस झलफल बेला में रोरिक के चित्र-सा लग रहा था।'

—तथापि : नरेश मेहता : पृ० ११७।

'लहराकर चक्कर खाकर मूर्च्छित होती चाँदनी', [1] 'सनसना उठते हुए पलाश के झोंप' [2] पहाड़ी नदी का ताम्र मुकुर', [3] 'मखमली चादर में रेशमी डोरे सी झलकती हुई पगडंडी' [4] —इस प्रकार के अनेक सफल काव्यात्मक चित्र या बिम्ब अज्ञेय की कहानियों को एक सविशेष रचनात्मक सार्थकता प्रदान करते हैं। इस युग की कहानी में प्रयुक्त बिम्ब-विधान को देखते हुए मानना पड़ता है कि आधुनिक कहानीकार बिम्बों का उपयोग भावना, अनुभूति तथा संघर्ष के चित्रण में, वातावरण तथा संवेदना के निर्माण में तथा 'आधुनिक' चरित्रों के सार्थक उद्‌घाटन की दिशा में करता है।

निश्चय ही, अनुभूति की गहनता और निपुण-शिल्प का यह सम्यक् योग पहली बार आधुनिक कहानी में घटित हुआ है, जिसने एक ऐसी रचनात्मक भूमि का निर्माण किया है, कि कला का उत्कर्ष सहज ही उसमें प्रत्यक्ष हो गया है। नीले लिफाफे—सा आकाश, धूप में सोते-से टूटे पत्थर, पुराने सिक्कों की तरह के कुछ शब्द, खरगोश की तरह का धूप का सांवला धब्बा, गिरती हुई लहरों की तरह झाड़ियां, अपरिचित डर की खट्टी—खट्टी सी खुशबू, सफेद चाँदनी में पिघलता हुआ फुनगियों का हरापन, गुनगुनी—सी सफेद हवा, नींद की नीली झील पर तिरता—सा कुहरा, भुतैली—सी थकी—थकी चाँदनी, पीली फीकी-सी धूप में धुले आकाश की कटी फटी नीली फाकें, पिघलती चांदी-सी धूप, झीलों पर बने फूलों के रङ्गबिरङ्गे पुल, चांदी की उड़ती हुई रेत, नीली झीलों में झलकते हुए सफेद मखमली बादल, विस्मृति की कब्रों पर उगी हुई पीली घास, संगमरमर-सी चिकनी सफेद बाहें, पहाड़ियों के बीच छोटे-छोटे जुगुनुओं-सी बत्तियाँ, बांस की लकड़ियों की तरह टांगें, पैरों तले चीड़ के पत्तों की धीमी-सी चिर—परिचित खड़-खड़, रेशमी रूमालों-से उड़ते हुए छोटे—छोटे बादल, धूप में चमकता हुआ सफेद रिबन-सा बरसाती नाला, भागती हुई गिलहरियों-से खेत, बुझती हुई आग के धुयें-सी चाँदनी, दुखती रेखाओं-सी नदियां, लम्बी—लम्बी झंडियां की रंगीन बन्दनवारों से सज्जित पहाड़ों के कण्ठ, जाती हुई धूप में पीले रेशमी पर्दे-सा पश्चिम, लाल-पीली

१— जयदोल : अज्ञेय : पृ० २० ।
२— वही, पृ० २० ।
३— वही, पृ० ६२ ।
४— वही, पृ० ६२ ।

छतों से तैरते मकानों, बारजों बालकनियों और खिड़कियों में घुसते हुए बादल फेन की भांति तिरता हुआ आकर्षण, तिरछी धारों के सहारे खड़ा धूप का एक खण्ड, एक बड़े भारी खुले दरवाजे-सा इन्द्रधनुष, नहाये-नहाये बच्चों जैसे धुले–धुले पेंड़, अवाँछित बूढ़े प्रहरी-सा ताजमहल, मोमबत्ती की हरी–सुनहली लौ-जैसे पत्तों के गुम्बदाकार कुँज, लम्बी-चौड़ी धारियों की तरह पेड़ों और इमारतों की परछाइयां, टटकी-टटकी कुँजों और लान की हरियालियां, हरियाली के सुरमई धुँधले कांच पर छिटके हुए सफेद फूल, बर्फ की चादर की तरह स्तब्ध लान–ऐसे अनेकशः सार्थक चित्रात्मक बिम्बों का उपयोग आधुनिक कहानीकारों को आधुनिक बिम्बवादी (इमेजिस्ट) कवियों के समीप लाता है। कहना अनुचित न होगा, कि बिम्बों के प्रति यह सजग चेतना नये यथार्थ के प्रति आधुनिक कहानीकारों की संवेदनात्मक प्रतिक्रिया को सूचित करती है। "रचना" में वस्तु के प्रत्यक्ष–ग्रहण के सिद्धान्त पर बल देनेवाली बिम्बवादी प्रवृत्ति आधुनिक विचार दर्शन (पाजिटिविज्म) के अधिक निकट जान पड़ती है। बिम्ब और वस्तु के बीच अविरोध पर बल देते हुए लिविस ने बिम्ब–विधान के उपयोग की सार्थकता कविता तथा गद्य सभी रूपों के लिए बतायी है।[1] ऊपर दिए गए बिम्बों के उदाहरण से प्रत्यक्ष है कि आधुनिक कहानी में इन्द्रिय–चेतना के माध्यम से प्राप्त वस्तुओं का आकलन और चित्रण करने की प्रवृत्ति प्रधान है। इन उदाहरणों में यह विशेषता सहज ही देखी जा सकती है कि आधुनिक रचनाकार अपने सूक्ष्म अनुभव-संवेदन को रूपायित करने के लिए "भाषा" नामक यन्त्र को कितना लचीला बना लेता है। वह अनुभव करता है कि वास्तविकता के, निरन्तर बनते हुए नाना सन्दर्भ-स्तरों की अभिव्यक्ति के लिए प्राप्त भाषा की संपदा पर्याप्त नहीं है और इसी अनुभूति के साथ वह "बिम्बवादी भाषा" के अन्वेषण में तथा प्रतीकवादी शिल्प की खोज में संलग्न होता है। आधुनिक

१— "ह्वेदर इन वर्स, देन, आर इन प्रोज, द प्रिन्सिपुल दैट आर्गनाइजेज द इमेजेज इज ए कन्कर्ड बिटवीन इमेज ऐन्ड थीम, द इमेजेज लाइटिंग द वे फार द थीम ऐन्ड हेल्पिंग टु रिवील इट, स्टेप बाइ स्टेप, टु द राइटर, द थीम ऐज इट दस ग्रोज अप कन्ट्रोलिंग मोर ऐन्ड मोर द डिप्लायमेन्ट आफ द इमेजेज।"

—द पोएटिक इमेज : सी० डे० लिविस : पृ० ८८।

कहानीकार एक ओर यदि मूर्तिमत्ता पर बल देकर कहानी को अनुभूति के सजीव यथार्थ्य के स्तर पर प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न करता है, तो दूसरी ओर प्राचीन कहानीकारों की रचनाओं की अतिभावुकता और सामान्यीकरण के प्रति विद्रोह करते हुए "रचना" में "विशेष" की प्रतिष्ठा करना चाहता है। आधुनिक कहानी में प्राप्त बिम्ब-विधान की प्रक्रिया को देखते हुए स्वीकार करना पड़ता है कि यह प्रक्रिया भाषा-प्रक्रिया की प्रचलित सीमाओं के प्रति एक प्रकार का रचनात्मक विद्रोह ही है।

अभिव्यक्ति के संकट का साक्षात्कार जिन कहानीकारों ने किया है, उनकी रचनाओं में कभी-कभी इसका प्रत्यक्ष उल्लेख भी पाया जाता है।[1] अभिव्यक्ति संकट की इन स्थितियों के अध्ययन से कहानी के रचना-शिल्प की तथा कहानीकार की अनुभव-प्रक्रिया की कुछ अन्य महत्वपूर्ण समस्याओं को समझने में सहायता मिल सकती है।

ग्राम-कथानकों का उपयोग

ग्राम-कथा को हिन्दी–कहानी में नए आधार पर प्रतिष्ठित करनेवाले कहानीकारों ने अपनी रचनाओं में भाषा तथा शिल्प का स्थानीय सहज रंग सुरक्षित रखने का प्रयास किया है। सर्वश्री फणीश्वरनाथ "रेणु", डा० लक्ष्मी-नारायण लाल, मार्कण्डेय, शिवप्रसाद सिंह, शेखर जोशी, आदि कहानी लेखकों

१— (क) "कुछ शब्द हैं जो मैंने आज तक नहीं कहे। पुराने सिक्कों की तरह वे जेब में पड़े रहते हैं। न उन्हें फेंक सकता हूँ, न भुला पाता हूँ।"
—लवर्स : निर्मल वर्मा : कहानी, मई, १९५९ : पृ० ११।

(ख) "मैंने रुकते रुकते कहा–" मेजर, मेरे पास शब्द नहीं हैं कि कुछ कहूँ।" "कहोगे क्या प्रधान ? कुछ बातें शब्दों से परे होती हैं—शायद कल्पना से भी परे होती हैं।" –जय दोल : अज्ञेय : पृ० १४४।

(ग) "उसे लग रहा था जैसे कोई बहुत बड़ी बात उसके मन में घुमड़ रही हो। जिसे वह बाहर व्यक्त कर दे तो वह एक महान रचना का रूप ले सकती है। और भी तो कितनी ही बार उसके मन में ऐसी बातें आ जाती थीं, जिन्हें बाहर व्यक्त करने के लिए उसे शब्द नहीं मिलते थे।"
–आदमी और दीवार : मोहन राकेश : "नयी कहानियां" : नवम्बर, १९६० पृ० १७।

की रचनाएं कथा-शिल्प की समस्याओं का समाधान ग्राम-कथानकों के स्तर पर ढूँढ़ती हैं। इन लेखकों का विश्वास है कि हिन्दी-कहानी में सजीवता ग्राम-कथानकों की पुन: प्रतिष्ठा के साथ ही आयी है।[1] यहां यह संकेत करना अप्रासंगिक न होगा, कि प्रेमचन्द की समृद्ध कहानी-परम्परा के सन्दर्भ में यह मानना कि ग्राम-कथा की यह सजीवता पिछले दशक की उपलब्धि है, शुद्ध रचनात्मक आवेश है। प्रेमचन्द ने ग्राम-कथानकों के स्तर पर जिस महत्वप्रद जीवन-मर्म का उद्‌घाटन किया है, वह अभी भी अतुलनीय है। ग्राम-कथानकों पर आधारित आधुनिक कहानियों में शिल्प सम्बन्धी जो प्रयोग किए गए हैं वे सार्थक हैं और उन प्रयोगात्मक विशेषताओं के समीम हैं जिनकी चर्चा पहले की गयी है। केवल स्थानीय (लोकल) भाषा के आत्यन्तिक प्रयोग की समस्या विचारणीय है। हमारी दृष्टि में स्थानीय भाषा के आत्यन्तिक प्रयोग से यदि "कृति" में दुरूहता आती है तो इसके परिहार के लिए समाधान कहानीकारों को ही अधिक रचनात्मक स्तर पर ढूंढ़ना चाहिए।

ग्राम कथानकों के उपयोग की समस्या से हटकर, आँचलिक कहानियों की रचना करनेवाले कुछ कहानीकारों ने अपने कथा-शिल्प को अधिक सूक्ष्म और रचनात्मक बना डाला है। फणीश्वरनाथ "रेणु" की कहानियों में कथा-शिल्प का सम्पूर्ण आधुनिक उपयोग देखा जा सकता है।

आधुजिक हिन्दी-कहानी के रचनात्मक-शिल्प और भावबोध की आधुनिक चेतना को देखते हुए उसकी आधुनिक उपलब्धियों की मौलिकता स्वत: प्रमाणित है। ये सभी उपलब्धियां पश्चिम से अनुप्राणित है—यह विचार शुद्ध भ्रामक

१—"गांव के कथानकों के साथ एक नयी ताज़गी, सामाजिक विकास की नयी सच्चाई तथा उसी के अनुरूप भाषा तथा शिल्प की ऐसी प्रबल शक्तियां आयीं, जिन्होंने कथा की सारी पुरानी, बसियायी, किताबी अर्जित भाव-सम्पदा को आच्छादित कर लिया। जिस अन्तर्गथित प्रतीक योजना और भाषा की साँकेतिकता की बात अब उठायी गयी है, वह अधिक मांसलता एवं स्वाभाविकता के साथ किसी पहाड़ी झरने की तरह इन्हीं कथानकों के साथ सबसे पहले आयी।"

—भूमिका : भूदान : मार्कण्डेय : पृ० ८।

हैं।[1] कहानी की लम्बी परम्परा के ऐतिहासिक विकास और तुलनात्मक विकास के इस अध्ययन से हमारी यह धारणा पुष्ट होती है कि आधुनिक हिन्दी-कहानी प्राचीन हिन्दी-कहानी का सहज विकास है। कला के विकास और प्रगति की प्रक्रिया होती ही ऐसी है कि नए अनुभवों और नयी संवेदनाओं का साक्षात्कार करनेवाला कलाकार अनुपयोगी निर्जीव 'मूल्यों" को छोड़कर उपयोगी नये "मूल्यों" की उपलब्धि और सृष्टि करता है। आधुनिक कहानी लेखकों ने भी विकास की इस ऐतिहासिक प्रक्रिया में यही किया है। आधुनिक कृतिकार मानव मन में अन्तर्विरोधी प्रेरणाओं का सहअस्तित्व स्वीकार करता है।[२] आधुनिक कहानीकारों में भी यह चेतना इसी रूप में दिखाई पड़ती है। आधुनिक कहानी में रचनात्मक चेतना के इस विकास को युग की ऐतिहासिक तथा मानसिक परिस्थितियों संस्कृति और विज्ञान की चेतना के विकास के सन्दर्भ में देखना हो सकता है, इसमें सन्देह नहीं।

घ–निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन के फलस्वरूप हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि जिस आधुनिक मनोवैज्ञानिक दृष्टि प्राचीन मान्यताओं (टैबूज) को रूढ़ और निरर्थ मानकर मानव–मन के विश्लेषण की दिशा में आगे और अधिक ठोस भूमि पर आना चाहती है, उसी प्रकार आधुनिक कहानी प्राचीन कहानी की तरह

१—"नए युग की हिन्दी-कहानियों के सम्बन्ध में दो बातें बड़े विश्वास के साथ और बहुत ही निर्विवाद भाव से कही जाती हैं। एक यह कि ये कहानियाँ आधुनिक पश्चिमी कहानियों से प्रभावित हैं और उन्हीं के आधार पर लिखी जा रही हैं। दूसरी यह कि इन कहानियों का प्राचीन भारतीय कथा-साहित्य से कोई क्रमागत सम्बन्ध नहीं है। किन्तु मुझे ये दोनों ही बातें सुविचारित नहीं जान पड़तीं और सहसा यह मान लेने का कोई कारण नहीं दिखता कि नई हिन्दी-कहानियों की कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है अथवा प्राचीन कथा-साहित्य से उनका कोई तात्विक साम्य नहीं है।"

—आधुनिक साहित्य : नन्ददुलारे वाजपेयी : पृ० २३९।

२—"इन ह्यूमन नेचर, मोटिव कैन नाट बी डिवाइडेड इन्टू कम्पार्टमेन्ट्स, फार कान्फ्लिक्टिंग मोटिव्ज़ कोएक्जिस्ट इन द ह्यूमन हार्ट, ऐन्ड आर टु बी सीन थ्रू वन अनेदर।"—द राइटर ऐन्ड हिज़ वर्ल्ड—चार्ल्स मार्गन : पृ० १९२।

घटना–सूत्र न जुटाकर "यथार्थ" की परिकल्पना को मूर्त करना चाहती है। इस दिशा में आवश्यक नहीं होता कि यथार्थ का ऐसा बौद्धीकीकरण किया ही जाय जो सहज ग्राह्य और सम्प्रेषणीय न हो। यह समस्या आधुनिक कहानी के जब-तब उठती है और स्वयं लेखक इसकी अनुभूति से अपरिचित नहीं साथ है।[1] यह ठीक है कि सम्प्रेषणीयता (कम्यूनिकेविलिटी) का प्रश्न सीधे रचनात्मक प्रक्रिया से सम्बद्ध नहीं है—क्योंकि यह प्रश्न कृति और कृतिकार के बीच न होकर कृति और पाठक के बीच है—पर उपेक्षणीय तो नहीं ही है।

हमारी समझ में आधुनिक कहानी के विकास की सम्भावनायें इस पर ही निर्भर करेंगी, कि वह कहाँ तक अपने परिवेश के यथार्थ अनुभवों को मार्मिक स्तर परव्यञ्जित कर पाती है और यथार्थ के बौद्धिकीकरण से बच कर अपनी रचनात्मक सम्भावनाओं का विकास कर पाती है।

हिन्दी-कहानी के विकास के विभिन्न युगों के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर हम पुनः कहेंगे कि—

प्राचीन कहानी की तुलना में आधुनिक कहानी की महत्वपूर्ण उपलब्धि यह है कि उसने "पात्रों" या "चरित्रों" को आत्यन्तिक महत्व न देकर पात्रों-चरित्रों के माध्यम से कहानियों में व्यक्त स्थितियों को महत्व दिया है तथा कहानी की रचना–प्रक्रिया को एक नए स्तर पर प्रतिष्ठित किया है तथा प्राचीन कहानी की भाँति चरित्रों का एकत्रीकरण न करके आधुनिक लेखक ने किसी एक चरित्र की सम्भावना को विकसित करने का यत्न किया है। आधुनिक कहानी पाठकों को अपने माध्यम से व्यक्त अनुभवों को पुनः जीने का अवसर देना चाहती है।

रचनात्मक कर्म और प्रयोजन के प्रति जागरूकता जिस रूप में आधुनिक कहानी लेखकों में दिखाई देती है वह पहले के कथाकारों में प्रेमचन्द तथा प्रसाद को छोड़कर दूसरे किसी लेखक में नहीं दिखाई देती।

११४—"मैं बार-बार सोचता हूं कि हमारा साहित्य, हमारा सम्पूर्ण कला कृतित्व यथार्थ के इस बौद्धिकीकरण से आक्रांत है। यथार्थ को यथार्थवत् ग्रहण कर सकने की हमारी क्षमता को वह कुंठित कर रहा है।"
—आत्मनेपद : अज्ञेय : पृ० १३८।

आधुनिक कहानियों में व्युत्पन्न आधुनिकता कोई सतही विवरणों की वस्तु नहीं है, वह संस्कार से उत्पन्न है, विकार से नहीं; वह रचनाकार और उसके परिवेश के आभ्यन्तर सम्बन्धों में निहित एक सम्भावना है जो रचनात्मक–प्रक्रिया के प्रति सचेष्ट कलाकारों की कृतियों में ही मूर्तिमान हो सकती है। यही कारण है कि प्राचीन कहनी की तरह "तथ्यों" पर ध्यान न देकर आधुनिक कहानीकार "मूल्यों" पर अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहता है–बल्कि "मूल्यों" के आभ्यन्तर संघर्ष पर।

अन्त में, यह निवेदन करना भी आवश्यक जान पड़ता है कि इन युगों में से किसी की भी व्याप्ति-रेखा का निर्णय समय के नितान्त स्थूल, आधार पर नहीं किया जा सकता। पूर्व–प्रेमचन्द–युग की जिस कहानी को हम "प्राचीन कहानी" की संज्ञा देते हैं, उस स्तर की कहानियाँ प्रेमचन्द-युग के आरम्भ में मिलती ही हैं। इसी प्रकार उत्तर प्रेमचन्द-युग की कहानी में जिस सजीव यथार्थ–बोध की सूक्ष्मता को हम सहज ही "उपलब्ध" करते हैं उसका पूर्वाभास प्रेमचन्द–युग के अन्त की कहानियों में प्राप्त होता है। सन् १९३६ के पूर्व ही हम आधुनिक मनःस्थितियों की कहानियाँ प्रकाश में आते हुये देखते हैं। इस दृष्टि से नवीन या आधुनिक हिन्दी–कहानी को प्राचीन हिन्दी-कहानी का स्वाभाविक ऐतिहासिक विकास ही मानना उचित जान पड़ता है। हिन्दी-कहानी के विकास के विभिन्न–युगों का एक दूसरे में अन्तर्लीन होना "साहित्यिक इतिहास की कठिनाई"[1] को बढ़ा देता है, पर वही साहित्य के रचनात्मक विकास की स्वाभाविक प्रक्रिया में हमारा विश्वास भी दृढ़ करता है।

●

१—"द टास्क आफ द लिट्रेरी हिस्टोरियन वुड बी सिम्प्लीफाइड इफ देयर वेयर नो वोवरलैंपिंग बिटवीन जेनरेशन्स बट द जेनरेशन्स मूव इम्परसेप्टिब्ली वन इण्टू अनेदर द लास्ट अपियर्स टू बी स्टिल फ्लरिशिंग ह्वेन इट्स सक्सेसर इज आलरेडी कान्फिडेन्ट आफ विक्ट्री। ऐट एनी मोमेण्ट द मैन ऐण्ड विमेन हू रीड ऐण्ड राइट आर आफ मेनी एजेज ऐण्ड बिलांग टू डिफरेण्ट क्लाइमेट्स आफ थाट ऐण्ड फीलिंग।"

——फिफ्टी इयर्स आफ इंग्लिश लिट्रेचर : आर० ए० स्काट जेम्स : पृ० १६३।

६

आज की कहानी

क— आज की कहानी पर पृथक् रूप से विचार करने की आवश्यकता

अनेक अन्तर्बाह्य कारणों से, प्रस्तुत अध्ययन और विवेचन की परिसमाप्ति पर, हमें आज की कहानी (जिसमें "नवीनता" पर इतना बल है कि "नयी कविता" की भाँति "नयी कहानी" की संज्ञा भी प्रचलित हो चली है) पर रुक कर पृथक् रूप से विचार करने की आवश्यकता प्रतीत होती है। हमारी समझ से स्वतंत्रता-प्राप्ति के समय को, प्रेमचन्दोत्तर आधुनिक कहानी और आधुनिक कहानी की ही परिणति आज की नयी कहानी के बीच की, विभाजक-रेखा मानना चाहिए। इसके निश्चित कारण हैं कि स्वतन्त्रता से पहले की कहानी में व्यक्त कहानीकार की निजी समस्या मानव-समस्या नहीं बन पाती। कहानीकार का आत्मविभाजन मानव के समग्र विश्वास को अपनी रचना–प्रक्रिया में आत्मसात नहीं कर पाता और वह सचमुच घटित होती हुई जीवन–परिस्थितियों के प्रति जब-तब उदासीन भी दिखाई पड़ता है। आज आलोचकों ने इसी दृष्टि से कलात्मक साधना की क्रिया को स्वतंत्र मानते हुए भी वास्तविक जीवन के बृहत्तर सन्दर्भों के संवेदनात्मक ज्ञान पर बल देना चाहा है।[1] कहा जा सकता है कि उसके अभाव में ही, स्वतंत्रता से पहले के

१–"वास्तविक जीवन–साधना के बिना कलात्मक साधना असंभव है। यद्यपि कलात्मक साधना की, सापेक्षिक रूप से, अपनी स्वतंत्र क्रिया और गति हुआ करती है, किन्तु उसकी मूल प्रेरणा, उसके तत्व उस आत्म–सम्पदा का अंग होते हैं जो सम्पदा अपने वास्तविक जीवन में संवेदनात्मक रूप

कुछ कहानीकार सामाजिक समस्याओं की प्रतिक्रिया को अपनी रचनात्मक चेतना का स्वाभाविक अंग नहीं बना सके हैं। स्वतंत्रता-प्राप्ति के ठीक बाद तो शिक्षित मध्यवर्ग में एक अवसरवादी चेतना ही दिखाई पड़ती है, पर १९५० तक आते-आते हम अनेक कठिनाइयों और समस्याओं के होते हुए भी एक स्वाभाविक आस्था का उन्मेष देखते हैं। विश्व राष्ट्रों के बीच भारत के बढ़ते हुए विश्वासयुक्त सम्बन्धों के कारण आज के कहानीकार (व्यापक अर्थ में रचनाकार) में रचनात्मक चेतना की विकास प्रक्रिया में त्रिमुखी संघर्ष का बोध प्रत्यक्षतः दिखाई पड़ता है। इस प्रक्रिया में पहला संघर्ष अभिव्यक्ति के लिए संघर्ष है। दूसरा-निजी चेतना को अधिकाधिक मानवीय संवेदना से सम्बद्ध करने के लिए आत्मसंघर्ष है। तथा तीसरा संघर्ष मानव समस्याओं की अनुभूति प्राप्त करते हुए अपने जीवनानुभव को व्यापक और तीव्रतर बनाने के लिए है। संघर्ष के इन विविध-स्तरों की सम्मिलित चेतना जिस कहानीकार में जितनी ही अधिक है वह स्वभावतः ही उतना ही अधिक (रचनात्मकता के क्षेत्र में) सफल है।

आज की कहानी में द्वन्द्वात्मकता और सन्देह, आत्मविकृति और आत्म-विभाजन से मुक्त जिस "मनुष्यता" की अनुभूति दिखाई देती है वह स्वातंत्र्योत्तर अनुभूति है। देश की परिवर्तित व्यवस्था, चेतना और सबके फलस्वरूप विकसित आस्था के साथ इस अनुभूति का ग्रहण कारण-कार्य सम्बन्ध है। जो लोग साहित्यिक और कलात्मक विकास की चेतना को देश और जाति के जीवन की उथल-पुथल और समाज के विकास की चेतना से सम्बद्ध करके देखते हैं, वे आज की कहानी (जिसकी कालावधि अधिक सीमित है—इतनी सीमित, कि उस पर विचार प्रेमचन्दोत्तर कहानी की परिधि में ही किया जाता है और तर्कसंगत कारणों से ऐसा ही करने की आवश्यकता भी पड़ती है) की नयी उपलब्धियों को अलग से समझने की आवश्यकता को स्वीकार करेंगे।

सन् १९४७ में हमने जो राष्ट्रीय स्वाधीनता प्राप्त की, उसके फलस्वरूप कला और साहित्य-सृजन के क्षेत्र में साँस्कृतिक विकास के प्रति सजग

से अर्जित की जाती है और एक जीवन संवेदनात्मक ज्ञान-व्यवस्था के रूप में परिणत की जाती है।" —आधुनिक कविता की दार्शनिक पार्श्वभूमि : : गजानन माधव मुक्ति बोध : रचना ३-४।

एक स्वतंत्र जातीय और उदार चेतना का उदय हुआ। राष्ट्रीय स्वाधीनता की प्राप्ति के पश्चात् विकसित होनेवाली इस चेतना के साथ नये कहानीकार में जिस "आत्मसजगता" का विकास हुआ है, वह सामाजिकता के विरोधी तत्व के रूप में नहीं है और इस कारण उस पर नये आधार पर विचार करने की आवश्यकता है।

आज की कहानी के रचनाकार के अनुभव सीमित परिवेश में ही निःशेष नहीं हो जाते, बल्कि बिम्ब-रचना के धरातल पर समूची ऐतिहासिक परम्परा और दृष्टि-क्षेत्र के अंग होते हैं। प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी-कहानी की सीमित व्यक्ति-चेतना को आज की कहानी बृहत्तर और सामाजिक बना रही है अतः उसकी उपलब्धि की नयी सार्थकता को समझने और उसे ऐतिहासिक भूमिका में रखकर उसकी नवीनता की दिशाओं को पहचानने की आवश्यकता निरन्तर बनी हुई है। हमारी दृष्टि में मानवीय सम्बन्धों से प्रतिबद्धता आज के कहानीकार के रचनात्मक मानस की सबसे महत्वपूर्ण चेतना है, और उसे नवीन जनताँत्रिक संस्कृति के विकास से बड़ा बल मिला है। हम अनुभव करते हैं कि आज की कहानी की उपलब्धियों और सीमाओं का मूल्याँकन इसी धरातल पर करना उचित है।

ख— पृष्ठभूमि

प्रेमचंद और प्रसाद ने क्रमशः अपनी यथार्थ एवं भावमूलक दृष्टि से हिन्दी-कहानी की विषयवस्तु और रचना-विधान को अत्यन्त निकट से प्रभावित किया था। कथानक में इतिवृत्त की स्पष्टता, घटना की प्रधानता, वातावरण का सहज निर्माण और उद्देश्य के प्रति सजगता आदि ऐसी विशेषतायें थीं जो इनमें समान रूप से लक्ष्य की जा सकती थीं। प्रेमचन्दोत्तर युग की कहानी में एकाधिक प्रवृत्तियों के आकस्मिक प्रवेश से कथा-भूमि के अपूर्व विस्तार के होते हुए भी संवेदनात्मक अस्पष्टता एवं उलझाव की प्रवृत्ति प्रत्यक्ष दिखाई पड़ी—जिसे दृष्टि में रखकर कहानी के आलोचकों ने प्रेमचन्दोत्तर युग को संक्रान्ति-युग कहा।[1]

१—हिन्दी-कहानियों की शिल्पविधि का विकास
—ल० ना० लाल : पृ० २३७।

बौद्धिक संवेदन की अतिशयता के कारण और कुछ तो परिवर्तित होते हुए जीवन-मूल्यों एवं सन्दर्भों के कारण, राजनीति, दर्शन और मनोविज्ञान ने प्रेमचन्दोत्तर कहानी-लेखकों के मानसिक चिन्तन को तीव्रता से प्रभावित किया। इस युग के कुछ महत्वपूर्ण लेखकों की मान्यताओं का निर्माण करने में साम्यवाद के स्थापक चिंतक मार्क्स का बहुत बड़ा योग है। वस्तु की परम-सत्यता को स्वीकृति देकर मार्क्स ने समाज, व्यक्ति, संस्कृति—सबकी व्याख्या की। उन्होंने पदार्थ और वस्तु को आत्यन्तिक महत्व दिया और प्रतिभा तक को उस पर आश्रित माना।[1] साथ ही, उन्होंने वर्ग–वैषम्य को सभी सामाजिक और मानसिक संघर्षों का मूल माना। उनकी दृष्टि में रचनाकार का कर्तव्य था : सर्वहारा वर्ग को अपनी सहानुभूति देना और इस संघर्ष की प्रक्रिया में योग देते हुए पूँजीवादी व्यवस्था को समाप्त करने की दिशा में प्रयत्न करना। इस वस्तुवादी दृष्टिकोण का प्रभाव प्रेमचन्दोत्तर कहानी पर निस्संदेह पड़ा। अपने अन्तिम दिनों में स्वयं प्रेमचन्द इस जीवन–दृष्टि से प्रभावित हुए। यशपाल उन कहानीलेखकों में प्रमुख हैं जिन्होंने इस दृष्टिकोण के प्रकाश में अपने कथा–शिल्प का निर्माण किया। यशपाल की कहानियों के कथानक सामाजिक जीवन के वास्तविक संघर्ष या चरित्रों के मानसिक अन्तर्द्वन्द्वों पर आधारित हैं। पर, हम निरन्तर अनुभव करते हैं कि चरित्रों का निर्माण भी यशपाल अर्थ–संघर्ष अथवा वर्ग–भावना के स्तर से करते हैं। अपने नवीनतम विकास की कहानियों में यशपाल भावोद्रेक का महत्व स्वीकार करते हुए प्रतीत होते हैं, यह शुभ है।[2]

प्रेमचंदोत्तर कहानी लेखकों के जीवन-दर्शन एवं साहित्यिक मान्यताओं को गांधी जी की मानवीय नैतिकता, सत्यनिष्ठा, अहिंसा, अध्यात्म, बुद्ध की करुणा और व्यापक अर्थ में मानववाद की आदर्शपरकता ने समान रूप

१– "विद मी आन द कान्ट्रेरी, द आइडियल इज नथिंग एल्स दैन द मैटीरियल वर्ल्ड रिफ्लेक्टेड बाई द ह्यूमन माइन्ड, एन्ड ट्रान्सलेटेड इन्टू द फार्म्स आफ थाट" —कैपिटल : कार्लमार्क्स : भाग १ : भूमिका : पृ० २५।

२–"कहानी की व्यंजना शैली में जितने भी परिवर्तन आए—अन्तिम लक्ष्य पाठक का भावोद्रेक ही रहा। वह भावोद्रेक चाहे सहानुभूति के रूप में या चिन्तन के लिए उद्बोधन के रूप में हो, उसके बिना कहानी सफल नहीं समझी गई।"

—नई कहानी : यशपाल : "आजकल" : मई, १९६२ : पृ० ६२।

से प्रभावित किया। सियारामशरण गुप्त जैनेन्द्र तथा अज्ञेय की कहानियों में, कहीं घटनात्मक संयोगों के रूप में, कहीं चरित्रों के आन्तरिक परिष्कार के रूप में, कहीं नैतिक भावबोध के उदय के रूप में ये प्रभाव लक्षित होते हैं। इसी प्रक्रिया में जैनेन्द्र "अलौकिक पक्ष" की ओर मुड़े हैं।[1]

कथा–शिल्प की दृष्टि से, जीवन और परिस्थितियों में मनोवैज्ञानिक प्रवेश की आवश्यकता का अनुभव तो पहले भी किया गया था परन्तु आधुनिक कहानी में मनोविज्ञान के सामान्य व्यावहारिक अध्ययन से आगे आकर मनोविश्लेषण की सूक्ष्म पद्धतियों का उपयोग किया गया है। जिन मनोवैज्ञानिक चिन्तकों एवं दार्शनिकों ने आधुनिक कलात्मक सृजन की प्रक्रिया और अधिक स्पष्ट रूप में, कथा साहित्य की रचना-प्रक्रिया को प्रभावित किया है उनमें फ्रायड प्रमुख हैं। जिस प्रकार मार्क्स ने पदार्थ को आत्यन्तिक महत्व देते हुये प्रतिपादित किया था कि पदार्थ की सृष्टि प्रत्यय से न होकर प्रत्यय की सृष्टि पदार्थ से हुई तथा आभ्यन्तर कुछ होता ही नहीं, सब बाह्य होता है, उसी प्रकार फ्रायड ने अचेतन मानस को महत्व देते हुये माना कि कला और धर्म दोनों का उद्भव अचेतन मानस की सञ्चित प्रेरणाओं और इच्छाओं में ही होता है तथा काम–शक्ति के उन्नयन के फलस्वरूप ही कलाकार कला-रूपों का सृजन करता है।[2] फ्रायड के कला-सृजन सम्बन्धी सिद्धान्तों का-

---

१—"मैं किसी ऐसे व्यक्ति को नहीं जानता जो मात्र लौकिक हो, जो सम्पूर्णता से शारीरिक धरातल पर ही रहता हो। सबके भीतर हृदय है, जो सपने देखता है। सबके भीतर आत्मा है जो जगती रहती है, जिसे शस्त्र छूता नहीं, जिसे आग जलाती नहीं। सबके भीतर वह है जो अलौकिक है। इसलिए आलोचक से मैं कहता हूँ कि जो अलौकिक है, वह भी कहानी तुम्हारी ही है, तुमसे अलग नहीं है।"

—जैनेन्द्र : एक रात : पृ० ४

२—"द हिस्टोरियन्स आफ सिविलाइजेशन सीम टु बी युनानिमस इन द ओपिनियन दैट सच डिफ्लेक्शन आफ सेक्सुअल मोटिव पावर्स फ्राम सेक्सुअल एम्स टु न्यू एम्स, ए प्रासेस ह्विच मेरिट्स द नेम आफ सबलिमेशन हैज फर्निश्ड पावरफुल कम्पोनेन्ट्स फार आल कल्चरल एकम्प्लिशमेन्ट्।"

—बेसिक टीचिंग्ज : फ्रायड : सं० डा० ब्रिल० : पृ० ५८४।

प्रभाव प्रेमचन्दोत्तर कहानी पर प्रत्यक्ष है जिसके कारण कथा-विन्यास में अधिकाधिक सूक्ष्मता आती गई है, घटना का आग्रह क्षीणतर होता गया है और चरित्रों की संवेदनाओं का अन्तर्विश्लेषण अधिक सांकेतिक होता गया है। फ्रायड की मान्यताओं ने स्त्री–पुरुषों के सम्बन्धों की नैतिक मान्यताओं को दूर तक प्रभावित किया है। जैनेन्द्र की "मास्टर जी", "एक रात" अज्ञेय की "रोज", "कोठरी की बात", "पठार का धीरज" तथा इलाचन्द्र जोशी की "मैं", "मिस एल्किन्स", "मेरी डायरी के दो नीरस पृष्ठ" आदि कहानियों में ये सभी विशेषतायें देखी जा सकती हैं। इन लेखकों की कहानियों में अनुभूति की गहनता स्पष्ट है। अपनी मान्यताओं में भी इन लेखकों का आग्रह अनुभूति के प्रति अधिक दिखाई देता है।[1] कुछ लेखकों की कहानियों के चरित्रों के वक्तव्यों में अनुभूति के आभ्यन्तरिक स्तरों की स्वीकृति स्पष्ट है।[२] इसी वर्ग की परिधि में अश्क की कहानियाँ भी आती हैं यद्यपि प्रकारान्तर से सामाजिक यथार्थ उनकी कहानियों का उपजीव्य है।

सामाजिक यथार्थ को ही भिन्न–भिन्न कोणों से देखने वाले तथाकथित संक्राति-युग के अन्य कहानी लेखक हैं—भगवतीचरण वर्मा, पहाड़ी, चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार, विष्णुप्रभाकर, अमृतलाल नागर, रांगेयराघव आदि। इनमें से अधिकाँश लेखकों की कहानियाँ लक्ष्यात्मक हैं।

ग—आज की कहानी का वैशिष्ट्य

'४०—'५० के बीच के जिस संक्रांति युग की कहानियों की चर्चा हमने आज की कहानी की पृष्ठभूमि के रूप में की है उसके अध्ययन के फलस्वरूप हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सके हैं कि अनुभव की गहनता और यथार्थ की

---

१. "मेरा आग्रह रहा है कि लेखक अपनी अनुभूति ही लिखे। जो अनुभूति नहीं है कोई सैद्धान्तिक प्रेरणा के वशीभूत होकर उसे लिखना ऋणशोध हो सकता है, साहित्यिक सिद्धि नहीं।"

—अज्ञेय : भूमिका—शरणार्थी : पृ० २।

२. "मैं उन आदमियों में से हूँ जो सब समय केवल अपने अन्तर की भावनाओं के लिये रहते हैं..................।"

—इलाचन्द्र जोशी : आत्मकथात्मक।

जटिलता के कारण इस अवधि की कहानी ने अपनी सीमायें बना ली हैं। यही कारण है कि आलोचकों ने इस समय के साहित्य के सम्बन्ध में एक स्वर से सन्देहपूर्ण चिन्ता की ही अभिव्यक्ति की है।[1] स्वतन्त्रता से पूर्व की नवीनता से स्वातन्त्र्योत्तर कहानी की नवीनता का अन्तर एक महत्वपूर्ण अन्तर है और उसे देश की बदलती हुई परिस्थितियों और निरन्तर बदलते हुये सन्दर्भों की भूमिका में रखकर देखना आवश्यक है।

आज की कहानी में सामाजिक अनुभवों के सूक्ष्म सार्थक उपयोग पर बल दिया जा रहा है, यह स्थिति आकस्मिक नहीं है। संक्रान्तियुग की कहानी की सीमाओं की प्रतिक्रिया का सहज परिणाम है : आज की कहानी, जिसमें 'मनुष्य' और 'मनुष्य' नामक यन्त्र का अन्तर स्पष्ट है। आज का कहानीकार यथार्थ को विभाजित करके नहीं देखता, अपितु सम्पूर्णता में देखता है। अनुभूति के प्रति उसकी अतिशय सजगता अनुभूतिक्षण को समय के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखने की शक्ति प्रदान करती है। आज की कहानी में कथानक, चरित्र, वातावरण और प्रयोजन की सार्थक सांकेतिक अभिव्यक्ति केवल कलात्मक विशेषता या निपुणता के कारण नहीं है बल्कि एक नयी संवेदनशीलता एवं नए यथार्थबोध से व्युत्पन्न है।

आज की कहानी में अनेक अनुभवों का बल्कि जीवन के समस्त संदर्भों का[2] सामंजस्य एक ही बिन्दु पर दिखाई देता है। यही कारण है कि आज

---

१. (क) 'जन जीवन की बहुलता, सम्पर्क जन्य वास्तविक संवेदन इस प्रकार की कहानियों में नहीं है।"

—आधुनिक साहित्य : नन्ददुलारे वाजपेयी : पृ० २००।

(ख) "अब यह परम्परा अपने ह्रास की सीमा तक पहुँच गयी है।"

—प्रगतिशील साहित्य की समस्यायें : रामविलास शर्मा : पृ० १२९।

(ग) "यह कहानी की परम्परा भ्रष्ट प्रवृत्ति थी।"

—हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष : शिवदानसिंह चौहान : पृष्ठ १९०।

२. "विषय से विचार की ओर अग्रसर होने का मतलब है सामान्य से विशेष की ओर बढ़ना—ऐसे विशेष की ओर, जो नितान्त विशिष्ट

कहानी की विषयवस्तु को उसके केन्द्रीय विचार से अलग समझने की आवश्यकता का अनुभव किया जा रहा है। आज की कहानी में व्यक्त रागात्मक अनुभव भी बौद्धिक अनुभव की ही निष्पत्ति है। आज का कहानीलेखक जिस प्रक्रिया से अपने अनुभव की संश्लिष्टता की व्याप्ति को मानवीय सत्य की सीमा तक पहुंचा देता है, उसका अध्ययन कहानी की भावात्मक एवं रचनात्मक विशेषताओं को समझने में दूर तक सहायक हो सकता है। आज की कहानी में व्यक्त यथार्थ की पीड़ा का समाधान मानसिक जगत् या अवचेतन में निवास नहीं करता, बल्कि अधिक सचेत स्तर पर प्राप्त किए गए उसके अनुभव में निवास करता है जो निरन्तर तीव्रतर होता जाता है।[1] आज के कहानीकार के विषय-क्षेत्र विविध हैं पर इस समस्त विविधता में लेखक का व्यक्तित्व अनिवार्यतः बना रहता है।

जब हम आज की कहानी को इस दृष्टिक्रम में देखते हैं तो कहानी के रचनात्मक क्षेत्र में होने वाले नये प्रयोगों का वास्तविक महत्व समझ में आता है और कहानी के "नवीन" होने की आवश्यकता समझ में आती है। आज के कहानीलेखक के सामने प्रेमचन्द की उस स्वस्थ सामाजिक दृष्टि (विजन) को नवीन सन्दर्भ प्रदान करने का प्रश्न था जो बीच के समय में नष्ट हो चली थी। दूसरी ओर, आज के कहानीलेखक के सामने को हल्के एकरस रूमान से मुक्त करने का प्रश्न था और कहानी को उस गहन मनोविश्लेषण से पृथक् करने की आवश्यकता थी, जिसके फलस्वरूप कहानी स्नायविक रोगों का विश्लेषण बन कर रह जाती थी। इन्हीं आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कहानी को अपनी कलात्मक रचनाविधि में नयी विशेषताओं

जीवन-अनुभव होते हुए भी अपनी अर्थवत्ता के द्वारा जीवन के समस्त सन्दर्भ-देश को छू जाये।"

—हाशिए पर : नयी कहानियाँ : नवम्बर, १९६१ : पृ० १२९।

१. "द क्योर फार सफरिंग ह्विच, ऐज वी हैव सेड, इज द कोलाइजन आफ कान्शसनेस विद अनकान्शसनेस–इज नाट टु बी सबमर्ज्ड इन अनकान्शसनेस, बट टु बी रेज्ड टु कान्शसनेस ऐण्ड टु सफर मोर।"

—ट्रैजिक सेन्स आफ लाइफ एम— : दे० उनमुनो (अनु० जे० ई० क्राफोर्ड फिलच) : पृ० २८३।

को स्थान देना पड़ा। आकस्मिक नहीं है कि आज की कहानी ने "वस्तु" को अथवा "वक्तव्य" को अधिक-से-अधिक यथार्थग्राही बनाने के लिए कहीं कविता की वातावरण–निर्माण-क्षमता ग्रहण की है, तथा कहीं चित्र-कला की बिम्बवादी पद्धति ग्रहण की है और कहीं-कहीं दोनों ढंग की विशेषताओं का एक साथ उपयोग किया है।[1] आज की कहानी में भूमिका अलग से नहीं, कहानी में ही पायी जा सकती है।

आज की कहानी की कोई प्रत्यक्ष सीमा है तो बौद्धिकता का अतिरेक–जिसके कारण कहानी में दुरूहता आती है और कहानी का मूल गुण बाधित होता है, जिसे हम सहज सम्प्रेषणीयता कह सकते हैं। निस्सन्देह यथार्थ के प्रति आज के लेखक की दृष्टि भावनात्मक न होकर बौद्धिक है। परन्तु कहानी में जहाँ–तहाँ लक्षित होने वाली दुरूहता और अस्पष्टता के लिए यह पर्याप्त या सम्पूर्ण कारण नहीं है। दुरूहता के लिए सबसे अधिक आशंका वहाँ होती है जहाँ कहानीलेखक मौलिक होने की आकांक्षा से अनुभूति का सहज पथ छोड़ कर रहस्यपूर्ण चमत्कार और कौशल का उपयोग करने लगते हैं। राजेन्द्र यादव की एकाधिक कहानियों में यह आशंका सच होती हुई जान पड़ती है।[2] कहानी–लेखक को ऐसे प्रयोगों

---

१. "बाहर दिसम्बर की मुलायम धूप है। जब कभी दरवाजा खुलता है, धूप का एक साँवला-सा धब्बा खरगोश की तरह भागता हुआ घुस आता है, और जब तक दरवाजा दुबारा बन्द नहीं होता, वह पियानों के नीचे दुबका-सा बैठा रहता है।"

—निर्मल वर्मा : कहानी : मई, १९४९।

२. "राजेन्द्र यादव का लेखन बहुत उलझा हुआ होता है।..............अपनी कहानियों के द्वारा वह एक अतिरिक्त तीव्रता उत्पन्न करना चाहते हैं, फलतः कहीं वह कथानक में पेच डालते हैं तो कहीं भावनाओं के स्तर पर मानसिक गुत्थियाँ। लिहाजा, उनके चरित्र विचित्र हो उठते हैं और कहानी अवास्तविक। जिन्हें समस्या को धैर्य के साथ धीरे-धीरे सुलझाने की अपेक्षा परिश्रम से उलझाने में ही सुख मिलता है, उनकी कला की यही गति होती है।"

—नयी कहानी : सफलता और सार्थकता : डा० नामवरसिंह : कहानी विशेषांक : पृ० १४—१५

से बचना चाहिये जो उसके अनिवार्य प्रयोजन की सिद्धि में ही बाधक होते हैं। सांकेतिक, अर्थगर्भित भाषा, बिम्ब-विधान, प्रतीक-योजना आदि सभी विशेषताओं का उपयोग अन्ततः कहानी में जीवन–यथार्थ के किसी अनु-भूति-खण्ड के चित्रण की दिशा में ही होना चाहिए जिसमें पाठक को प्रभावित करने की स्वाभाविक क्षमता हो। आज की कहानी की श्रेष्ठता का निर्णय इसी दृष्टिकोण से किया जा सकता है कि क्या जिन संवेदनाओं तक पहले कहानीकार (उसके कथानक और चरित्र आदि) नहीं पहुंच पाता था उनकी अभिव्यक्ति आज की कहानी में प्राप्त की जा सकती है।

आज की कहानी का अध्ययन करते हुए हम असंदिग्ध रूप से अनुभव करते हैं कि आशय और अभिव्यक्ति–दोनों ही दिशाओं में आज प्रयोग किए जा रहे हैं पर इस प्रश्न की उपयोगिता सतत् रहेगी कि अन्ततः इन प्रयोगों की उपलब्धि कहानी या किसी भी साहित्य-रूप के लिए क्या है ? यदि आज की जटिल वास्तविकता की संवेदना को रूपायित करने के लिए ये प्रयोग कहानी में किए जा रहे हैं तो उनकी उपयोगिता स्वतः प्रमाणित है। निर्मल वर्मा की अत्यन्त प्रभावपूर्ण कहानी 'कुत्ते की मौत' इस दृष्टि से उल्लेख-योग्य कहानी है जिसमें रिंबो और मलार्मे जैसी सूक्ष्म प्रतीक-पद्धति का प्रयोग आशय और अभिव्यक्ति दोनों क्षेत्रों में किया गया है। कहानी के आरंभिक वातावरण [1] में ही यह विशेष अर्थवत्ता देखी जा सकती है जो आज की कहानी की रचना-प्रक्रिया को आधुनिक कविता की रचना–प्रक्रिया के निकट लाती है। यह कहानी वातावरण के समस्त तनाव की संवेदनात्मक प्रतिक्रिया को चित्रित करती है, इसकी प्रयोगशीलता की यही दिशा है। यही कारण है कि कहानी बीच में ही किसी विशेष बिन्दु पर समाप्त जान पड़ती है। [2] पर यदि प्रयोग

१–'फिर यह भी एक रात है। घर के हर प्राणी के कान ऊपर लगे हैं। एक टूटती मरमराती-सी चीख सुनाई देती है। सन्नाटा सिहर जाता है केवल पल भर के लिए। फिर सब पहले–सा शांत हो जाता है।'

–सारिका : नवम्बर ६२ : पृ० १२।

२–'...एक छोटा-सा दायरा है आलोक का, जो सड़क के लैम्प पोस्ट से कट कर यहां आ पड़ा है। मुन्नी की निगाह थिर है इस दायरे पर, जैसे उसका लूसी की पीड़ा से कोई आज्ञात सम्बन्ध रहा हो और कोई चुपके से सबकी आंख बचाकर उसे यहां छोड़ गया हो और अब वह किसी का नहीं है-एक

प्रयोग के लिए किए जा रहे हों, तो कहा जा सकता है कि कहानी उसके लिए उपयुक्त माध्यम नहीं है। जैसे 'सरलता' साहित्यिक श्रेष्ठता के लिए कारण नहीं हो सकती, उसी तरह दुरूह होने मात्र से कोई साहित्यिक कृति अश्रेष्ठ नहीं हो जाती। प्रेमचन्द-युग एवं उत्तर प्रेमचन्द-युग की कहानी के तुलनात्मक अध्ययन से हम इसी परिणाम पर पहुंचते हैं कि सरलता एक निरपेक्ष लक्षण है—वैसे ही, जैसे दुरूहता।[1] पर दुरूह अस्पष्टता 'रचना' में क्षम्य तभी है जब वह किन्हीं आँतरिक विवशताओं से उत्पन्न हो और 'रचनात्मक सार्थकता' की दृष्टि से उसका उपयोग किया गया हो।

घ—रचना-प्रक्रिया का वैशिष्ट्य

कहानी के विविध युगों की रचना–प्रक्रिया का यह तुलनात्मक अध्ययन आरम्भ करते समय हमारी जो धारणा थी, प्रस्तुत अध्ययन की इस तात्कालिक निष्पत्ति के प्रकाश में उसकी पुष्टि ही हुई है कि रचना-प्रक्रिया कोई जड़-यन्त्र नहीं है बल्कि वह रचनाकार के मानस की आन्तरिक संवेदना, उसके सामाजिक परिसर, तथा उसके कलात्मक अनुभवों से सम्बन्धित एक जागरूक रचनात्मक प्रक्रिया है जिसमें रचनाकार एक ही बिन्दु पर 'अपने' को पाता और देता है। यथार्थ हमारी आन्तरिक मनोदशाओं या बाह्य परिस्थितियों में कहां निवास करता है—इस प्रश्न के प्रति सजगता आज क्या पूर्व के और क्या पश्चिम के, सभी आधुनिक लेखकों में है। यह और बात है कि एक लेखक जीवन और यथार्थ को देखते हुए भी और उसे सम्पूर्ण भोगते हुए भी अपने रचनात्मक लेखन की सार्थकता मन की किसी संचेत्य दशा को अंकित कर लेने में ही मान लेता है,[2] और दूसरा रचनात्मक लेखन को जीवन और यथार्थ के

खोयी हुई रोशनी का ढेर या महज एक अन्तराल, जिसे लूसी की चीख किनारे पर फेंक कर पीछे मुड़ गयी है और वह वहाँ पड़ा रहेगा, जब तक दूसरी चीख फिर उमड़ कर उसे अपने में नहीं डुबो लेती···।'—सारिका नवम्बर ६२ : पृ० १२।

१—'···लिट्रेरी एक्सेलेन्स कैन नाट बी डिफाइन्ड इन टर्म्स आफ बर्ड्स दैट आर इन देमसेल्व्ज न्यूट्रल सिम्प्लीसिटी इज ओन्ली ए फैक्टर इन आर्ट ऐज इन वर्च्यू'

—सम्पादकीय, द टाइम्स लिट्रेरी सप्लिमेंट, जून ८, १९६२।

२—'लाइफ इज सोबरली ऐन्ड ऐक्यूरेट्ली द आड्स्ट अफेयर : हैज इन इट

जटिल अनुभवों की तीव्रतम पीड़ा से अपने को मुक्त करने का साधन मानता है ।[1]

रचना–प्रक्रिया की दृष्टि से 'कहानी' के विकास का अध्ययन करते हुए हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि प्रक्रिया 'रचना' की पीछे ही नहीं 'रचना' में भी होती है-कहीं सहज रूप में और कहीं अत्यन्त सूक्ष्म एवं जटिल रूप में । इसी अध्ययन के क्रम में हमने अनुभव किया कि रचना-प्रक्रिया का सम्बन्ध बहुत कुछ रचनाकार के दृष्टिबोध से होता है, जो समय और परिस्थिति के अनुसार बदलता रहता है । 'कहानी' का अध्ययन जब हम इस स्तर पर करना चाहते हैं, हमें इस बात की अनुभूति निरन्तर होती है कि रचना-प्रक्रिया का वैशिष्ट्य यही है कि वह रचना-पद्धति या रचना-विधि का पर्याय नहीं है, वह एक जागरूक अनुभव व्यापार है, जिससे रचनाकर्ता को कहानी लिखते हुए परिचित होना पड़ता है, पाठक को कहानी पढ़ते हुए तथा समीक्षक को कहानी की साहित्यिक श्रेष्ठता का मूल्याँकन करते हुए ।

आधुनिक कहानीकार 'रचना' से आगे आकर 'जीवन' को ही एक प्रक्रिया मानता है, यह स्थिति हमारी समझ में आकस्मिक नहीं है । यही कारण है कि 'तीस मिनट' के सीमित काल-खंड की कहानी में हमें एक सम्पूर्ण जीवनानुभव की प्रतीति होती है । रचना–प्रक्रिया के दृष्टिकोण से कहानी साहित्य की ऐतिहासिक उपलब्धियों का अध्ययन करना हमें इसी दृष्टि से उपयोगी जान पड़ा कि इसके माध्यम से 'कहानी' के वे मूल्य प्रकाशित हो उठते

द एसेन्स आफ रियलिटी···बट बाइ राइटिंग आइ डोन्ट रीच एनीथिंग आल आइ मीन टु मेक इज ए नोट आफ ए क्यूरियस स्टेट आफ माइन्ड'

—ए राइटर्स डायरी : बर्जीनियां बुल्फ : पृ० १०१ ।

१८–'हर बात पर हमारे मन में कुछ चिन्ताएं चला करती हैं । वे या तो खर्च होती रहती हैं नहीं तो जमा होती रहती हैं । उस व्यक्ति के भीतर के अनिवार्य रूप से जमा होती है, जिसे उन्हें अपने से बाहर खर्च डालने का सुभीता नहीं है ।

संचित होते-होते वे उनमें क्लेश तक उपजाती हैं । व्यक्ति उनके बोझ से त्रास पाता है । उस त्रास से छुट्टी तो मिलनी चाहिए । नहीं तो वह त्रास आत्मा को दबाए रहता है ।

लिखना भी जाने-अनजाने इस त्रास से छुटकारा पाने की एक युक्ति है ।'

—साहित्य का श्रेय और प्रेय—जैनेन्द—पृ० २८६–८७ ।

हैं, जिन्हें हम कथानक, चरित्र और वातावरण की स्थूल शास्त्रीय परीक्षा करते हुए प्रायः छोड़ देते हैं । आज आवश्यकता इस प्रश्न को शास्त्रीय आधार देने की है । हमारा यह सीमित प्रयत्न इस आवश्यकता की पूर्ति नहीं है, केवल इसकी ओर विद्वानों काध्यान आकृष्ट करने की विनम्र भूमिका है । कहानी में रचना-प्रक्रिया की चेतना के विकास की स्थिति पर निरन्तर विचार करने की आवश्यकता व्यावहारिक और सैद्धान्तिक दोनों ही कारणों से बनी हुई है । प्रस्तुत अध्याय के परिशिष्ट में हमने इस ओर पृथक रूप से संकेत किया है ।

ड—यथार्थ की प्रतिष्ठा

यथार्थ के गहरे बोध ने कहानी की विषयवस्तु और उसके रूपात्मक विधान को कितना अधिक बदल दिया है, यह आधुनिक हिन्दी-कहानी के अध्ययन से प्रत्यक्ष है । कहा जा सकता है कि यथार्थ के समीप आकर ही कहानी 'नवीन' या 'आधुनिक' होती है या हो सकी है । पर, ध्यान देने की बात यह है कि कहानी में व्यक्त होने वाला यह यथार्थबोध विज्ञान का सत्यान्वेषण नहीं है ।[1] यह यथार्थ-बोध अनुभूतिपरक है जो हमें कहानी में व्यक्त मानवीय परिस्थिति के ठीक सामने रख देता है । यह यथार्थ बोध वह अनुभव है जो विशेष मानवीय परिस्थिति में लक्षित होने वाले सम्बन्धों को ठीक-ठीक समझने की दृष्टि देता है । कहानी के क्रमिक–विकास के तुलनात्मक अध्ययन के फलस्वरूप हम यह समझने में समर्थ हो पाते हैं कि जीवन के यथार्थ की व्यापक पकड़ 'कहानी' के अभीष्ट प्रभाव को कितना अधिक अर्थपूर्ण बना देती हैं । अधिक संवेदनशील कहानीकार के लिए यथार्थ का कहानी में रूपान्तरण एक सविशेष प्रक्रिया है । यथार्थ की कहानी गहरी अनुभूति उसकी रागात्क संवेदनाओं को निरन्तर परिष्कृत करती रहती है और समसामयिक जीवन सन्दर्भों को एक विस्तृत ऐतिहासिक परिदृश्य के बीच देख सकने के लिए अपेक्षित चेतना

१९—'विषय को जानने का काम करता है विज्ञान । उस 'जानने' से अपने व्यक्तित्व को पृथक रखने की साधना ही है विज्ञान की । मनुष्य का अपने आपको देखने का जो काम है उस काम को करता है साहित्य । उसकी सत्यता मनुष्य की अपनी अनुभूति उपलब्धि में है, विषय के यथार्थ में नहीं ।'–साहित्य के पथ पर : प्रस्तावना

: (रवीन्द्रनाथ ठाकुर) : (रवीन्द्र साहित्य : भाग २४) : पृ० ३ ।

प्रदान करती है। समय और सभ्यता के विकास के साथ यथार्थ की यह अनुभूति, संवेदना और चेतना, कला और साहित्य–सृजन की प्रक्रिया को कितनी दूर तक प्रभावित कर सकती है, आधुनिक हिन्दी–कहानी में (प्राचीन कहानी की तुलना में) इसका उदाहरण प्रस्तुत है। आधुनिक कहानीकार के लिए कहानी अभिव्यक्ति होती है, मात्र घटना नहीं।[1] हम अनुभव करते हैं कि यथार्थ की भीतरी अनुभूति जिन कहानियों में अधिक गहरी होती है, उनके चरित्रों को एक ही साथ अनुभव के विविध स्तरों पर जीना पड़ता है। ऐसी कहानियों में ऊपर से देखने पर एक उलझाव (काम्प्लिकेशन) तो लक्षित हो सकता है, परन्तु भीतर से देखने पर कथानक में नयी अर्थवत्ता एवं नये परिपार्श्वों का उद्घाटन होता है।

कुछ आलोचकों की यह धारणा कि यथार्थ की भूमि जीवन के लम्बे संघर्षों में ही सीमित है अत्यन्त भ्रामक है और साहित्य–सृजन एवं उसके मूल्यांकन की अनेक समस्याओं को भ्रामक दिशा देने वाली है। "कहानी" के विकास-स्तरों से परिचित पाठक के लिए इस सत्य की अनुभूति प्राप्त करना कठिन नहीं है कि यथार्थ जीवन के संघर्षक्षणों में ही नहीं सीमित है–वह समस्त जीवन में निवास करता है अतः एक युग का भी यथार्थ हो सकता है और एक क्षण का भी[2] तथा, वे क्षण प्रेम के भी हो सकते हैं और प्रेम–जनित दुःख के भी सुख के भी हो सकते हैं और ईर्ष्या के भी। यहां क्षण को निरपेक्ष मानना आवश्यक नहीं है। सागां की लम्बी कहानी "ए सरटेन स्पाइल" की नायिका अपने प्रेम सम्बन्धों के बीच एक दिन अचानक ही इस प्रसन्न कल्पना से सम्पृक्त हो उठती है कि एक दिन वह जीवित नहीं होगी.........

१– 'कहानी अभिव्यक्ति होती है, घटना मात्र नहीं। आज की कहानी, फार्मूला या सोद्देश्य कहानी-कला से आगे बढ़ चुकी है।...साहित्य, स्वयं एक मूल्य होता है क्योंकि उसमें जीवन परिलक्षित होता है।'
—तथापि : (निवेदन) : नरेश मेहता : प्रथम, संस्करण, दिसम्बर १९६१ : पृ० १।

२– "इकाई का जीवन एक इकाई का जीवन ही नहीं होता, एक समाज और एक समय के जीवन की प्रतिध्वनि भी उसमें सुनी जा सकती है।"
—कहानी : नये संदर्भों की खोज : एक और जिन्दगी
मोहन राकेश : पृ० १४। (प्र० सं० दिसम्बर, १९६१)।

उसके हाथ "क्रोमियम रिम" को छू नहीं सकेंगे और न ही उसकी आंखों में सूरज की चमक होगी।[1] इस स्थल को उदाहरण मानकर कहा जा सकता है कि इस कहानी की नायिका के जीवन का यह विशेष यथार्थबोध अधिक भावात्मक आवेश का परिचायक है पर इसे अ–यथार्थ मानने का कोई कारण कहानी में उपलब्ध नहीं है और यह नहीं माना जा सकता कि यह अनुभूति निरपेक्ष–क्षण की है क्योंकि अन्ततः क्षण समय के प्रवाह की निरन्तरता का ही अंश है। विकास-काल की कहानियों के अध्ययन से प्रत्यक्ष है कि लेखक के लिए यथार्थ की चेतना, अनिवार्य रूप से शुद्ध वर्तमान की चेतना नहीं है। कोई भी परिस्थिति, समय के व्यापक परिदृश्य से, लेखक द्वारा चुनी जा सकती है और उसकी अनुभूति-यथार्थता का अंग बन सकती है। जिन कहानियों में वर्तमान की निष्प्रयोजनता व्यंजित की जाती है, उनमें भी वर्तमान की सम्पूर्ण चेतना सजीव हो सकती है और जिन कहानियों में वर्तमान के सभी ब्यौरे संकलित कर दिये गए हों उनमें यथार्थ की प्रतिमा (इमेज) का निर्माण तक दुर्लभ हो सकता है—इसके अनेक प्रमाण हिन्दी–कहानी में उपलब्ध हैं। नरेश–मेहता की कहानी "तथापि" पहले प्रकार की कहानी है जिसमें पारुल ने "वर्तमान" को प्रयोजनहीन कहा है।[2] इस कहानी में जो स्थिति वर्तमान से पलायन की है वही उसकी यथार्थता को अधिक सूक्ष्म और अर्थपूर्ण बना देती है, यह इस कहानी के अध्ययन से प्रत्यक्ष है।

आधुनिक कहानी यथार्थबोध की जटिलतम समस्याओं से निरन्तर अनुप्राणित है और उसके अनुसार कहानी के कलात्मक विधान में पर्याप्त गति-शीलता भी दिखाई देती है पर कहानी को यथार्थ के अति–बौद्धिकीकरण से

१– ए सरहेन स्माइल : सागां : पृ० ९।

२– (क) "चाहा था, सम्पूर्ण-स्वत्व से चाहा था विपिन ! गंज में वह चौधरी की दूकान के पास, बाद में भाभी ने मजाक भी किया था किन्तु विपिन बाबू ! हम अनागत बनकर ही रह सकते हैं, विगत कदापि नहीं ! कदापि नहीं ! कदापि नहीं !! और वर्तमान तो असंगति की खेखल है, निष्प्र-योजनहीन !!" —तथापि (नरेश मेहता) —पृ० ११८।

(ख) "हम न तो आज़ के पूर्व कभी थे ही, न हैं ही, कारण कि हमें तो होना है। यह होना ही हमारी संगति है, श्रृंखला है।"

—वही, पृ० ११८।

बचना चाहिए क्योंकि वह रसग्राहिता में बाधक हो सकता है। यह स्थिति शुभ है कि कहानीकार भी इस समस्या से अनभिज्ञ या अपरिचित नहीं हैं।[1]

स्वातंत्र्योत्तर कहानी के यथार्थबोध पर पृथक् रूप से विचार करने से ज्ञात होता है कि इस बीच कहानीकार अपने परिवेश की समस्याओं के प्रति विशेष जागरूक है। जनतांत्रिक व्यवस्था की प्रतिष्ठा के बाद जनजीवन में जो परिवर्तन आते हुए दिखाई देते हैं, उनकी सम्यक् चेतना अमृतराय, अमरकान्त और मार्कण्डेय की कहानियों में दिखाई पड़ती है। जिन कहानियों में अर्थपूर्ण मनोवैज्ञानिक चित्रण है उनका भी आरम्भ अत्यन्त सहज और यथा-तथ्य वर्णन से होता है।[2] अनावश्यक अलंकृति से हट कर आज की कहानी यथार्थ चेतना के सभी सूक्ष्म स्तरों को एक सहज भूमि पर उपलब्ध करना चाहती है। आज के कहानीकारों ने यथार्थ के नानाविध पक्षों का उद्घाटन किया है, जिनके प्रति प्रायः हम उदासीन रहा करते थे।

व्यक्ति और परिवेश का संघर्ष चेतन तथा उपचेतन मानसिक स्तरों को जिस सीमा तक प्रभावित करता है, उसका प्रभाव आज की कहानी में प्रत्यक्ष है। इन सभी मानसिक स्तरों को यथार्थ संवेद्य बनाने का प्रयत्न आज की कहानी की रचनात्मक संभावनाओं को निःसंदिग्ध रूप से आगे बढ़ाता है। इस यथार्थ संवेद्यता के अनुरूप भाषा-संस्कार का अभाव कुछ कहानीकारों की रचनात्मक कृतियों में खटकता है पर उसे देखते हुये निराश होने का कोई कारण नहीं दिखाई देता। निजी जीवन की अस्थिरता के कारण कुछ कहानीकारों की यथार्थ संवेद्यता में असंगति का बोध भी होता

१– "मैं बार-बार सोचता हूँ कि हमारा साहित्य, हमारा सम्पूर्ण कला-कृतित्व यथार्थ के इस बौद्धिकीकरण से आक्रान्त है। यथार्थ को यथार्थवत् ग्रहण कर सकने की हमारी क्षमता को वह कुंठित कर रहा है।"

—आत्मनेपद : अज्ञेय : पृ० १३८।

२– "बड़े जोर की तपन है, हरियरी का कहीं नाम न जस। बस आम महुओं के सिर पर, टोपी-नुमा, थोड़े हरे पत्ते बच रहे हैं। रास्ते भर जैसे किसी ने भाड़ का बालू बिछा दिया हो। तीन मेल की इस खेतार में एक भी बाग नहीं—एक भी छायादार पेड़ नहीं।"

—नौ सौ रुपये और एक ऊँट दाना : महुए का पेड़

मार्कण्डेय : पृ० ३२।

है। व्यक्तित्व में गठन का अभाव और सामाजिक-मनोवैज्ञानिक रूढ़ि कुछ कहानीकारों की यथार्थ संवेद्यता को सम्पूर्ण अभिव्यक्त नहीं होने देती। पर आज की कहानी की रचनात्मक-विकाश-प्रक्रिया को देखते हुये इन सीमाओं से चिन्तित होने का कोई कारण नहीं है। आज की श्रेष्ठ कहानियों की रचना-प्रक्रिया को आकलन करने से ज्ञात होता है कि उनकी यथार्थसंवेद्यता आत्मचेतना या आत्मानुभूति से प्रत्युत्पन्न है। भीष्म साहनी की कहानी "बात की बात" [1] के बसारवा सिंह, शिवप्रसाद सिंह की कहानी "आँखें" [2] की "गुलाबो", निर्मल वर्मा की कहानी "तीसरा गवाह" [3] की नीरजा-आदि चरित्रों का निर्माण यथार्थ संवेद्यता के विभिन्न स्तरों का उद्‌घाटन करता है–पर इन कहानियों में भी निर्मल वर्मा की कहानी की यथार्थ संवेद्यता अधिक गहन और तीव्र है क्योंकि वह आत्मचेतना पर ही आधारित है। प्रेम और सहानुभूति के होते हुए भी कोर्ट रूम में बिताए हुए दस मिनट नीरजा के निर्णय को एकदम बदल देते हैं– [4] इस निर्णय परिवर्तन की प्रक्रिया यथार्थ की जितनी गहरी संवेद्यता का उद्‌घाटन करती है उस पर विचार करने से कहानी का रचनात्मक अर्थ हमारे लिये और भी महत्वपूर्ण हो जाता है।

आज के कहानीकार का यथार्थबोध सभ्यता के खोखलेपन को समूचे प्रभाव के साथ व्यक्त कर देता है और मानवीय सम्बन्धों को झुठलाने वाली सभ्यता पर गहरा व्यंग करता है। शेखर जोशी की कहानी "दाज्यू" [5] इस धरातल की महत्वपूर्ण कहानी है जिसमें "बिम्ब" "विचार" में और "विचार"

१– नयी कहानियाँ : फरवरी १९६१ : पृ० ३३।

२– वही, पृ० ३।

३– कल्पना : मार्च १९५८ : पृ० २५।

४– "किन्तु उसी क्षण मुझे लगा मानो नीरजा के भीतर उन चंद मिनटों में एक अजीब सा परिवर्तन आ गया था, और मुझे एक बहुत पुरानी बात याद हो आयी–कोई भूला–भटका–सा क्षण आता है जब मन फैसला कर लेता है। हर छोटा–सा फैसला एक लम्बी राह तक घिसटता रहता है और जिन्दगी खत्म हो जाती है।"

–तीसरा गवाह : निर्मल वर्मा : कल्पना : मार्च, १९५८ : पृ० ३७।

५– दाज्यू : कोसी का घटवार : शेखर जोशी : पृ० ११।

"व्यंग्य" में बदल जाता है। "दाज्यू" सम्बोधन इस कहानी में एक प्रतीक है जिसके द्वारा पहाड़ी बाय "अपने छूटे हुए गांव के अतीत, ऊँची पहाड़ियों, नदियों, ईजा (मां)..........बाबा..........दीदी........भुलि (छोटी बहन) ....दाज्यू (बड़ा भाई)"[1] –सबको पा लेना चाहता है पर नागरिक संस्कृति उसे इस काल्पनिक प्राप्ति से भी वंचित रखती है। व्यंग्य की निर्मम सत्यता आज की कहानी की महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

आंचलिकता का प्रश्न

ग्राम–कथानकों का उपयोग करते हुए कहानियाँ लिखी जा रही हैं– आधुनिक कहानी के विकास की दिशा को देखते हुए यह स्वाभाविक ही है। आँचलिकता का आग्रह करते हुये कहानियों की रचना करने वाले लेखकों की संख्या, आज के कहानीलेखकों के बीच कम नहीं है। इस दृष्टि से आँचलिकता के इस नये आग्रह का औचित्य समझ लेना आवश्यक है क्योंकि आँचलिकता–वादी लेखकों के अनुसार, आँचलिकता : एक विशेष प्रवृत्ति है। यथार्थ–बोध की चेतना से ही व्युत्पन्न है।

हिन्दी कथा-साहित्य की नयी विकास-धाराओं के ऐतिहासिक विकास क्रम को देखने से ज्ञात होता है कि आञ्चलिकता का आग्रह गत् एक दशक में ही रचनात्मक धर्म का अंग बन पाया है। ग्रामकथा का आधुनिक उपयोग करते हुए पहले नागार्जुन ने "बलचनमा" जैसी कृतियाँ लिखी थीं। उन कृतियों को "आञ्चलिक" नहीं कहा गया था। आगे, जब फणीश्वरनाथ रेणु "मैला आञ्चल" नामक उपन्यास के साथ आधुनिक कथासाहित्य के पाठकों के समक्ष आए तो विशेष अञ्चल "पूर्णिमा" की कथा पर आधारित इस उपन्यास को हिन्दी का पहला आन्चलिक उपन्यास कहा गया। इस अन्तर को ध्यान में रखने से सहज ही माना जा सकता है कि आञ्चलिकता के साध्य तत्व हैं : विशेष जनपद की संस्कृति का चित्रण आस्था, रूढ़ि, सन्देह, अन्धविश्वास का यथातथ्य अङ्कन, लोक जीवन, गीति-नृत्य, लोक-भाषा, मुहावरे का उपयोग आदि। अर्थात् ग्राम-कथानकों पर आधारित कहानियों में यदि ये तत्व साधन न होकर साध्य हों तभी उन्हें "आञ्चलिक" की संज्ञा दी जा सकती है।

---

१. दाज्यू : कोसी का घटवार : शेखर जोशी : पृ० १३।

हमारी दृष्टि में "आञ्चलिकता" अपने आप में स्वस्थ प्रवृत्ति है पर तभी तक जब तक उसका उपयोग कहानी की सामग्री की निर्माण प्रक्रिया में साधन-रूप में किया जाय। उसे लक्ष्य मान लेने से कई प्रकार की भ्रान्तियों को प्रश्रय मिलता है। यदि आञ्चलिक कहानीकार (जिनमें रेणु और शेखर जोशी आदि के नाम विशेष उल्लेख्य हैं) विशेष अञ्चल के जीवन की वास्तविकता को समझने का और राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक परिवर्तनों के सन्दर्भ में इस वास्तविकता के विविध पक्षों का विश्लेषण करते हुए उसके प्रकाश में अपनी रचना-प्रक्रिया का विकास करते हैं तो उनकी सम्भावनायें अपरिसीम हैं। आञ्चलिक कहानीकारों के समक्ष प्रश्न विशेष "अञ्चल" का नहीं, विशेष ग्रहणशीलता का होना चाहिये, जिसके लिये जीवन का कोई पक्ष, वास्तविक अनुभव का कोई परिप्रेक्ष्य समानतः स्वीकार्य और महत्वपूर्ण है।

आञ्चलिकता कहानी के पाठकों के लिए समस्या तब बनती है जब आञ्चलिक कहानीकार आञ्चलिकता के अतिरिक्त आग्रह में पड़ कर ऐसे शब्दों और मुहावरों का अतिशय व्यवहार करने लगते हैं जो विशेष अञ्चल में ही बोले-समझे जाते हैं। इस पक्ष में कहा जाता है कि भाषा लेखक की नहीं, चरित्रों की होती है अतः कहानीकार यदि विशेष अञ्चल के कथानक का उपयोग करते हैं तो वह वहाँ के चरित्रों को कृत्रिम भाषा किस प्रकार दे सकता है। विचार करने से लगेगा, कि इस तर्क में औचित्य भी है। हमारी दृष्टि में कहानीकार यदि हिन्दी के बड़े पाठक वर्ग के लिए कहानियाँ लिखता है तो उसे भाषा के स्थानीय रंग का उपयोग करते हुये भी अञ्चलों में सीमित भाषा के अतिरिक्त मोह से बचना चाहिए या अधिक से अधिक ऐसे व्यञ्जक शब्दों का व्यवहार करना चाहिये जो स्वतः सम्प्रेषित होने की सामर्थ्य रखते हों।

आज के आञ्चलिक कहानीकारों के बीच फणीश्वरनाथ "रेणु" का व्यक्तित्व सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। पिछले एक दशक के ही रचनात्मक प्रयत्नों द्वारा "रेणु" ने रचनात्मक समस्याओं के साक्षात्कार में विशेष प्रतिभा और क्षमता का परिचय दिया है। "रेणु" ने आञ्चलिक कहानी को मानसिक समस्याओं के गहन विश्लेषण के लिए भी सक्षम माध्यम बनाया है, इस दृष्टि से उनकी उपलब्धि विचारणीय है। एकाधिक कहानियों में, एक ही विशेष मुहूर्त को विभिन्न परिवेश में रखकर "रूपायित" [1] करने के प्रयत्न

---

१. स्वरलिपि : ठुमरी : फणीश्वरनाथ रेणु।

में ही रेणु ने अपनी रचनात्मक चेतना का उपयोग किया है। "तीसरी कसम अर्थात् मारे गये गुलफाम"—इस कहानी की रचना-प्रक्रिया के अध्ययन से ज्ञात होता है कि रेणु ने इतिहास और समय के आघात का अनुभव करने वाले मनुष्य को विशेष अञ्चल के बीच से उद्घाटित करना चाहा। इस कहानी का "गाड़ीवान हिरामन" विशेष मनुष्य है—आधुनिकता का बोध उसमें उतना ही सजीव है जितना निर्मल वर्मा या मोहन राकेश के कथानकों में। इस कहानी के आरम्भ में संकेत है कि हिरामन ने संकट क्षण में पड़कर दो कसमें खायी थीं। "एक चोर बाजारी का माल नहीं लादेंगे। दूसरी—बाँस। अपने हर भाड़ेदार से पहले ही पूछ लेता है–चोरी-चमारी वाली चीज तो नहीं ? और बांस ? बांस लादने के लिये पचास रुपये भी दे कोई, हिरामन की गाड़ी नहीं मिलेगी। दूसरी गाड़ी देखे।"—अब हिरामन गाड़ी ले जा रहा था तो उसकी गाड़ी में हीराबाई बैठी थी। आश्चर्य में था कि "मथुरा मोहन नाटक कम्पनी में लैला बनने वाली हीराबाई को वह नहीं जानता था। अब हीराबाई को गाड़ी में ले जा रहा था तो कभी उसे लगता कि "चम्पा का फूल" उसकी गाड़ी में खिल–खिल पड़ता था, कभी चाँदनी का एक टुकड़ा उसकी गाढ़ी में आ जाता था और हिरामन को यह सब कुछ "रहस्यमय-अजगुत-अजगुत" लग रहा था। [1] कहानी की समाप्ति हिरामन की "तीसरी कसम" से होती है : "मरे हुये महूर्तों की गूँगी आवाजें मुखर होना चाहती हैं। हिरामन के होंठ हिल रहे हैं। शायद वह तीसरी कसम खा रहा है—कम्पनी की औरत की लदनी..........।" [2] हिरामन की पीड़ा व्यक्ति के विछोह की पीड़ा नहीं है, एक आत्मीय सम्बन्ध के विछोह की पीड़ा है, जिसका निर्माण एक आकस्मिक परिस्थिति में हुआ था, पर सनातन जान पड़ता था। इस कहानी की रचना-प्रक्रिया को देखते हुए यह मानने का कोई कारण नहीं दिखाई देता कि रचना-प्रक्रिया की सम्यक् चेतना का विकास नगर की समस्याओं पर लिखी गयी कहानियों में ही हो सका है। पर, इसी दृष्टि से हम पुनः कहेंगे कि प्रश्न विशेष अंचल का नहीं, विशेष ग्रहणशीलता का ही है। अपनी ही एक कहानी "तीन बिंदियां" के एक चरित्र गीतालीदास की भाँति रेणु की रचना-प्रक्रिया उनकी अन्तरंगता में उत्पन्न होने वाले सहायक "नाद" [3]

१— ठुमरी : फणीश्वरनाथ रेणु : पृ० १३२।

२— वही, पृ० १६५।

३— "..........सहायक नाद ! जिसको ओवर टोन कहते हैं। नाद कभी

को उपलब्ध करना चाहती है। गीतालीदास की ही भांति "रेणु" की रचना-प्रक्रिया ने "रचना" की सीमा को विस्तृत कर लिया है। इस प्रक्रिया में 'राग' एकाधबार अस्पष्टतर भी हुये हैं। यह स्थिति आज की कहानी की समस्त रचनात्मक-प्रक्रिया की है। "रेणु" की कहानियों की भाँति आज की अधिसंख्य कहानियां "ठुमरी-धर्मा" हैं, क्योंकि उनका अन्तर्मार्ग एक ही है।

आँचलिकता की उपर्युक्त विशिष्ट उपलब्धि को ध्यान में रखते हुए हम निवेदन करेंगे कि रचनाकार का वास्तव-बोध उसके मानसिक तनाव और उसकी रचनात्मक व्याकुल अनुभूति की एकाग्रता द्वारा ही "रचना" में व्यक्त होता हैं। अतः "रचना" की सत्यता और आधुनिकता की परीक्षा इसी आधार पर की जानी चाहिए तो ऐतिहासिक पूर्वग्रहों से आगे आने पर ही संभव है।

ङ— अन्य विशेषताएँ

सांकेतिकता

प्राचीन और नवीन कहानी के तुलात्मक अध्ययन के आधार पर हम मान सकते हैं कि प्राचीन कहानी से आधुनिक कहानी की विशिष्टता बहुत कुछ इस पर निर्भर करती है कि किस सीमा तक उसमें साँकेतिकता का विस्तार पहले से भिन्न स्तरों पर हो पाता है। इस अर्थपूर्ण साँकेतिकता का सही उपयोग वे ही कहानीकार कर पाते हैं जिन्हें कहानी में व्यक्त कथानक, चरित्र संवेदना और वातावरण के भीतरी सम्बन्धों की सही पहचान होती है।

सांकेतिकता के विभिन्न स्तरों का विकास—आज की हिन्दी-कहानी की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। पर, यह सोचना किसी सीमा तक भ्रमपूर्ण है कि इस साँकेतिकता का उदय पिछले दशक के कहानीकारों के कृतित्व के प्रकाश में आने से हुआ। प्रसाद और प्रेमचन्द ने बहुत पहले कहानी के लिए साँकेतिकता की सार्थकता पर बल दिया था। प्रेमचन्द के वक्तव्यों और उनकी विकास कालीन कहानियों में तथा प्रसाद की विकासकालीन कहानियों में इसके

अकेला उत्पन्न नहीं होता। उसके साथ-साथ अन्य नादों का भी जन्म होता है। उस स्वर को हम सुन पायें अथवा नहीं, मूल नाद से उत्पन्न होने वाले इन नादों को सहायक नाद कहा जाता है।"

—तीन बिंदियां : ठुमरी : रेणु ? पृ० १८६-८८।

प्रमाण उपस्थित हैं। "पूस की रात" और "कफन", "पुरस्कार" और "आकाशदीप" तथा "उसने कहा था"–साँकेतिक अर्थवत्ता का श्रेष्ठ उपयोग प्रस्तुत करने वाली कहानियाँ हैं। इसी दृष्टि से वे आधुनिक कहानियां हैं–अज्ञेय और यशपाल की कहानियों की तुलना में भी।

निश्चय ही आज की कहानी में सांकेतिकता का अधिक सूक्ष्म उपयोग किया जा रहा है और यह कथन युक्तिपूर्ण है कि आज की कहानी संकेत करती नहीं, बल्कि संकेत है।[1] पर ऐसी कहानियाँ जो संकेत करती न हों, संकेत हों, बहुत कम हैं। अधिकतर कहानियाँ रचनात्मक से अधिक चमत्कारपूर्ण सम्बन्धों की सृष्टि में ही अपने प्रयत्न की सीमा समझती जान पड़ती हैं।

"कहानी" में व्यक्त सांकेतिकता का मूल्यांकन करते हुए इस प्रश्न पर भी विचार करना उचित है कि साँकेतिक होने के प्रयत्न में कोई कहानी अतिशय दुर्बोध तो नह　गयी! "कविता" में व्यक्त दुरूह साँकेतिकता के पक्षधरों का कहना है कि आज की कविता विशेष भावक–वर्ग के लिए है। पर "कहानी" में साँकेतिकता के सूक्ष्म उपयोग के पक्षधर भी संभवतः मानते होंगे, कि "कहानी" न तो विशेष भावक–वर्ग के लिए थी, न उसका होना आवश्यक और उचित है। संकेत कहानी में हों, तो ऐसे हों जो "कहानी" के मर्म को एक अपूर्व लाक्षणिकता की युक्ति से व्यंजित कर दें। साँकेतिकता उचित उद्देश्य से कहानी में हो, तो लेखक अनावश्यक वर्णनात्मकता से बच सकता है और पाठक के समक्ष कहानी का मर्म अनायास ही दीप्त हो सकता है। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की नयी कहानी "सूटकेस"[2] सांकेतिकता के श्रेष्ठ और सार्थक उपयोग का उदाहरण है। जिस "सूटकेस" को पिता आत्मीय, सहचर, बन्धु, सखा सब कुछ मानता आया, उसे "बिटिया" अपने खिलौने

१— नयी कहानी : नये प्रश्न : ले० नामवर सिंह : कहानी : जनवरी १९५९।

२— "अभी कल बिटिया के सामने वह सूटकेस रखते हुए मैंने कहा–
"बेटे इसमें तुम अपने खिलौने रखो"
"नहीं पापा यह गन्दा है", उसने तुरन्त बेधड़क कहा। और उसकी ओर आँख उठा कर देखने से भी अस्वीकार कर दिया।.........मैं सोचने लगा कितनी आसानी से उसने वह कर दिखाया जो मैं आज तक नहीं कर सका था।"
　　—सूटकेस : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना : धर्मयुग : ४ नवम्बर १९६२।

रखने के लिए अनुपयुक्त पाकर देखती तक नहीं और वह कर दिखाती है जो पिता आज तक नहीं कर सका था।

साँकेतिक अर्थवत्ता से युक्त होने पर ही, आज की कहानी सीधी चेतना तथा अनुभूति के गहरे स्तरो को छूने में समर्थ हो सकी है। आज के कहानीकार के व्यक्ति–मन और परिवेश में जो विरोध भी है उसे संकेतों द्वारा ही व्यक्त किया जा सकता है। आज की कहानी सौन्दर्यानुभूति के उस स्तर की कहानी है जिसमें रचनाकार 'बन्द कमरे की खिड़की से आते हुए आलोक को देखकर अपनी संवेदना के सहारे ही' मूर्त कर लेता है। राजेन्द्र यादव की कहानी 'प्रतीक्षा'[1] में हम पाते हैं कि लेखक नन्दा को बीच में लाकर स्वयं ओट हो जाता है और गीता के मन में निहित यौन–कुंठाओं के सारे स्तर नन्दा के प्रति उसकी मानसिक आसक्ति और व्याकुलता के संकेतों द्वारा उद्घाटित कर देता है। यह विशेषता आज की सभी श्रेष्ठ कहानियों में देखी जा सकती है कि रचनाकार शब्दों को अर्थबद्ध तर्क–संगति में सीमित करने के स्थान पर उनकी गति को विशेष 'संकेत' की दिशा में मोड़ कर स्वयं तटस्थ हो जाय। 'प्रतीक्षा' कहानी में यह देखकर कि नन्दा और हर्ष के उन्मुक्त प्रेम व्यवहार और तन्मय विसर्जन को देखकर गीता के मन में ईर्ष्या नहीं, गहरी तृप्ति का अनुभव होता है, गीता के मन की अधिक गहरी यौन–कुंठा का परिचय प्राप्त होता है। गीता, नन्दा के प्रति अपनी ईर्ष्या को दमित रखती है, इसके दो कारणों का संकेत कहानी में ही छिपा हुआ है। एक तो गीता, नन्दा को उसकी सम्पूर्णता में प्यार करती है (उसकी व्यावहारिक प्रतिक्रियाओं में ही यह संकेत निहित है), दूसरे ईर्ष्या व्यक्त करके वह नन्दा को खोना नहीं चाहती। इस कहानी की साँकेतिकता का सबसे बड़ा आधार तो यही है कि नन्दा का चरित्र गीता के चरित्र की कुंठाओं के चित्रण के लिए साधन है, माध्यम है। 'तब गीता को लगा कि यह उसकी छाती पर सिर रखे नन्दा नहीं, स्वयं उसके भीतर से कोई बोल रहा है।' इस एक वाक्य में कहानी का सांकेतिक प्रयोजन प्रत्यक्ष हो उठा है।

प्रश्न यह है कि नन्दा को ही रचनाकार ने गीता की यौन कुंठाओं की अभिव्यक्ति का साधन क्यों चुना। नन्दा और गीता के परस्पर प्रेमोन्मत

१–नयी कहानियाँ : दीपावली विशेषाँक १९६२।

-व्यवहार-प्रतिक्रियाओं[1] में ही इसका मनोवैज्ञानिक संकेत है। मनोवैज्ञानिकता के आवेश या उत्साह में इस कहानी के समलिंगी प्रेम की कहानी मान लिए जाने की आशंका भी है, पर कहानी के मनोवैज्ञानिक संकेत पर ध्यान देने से यह आशंका अपने–आप दूर हो जाती है।

सांकेतिकता आज की कहानी की सूक्ष्म रचना–प्रक्रिया के प्रति पाठक को 'पर्यत्सुक' बनाती है–यही उसका वैशिष्ट्य है । आज की श्रेष्ठ साँकेतिक कहानियों में एक ऐसी वस्तुभेदी दृष्टि दिखाई देती है जो 'वस्तु' को ही नहीं उसकी प्रतिक्रियाओं को भी मूल स्रोत तक जाकर देखने की तीव्र प्रेरणा देती है। आधुनिक रचनाकर के भीतर एक प्रकार के मानसिक प्रत्यावर्तन की समस्या बराबर बनी रहती है। साँकेतिक अर्थवक्ता के द्वारा ही वह अपनी रचनात्मक प्रक्रिया में इस समस्या का समाधान प्राप्त करती है।

प्रतीक-योजना एवं बिम्ब-विधान

प्रतीकों के द्वारा कैसे कहानियों में बिखरे प्रभावों को एक दूसरे से सम्बद्ध किया जा सकता है और बिम्बों के द्वारा किस प्रकार विषय-वस्तु में मूर्तग्राह्यता आती है इसके कुछ अच्छे उदाहरण 'आधुनिक' कहानी में प्राप्त हैं। ओ० हेनरी तथा चेखब की कहानियां तो इस दृष्टि से उत्कृष्ट कथा-शिल्प का श्रेष्ठ आदर्श प्रस्तुत करती ही हैं-प्रायः सभी देशों और भाषाओं के श्रेष्ठ समकालीन कहानियों के कथाशिल्प में यह सामर्थ्य परिलक्षित होती है। कहा जा सकता है कि प्रतीक हमारी बिखरी हुई अनुभूतियों को एक केन्द्रीय दिशा देते हैं और बिम्ब किसी अमूर्त अनुभव को या वस्तु को मूर्त और सजीव बनाते

१–'नन्दा और ऊपर सरक आयी और बार-बार गीता के होंठ, पलकें और कान की लवों को अपने होठों से छूती रही। चाँदनी में आंसुओं से चमकते गालों और बन्द पलकों को देख कर एक पल को उसे लगा कि शायद मर जाने पर गीता ऐसी लगेगी।

'उस रात नन्दा के निर्वस्त्र, समर्पित शरीर को अपनी उत्तेजित सांसों और उन्मत्त बाहों में जकड़े······गीता पागलों की तरह बस यही कहती रही' 'नन्दन, मुझे छोड़ कर मत जाना।···मैं तेरे बिना मर जाऊंगी, नन्दन।'···बाद में मन का पाप-बोध भले ही ग्लानि और आत्म-भर्त्सना

हैं। टी० एस० इलियट के अनुसार 'बिम्ब उस अनुभूति की गहनता का प्रतिनिधित्व करते हैं जिसमें हम प्रवेश नहीं कर पाते।' [1] आधुनिक हिन्दी–कहानियों की कलात्मक विशेषताओं में प्रतीकों और बिम्बों का उपयोग भी एक महत्वपूर्ण विशेषता है। मार्कण्डेय की कहानी 'सोहगइला' [2] में प्रतीक ही है जिसके चारों तरफ 'कथा' और 'घटना' घिरी रहती है। अजितकुमार की कहानी 'झुके गर्दन वाला ऊंट' [3] में प्रतीक ही है जिसने जीवन में परिवर्तित होते हुए मूल्यों और सन्दर्भों को सार्थक अभिव्यक्ति दी है।

प्रसिद्ध कहानीकार विलियम सारोयान की कहानियों में प्रतीक-पद्धति का जैसा सार्थक उपयोग किया गया है, उसे देखते हुए 'कहानी' में प्रतीकवाद' के विकास की पर्याप्त संभावना लक्षित होती है। 'स्नेक', 'द आरेन्जेज', 'पियानों', 'द समर आफ द ब्यूटीफुल ह्वाइट हार्स' आदि कहानियों में सारोयान ने प्रतीक–पद्धति के सार्थक और श्रेष्ठ उपयोग का आदर्श प्रस्तुत किया है। 'पियानो' शीर्षक सारोयान की कहानी के अंत में प्रतीक–विधान की अर्थपूर्ण सांकेतिकता प्रत्यक्ष हो सकी है। एम्मा के मन की यह स्वत: प्रेरित अनुभूति, कि एक दिन बेन् पियानों ही नहीं, सब कुछ उसके लिए पा लेगा, [4] कहानी के प्रतीकात्मक संकेत को प्रकाशित कर देती है।

बनकर चूहों की तरह आत्मा को कुतरता रहे, लेकिन उस क्षण न गीता को होश रहता है और न नन्दा को। नन्दा तो ऐसी पागल हो जाती है कि नोंचने-काटने लगती।'

–प्रतीक्षा : राजेन्द्र यादव : नयी कहानियां : दीपावली विशेषाँक १९६२

१–'...सच मेमरीज में हैव सिम्बोलिक वैल्यू बट आफ ह्वाट वी कैन नाट टेल फार दे कम टु रेप्रेजेन्ट द डेप्थ्स आफ फीलिंग इन्टू हिच वी कैन नाट पियर।'

–सेलेक्टेड प्रोज : टी० एस० इलियट : पृ० ९५।

२–हंसा जाई अकेला : मार्कण्डेय : पृ० ३१।

३–अंकित होने दो : अजितकुमार : पृ० १९।

४–'ही लुक्ड ऐट हर अगेन, द सेम वे, ऐन्ड शी स्माइल्ड बैक ऐट हिम द वे ही वाज स्माइलिंग ऐट हर।

व्यंजना के नये माध्यम की खोज में आज का कहानीकार नये और उपर्युक्त प्रतीकों का अन्वेषण करता है। 'रचना' में प्रवहमान अन्तर्धाराओं को वह प्रतीक–पद्धति द्वारा ही व्यक्त करना चाहता है। प्रतीक की विशिष्टता उसके लिए भाषा–प्रक्रिया की नहीं, समस्त रचनात्मक प्रक्रिया की विशिष्टता होती है । अपने जीवनानुभवों को रचनात्मक अनुभवों का रूप देने के लिए व्यक्तित्व का जो विलयन अपेक्षित होता है वह 'प्रतीक' को सम्मुख कर देने से ही संभव हो पाता है ।

आवश्यक और उचित होता है कि 'प्रतीकों' को साध्य न मान लिया जाय सत्यान्वेषण के लिए यथार्थ के सूक्ष्म स्तरों के उद्घाटन के लिए साधन ही माना जाय । इसीलिए अज्ञेय ने लिखा है' महत्व या मूल्य प्रतीक का या प्रतीक में नहीं होता, वह उससे मिलनेवाली अनुभूति की गुणात्मकता में होता है । '[1] आज के कहानीकार में प्रतीक-विधान के उपयोग की सही दिशा का बोध है । मार्कण्डेय की कहानी 'तारों का गुच्छा' में अपूर्ण इच्छाओं के प्रतीक-रूप में ही गदराए हुए आसमान में से तारों के एक गुच्छे के तोड़ लिये जाने की कल्पना की गयी है : 'जाने क्यों उसे लगता है, जैसे उसकी खिड़की के पास तारों से गदराया आसमान झुक आया है और वह खिड़की बन्द किए बैठी है । क्यों न वह तारों का एक गुच्छा तोड़ ले । कहीं उसने मांग ही लिया तो क्या होगा और वह चारपाई से नीचे उतर कर खिड़की खोल देती है । सचमुच, रेल की ऊंची पटरियों पर तारों का घोल पुत गया है और दूर आसमान के सीमान्त में उसकी नुकीली धार धंसती चली गयी है ।' [2]

शी अन्डरस्टुड इट वाज लाइक द पियानों । ही कुड स्टे नियर इट फार आवर्स शी फेल्ट वेरी फ्लैटर्ड ।

ही वेन्ट आन डाउन द स्ट्रीट ऐन्ड शी वेन्ट आन इन्टू द स्टोर । समहाऊ आर अदर शी न्यू ही वुड गेट ए पियानों सम डे, ऐन्ड एव्री थिंग एल्स टू'

—वेस्ट स्टोरीज आफ विलियम सारोयान (फेबर संस्करण) पृ० २५२-५३ ।

१–'आत्मनेपद : अज्ञेय : पृ० २५६ ।

२–तारों का गुच्छा : मार्कण्डेय : पृ० ५८

राजेन्द्र यादव की कहानी "प्रश्नवाचक पेड़" में प्रश्नवाचक पेड़ जीवन और प्रकृति के गहरे असन्तुलन या असंगति का प्रतीक है यद्यपि कहानी के चमत्कारपूर्ण घुमाओं के बीच प्रतीक का प्रभाव इस प्रकार खो गया है कि वह अंत में [1] पाठक को एक आघात की भाँति लगता है। प्रतीक का यही इष्ट हो सकता है। तब भी कहानी की सम्पूर्ण रचना में कुशल अभिव्यक्ति संयम का उपयोग आवश्यक था।

आज का कहानीकार युग की मनोवैज्ञानिक स्थितियों की जटिलता को व्यक्त करने के लिये बिम्बों के अर्थपूर्ण उपयोग पर अधिक बल देता है। भावबोध के विशेष स्तर के अनुरूप टूटे असम्बद्ध बिम्बों को भी सम्पूर्ण सार्थकता में ज्यों का त्यों पाने का प्रयास आज की कहानी की रचना-प्रक्रिया का महत्वपूर्ण अंग है। बिम्ब-रचना की प्रक्रिया पर ध्यान देने से ज्ञात होता है कि यह प्रयास एक कठिन रचनात्मक संकल्प है। रचनात्मक संकल्प है। रचना प्रत्यक्ष संवेदना की अभिव्यक्ति से आगे आकर विशेष अनुभवों की अभिव्यक्ति हो, इसके लिए यह आवश्यक होता है कि रचनाकार अपनी मानसिक प्रतिक्रियाओं को समकालीन यथार्थ के प्रकाश में देखे। तात्कालिक मानसिक प्रतिक्रियाओं को अधिक गहरे स्तर पर व्यक्त करने के लिए असम्बद्ध और टूटे हुए बिम्बों को भी सम्पूर्ण सार्थकता में उपलब्ध करने का प्रयत्न आज के कुछ आत्म चेतस् कहानीकारों में है, इसमें सन्देह नहीं।

समसामयिक यथार्थ की जटिलता और परिवर्तनशीलता की पृष्ठभूमि में बिम्ब–रचना की अर्थपूर्ण प्रक्रिया को समझने और अपनाने की पर्यत्सुकता आज के कहानीकारों की महत्वपूर्ण विशेषता है। आधुनिक परिस्थितियों की जटिलता में मानवीय अस्तित्व के मूलभूत प्रश्नों का समाधान पाने की इच्छा

१—"डाक्टर चरन ने खट से टेबिल-लैम्प बुझा दिया। बाहर चाँदनी में वह बबूल का प्रश्नवाचक पेड़ सिर झुकाये खड़ा कुछ सोचता खुली खिड़की से साफ दिखाई दे रहा था। जी फिर एक बार धक से रह गया। इसे तो किसी तरह कटवाना ही पड़ेगा। माथुर की बात याद आई तो चन्द्रा का चेहरा भी सामने आ गया : एक अजब–सा खयाल दिमाग में उठा, चांदनी में बबूल का ठूंठ पेड़, कैसा लगता है जो……।"

—प्रश्नवाचक पेड़ : छोटे-छोटे ताजमहल और अन्य कहानियाँ : राजेन्द्र यादव : पृ० १५५।

से प्रेरित आज का कहानीकार कल्पना को प्रतिबन्धित प्रतिक्षेप (कन्डीशन्ड रेफ्लेक्श) तक ही सीमित नहीं रखता, बल्कि अनेक बिम्बों के परिनिर्माण में उसका सतत् उपयोग करता है। निर्मल वर्मा की कहानी "लवर्स" के एक अंश पर विचार करें :

"उस शाम हम पवेलियन के पीछे टैरेस पर बैठे थे। मेरे रूमाल में उसकी चप्पलें बँधी थीं और उसके पाँव नंगे थे। घास पर चलने से वे गीले हो गए थे और उन पर बजरी के दो-चार लाल दाने चिपके रह गये थे। अब वह शाम बहुत दूर लगती है। उस शाम एक धुंधली-सी आकाँक्षा आयी थी और मैं डर गया था। लगता है, आज वह डर हम दोनों का है, गेंद की तरह कभी उसके पास जाता है, कभी मेरे पास।"

"बजरी के दो चार लाल दाने" "धुँधली सी आकांक्षा", "गेंद की तरह का डर" ये बिम्ब एक ही मानसिक प्रतिक्रिता की अभिव्यक्ति के लिये हैं पर एक में रूप की प्रत्यक्षता, दूसरे में रंग की सूक्ष्मता, तीसरे में सूक्ष्म पर विलक्षण सम्बन्ध-भावना दिखाई देती है। यह अपने आप में प्रमाण है कि बिम्बों के बहुविध उपयोग की सम्भावना का बोध आज के कहानीकार को है।

बिम्बों का कहानियों में अर्थपूर्ण उपयोग करने वाले नये लेखकों में, निर्मल वर्मा, राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, मार्कण्डेय, रामकुमार, कमलेश्वर, शिवप्रसाद सिंह, अमरकान्त तथा कृष्णा सोवती आदि प्रमुख हैं, जिन्होंने बिम्बों का उपयोग कहानी की कथावस्तु और रूप के परिनिर्माण की दिशा में किया है। आधुनिक कहानी के अन्तर्गत उपलब्ध बिम्ब-बहुल पारदर्शी भाषा के अर्थपूर्ण उपयोग को देखते हुये यह सहज ही कहा जा सकता है कि सूक्ष्म से सूक्ष्म इन्द्रिय-बोधों की अभिव्यक्ति के लिये जैसी अर्थपूर्ण क्षमता आज की कहानी में उपलब्ध है, पहले इस रूप में कमी नहीं थी। बिम्ब-विधान का सार्थक उपयोग करने वाले आज के कहानीकार वस्तुओं के पीछे छिपे हुये गहरे यथार्थ की नयी खोज के प्रति, पहले के कहानीकारों की तुलना में कहीं अधिक व्याकुल एवं चेष्टवान दिखाई देते हैं।

आज की कहानी : सम्भावनायें

कुल मिलाकर आज की कहानी की सम्भावनाओं की कहानी है।

अनेक सीमाओं के होते हुए भी, आज की कहानी की जिन विशेषताओं को लक्ष्य कर हमने "नयी कहानी" की संज्ञा निर्धारित की है, वे इतिहास और परम्परा की परिणति होकर भी नयी दिशायें ग्रहण करते हुए ही सर्वतोमुखी विकास प्राप्त कर सकती है। इतिहास का जीवित बोध रचनाकार को आगे ही बढ़ाता है। आज के रचनाकार का कर्तव्य है कि वह इतिहास और परम्परा के सजीव बोध की नयी प्रतिमा का निर्माण करते हुए उसे रचनात्मक दिशा में आगे बढ़ाए।[1]

१—"हिस्ट्री मे पर्हेप्स हैव ऐन एण्ड, बट अवर टास्क इज नाट टु टर्मिनेट इट बट टु क्रिएट इट, इन इमेज आफ ह्वाट वी हेन्सफोर्थ नो टु बी ट्रू।"
—रेबेलियन ऐण्ड आर्ट : द रेबेल : आल्बेयर कामू : पृ० २७६।

की "यान्त्रिक प्रणाली" [1] का जो विवरण देता है वह "साहित्य" के मूल्यांकन के प्रश्न को सम्पूर्ण हल नहीं करता (साहित्य की रचना-प्रक्रिया का विचार साहित्यकार के जीवन-कर्म, दृष्टि–दृष्टिकोण, अध्ययन, परिवेश और रचना-शिल्प के ही आधार पर करना उचित है। कहानी की रचना–प्रक्रिया पर विचार करने से हमारी यह धारणा बराबर दृढ़ होती गयी है।

साहित्य के अपरिभाषेय सूक्ष्म मूल्यों में "रचना की प्रक्रिया" एक महत्वपूर्ण मूल्य है। रचनात्मक–प्रक्रिया की महत्वपूर्ण समस्याओं का साक्षात्कार करते हुए समीक्षात्मक मूल्यांकन का प्रयत्न "रचना" की आन्तरिक गहनता में प्रवेश करने और मौलिक तथ्यों के अन्वेषण में सहायक होता है। रचना रचनाकार के लिए प्रायः आत्मान्वेषण का साधन होती है। रचना में और रचना की प्रक्रिया में ही रचनाकार स्वयं अपने को उपलब्ध करता है। अपने को पाना रचनाकार के लिए विशेष रचनात्मक सत्य को पाना है। इसीलिए अज्ञेय के अनुसार "कृति जितनी कृतिकार द्वारा रची जाती है उतनी ही स्वयं कृतिकार को रचती भी है। कोई भी रचयिता रचना करने से पूर्व और पश्चात् वहीं का वहीं नहीं रहता।" [2] इस दृष्टि से साहित्यिक कृति का मूल्यांकन करते हुये रचना-प्रक्रिया की उपेक्षा करना कठिन है।

रचना–प्रक्रिया की चेतना का अध्ययन करने के "रचना" और "रचनाकार" की चेतना के विविध पक्षों का सूक्ष्म बोध आवश्यक होता है। भावात्मक सामान्यीकरण से आगे आकर विशेष रचनात्मक चेतना, आधुनिक बोध और उसके अनुरूप विकसित बिम्ब-रचना की सजग प्रक्रिया के स्तर पर ही रचना-प्रक्रिया के वैशिष्ट्य का मूल्यांकन सम्भव है––कहानी की रचना-प्रक्रिया के परिवर्तित मूल्यों के अध्ययन से हम इसी निष्कर्ष पर पहुँच सके हैं।

आधुनिकता की चेतना और रचनात्मक चेतना

"आधुनिकता" की परिभाषा निश्चित् कर सकने की कठिनाई का

१—हिन्दी-समीक्षा का गहन दायित्व : आलोचना : ७ : पृ० ९।

२—ज्ञानोदय : मार्च, १९६२ : पृ० ४१।

अनुभव प्राय: सभी दायित्वपूर्ण लेखकों और आलोचकों ने किया है। प्राय: सभी इस सच्चाई से सहमत हैं कि "आधुनिकता" एक विशेष दृष्टि है। असहमति है, तो इस प्रश्न पर कि किन स्थितियों का सम्यक् बोध हमें इस विशेष दृष्टि के निकट लाता है। इसी प्रश्न का विश्लेषण करते हुए जो विचार सामने रखे गए हैं, उनमें से कुछ जागरूक पाठक को चिन्तित करने वाले हैं। इन विचारों से परिचित होने पर लगता है कि कोई आधुनिकता को किसी विशेष देश की संस्कृति से सम्बद्ध करना चाहता है, तो कोई दूसरा, आधुनिकता की पहचान का निर्णय किसी विशेष मतवाद पर छोड़ कर सन्तुष्ट हो जाता है। ऐसी धारणायें कला और साहित्य–सृजन के मर्म के प्रति अभिज्ञता के अभाव को ही सूचित करती हैं। प्रस्तुत अध्ययन की प्रक्रिया में हमने पाया कि "आधुनिकता" एक सविशेष जीवन दृष्टि है जो किसी भी दशा में किसी विशेष लेखक के दृष्टिकोण या किन्हीं लेखकों द्वारा प्रचारित किसी मतवाद में सीमित नहीं की जा सकती। साथ ही हमने अनुभव किया कि यद्यपि आधुनिकता की परिभाषा निश्चित कर सकना कठिन है, उन लक्षणों को पहचानना कठिन नहीं है जो "आधुनिकता" नामक विशेष दृष्टिबोध के निर्माण में सहायक होते हैं। अनुभूति के प्रति रचनाकार की संलग्नता, परिवेश के प्रति रचनाकार की मानवीय-चेतना और जागरूकता, अनुभवों के सम्बन्धों का सम्मिलित बोध, वस्तु को, वस्तु के रूपात्मक आकार से पृथक् कर, गुणात्मक मूल्य के रूप में देखने की कलात्मक चेतना, जीवन के नए सन्दर्भों की उत्सुकता भरी खोज तथा खोज की व्याकुलता, साँकेतिकता के विभिन्न स्तरों का बहुमुख विकास, यथार्थ की सूक्ष्म और अधिक गहरी अनुभूति, रूप, रस एवं गन्ध की जातीय विशेषताओं का रचना में रूपान्तरण, वस्तु और संकेत के अन्तर की सच्ची पहचान–आधुनिकता के ये अनेक लक्षण हैं।

व्यक्ति की चेतना का महत्व-स्वीकार

आधुनिकता का एक अन्य महत्वपूर्ण लक्षण है : व्यक्ति की चेतना और चेतना का महत्व–स्वीकार। इसके लिए निश्चित् कारण हैं कि रवीन्द्रनाथ ने भारतीय लेखकों में सबसे पहले इस रहस्य का उद्घाटन किया। "स्वकीय विशेषताओं में जो व्यक्त हुआ है उसे "व्यक्ति" की संज्ञा देते हुए उन्होंने कल्पना–शक्ति और रचना–शक्ति के गुणों पर जितनी सूक्ष्मता से विचार किया

है वह माननीय है।[1] इन विचारों के प्रकाश में रवीन्द्रनाथ की कहानियां पढ़ी जाय तो लगेगा कि उनकी आधुनिकता अधूरी रही हो, पर मिथ्या नहीं थी। "समाप्ति" कहानी के सांकेतिक व्यंग्य में जैसी "आधुनिकता" है उसकी समता किसी अन्य तत्कालीन कहानी में ढूंढ़ पाना सरल नहीं है। अज्ञेय की कहानी "पठार का धीरज" इसी धरातल की एक अन्य महत्वपूर्ण कहानी है। अन्तर है तो केवल यह कि "समाप्ति" कहानी में बौद्धिक विश्लेषण नहीं के बराबर है जब कि "पठार का धीरज" में वह प्रमुख रूप से है।

रचना-प्रक्रिया के विभिन्न स्तरों का सजीव ज्ञान

रचना ही नहीं, रचना की प्रक्रिया के विभिन्न स्तरों का सजीव ज्ञान-आधुनिक कलात्मक सृजन के मान्य लक्षणों में एक अन्य महत्वपूर्ण लक्षण है। बल्कि, अन्य लक्षण प्रासंगिक हैं और इस पर आश्रित हैं। हमने सोद्देश्य रूप से, निरन्तर इस बात पर बल देना चाहा है कि रचना-प्रक्रिया के प्रति सजगता रचना-शिल्प के प्रति सजगता-मात्र नहीं है। रचना-प्रक्रिया के प्रति सजगता का प्रकारान्तर से अभिप्राय है सम्पूर्ण रचनात्मक-कर्म के प्रति सजगता जिसके [illegible]

१– "साहित्य का विषय व्यक्तिगत हैं, श्रेणीगत नहीं। यहाँ मैं "व्यक्ति" शब्द के धातुगत अर्थ पर ही जोर देना चाहता हूं। स्वकीय विशेषताओं में जो व्यक्त हुआ है उसी को व्यक्ति कहते हैं। यह व्यक्त सर्वथा स्वतन्त्र है। विश्व जगत् में उसके सम्पूर्ण अनुरूप दूसरा कोई नहीं है।

व्यक्ति रूप की यह व्यक्तता सबकी समान नहीं होती, कोई सुस्पष्ट है तो कोई अस्पष्ट। कम से कम उसके लिए जो उपलब्धि करता है। साहित्य का यह "व्यक्ति" केवल मनुष्य नहीं होता, विश्व की जो भी वस्तु साहित्य में सुस्पष्ट है वही "व्यक्ति" है। जीव-जन्तु, पेड़-पौधे, नदी, पर्वत, समुद्र, अच्छी चीजें, बुरी चीज़ें, वस्तु की चीजें, भाव की चीजें सभी कुछ व्यक्ति हैं। स्वयं अपनी एकान्तिकता से यदि वे व्यक्त नहीं, व्यक्त हुई तो साहित्य में वे लज्जित हैं। जिस गुण से ये चीजें साहित्य में उतने परिणाम में व्यक्त हो उठती हैं, जितने से हमारा चित्त उन्हें स्वीकार करनें को विवश हो जाय, ऐसा गुण दुर्लभ है। किन्तु यह गुण साहित्य-रचयिता में होना ही चाहिए।"

कई स्तर हो सकते हैं–जैसे वस्तु की अनुभूति या वस्तु की तात्कालिक अनुभूति (इम्मीडिएट एक्सपीरिएन्स) उस वस्तु अनुभूति का अनेक अनुभव–सन्दर्भों में विलय, वस्तु के मूल्य की सम्पूर्ण सचेतन अनुभूति और साथ ही उसकी अभिव्यक्ति। इस दृष्टि से किसी एक "कहानी" या एक सम्पूर्ण–युग की "कहानी" की रचना–प्रक्रिया का अध्ययन कितना रोचक, तथा साथ ही, उपयोगी हो सकता है, प्रस्तुत अध्ययन की प्रमुख विष्पत्तियों की ओर ध्यान दिलाते समय, इसे पुनः बताने की आवश्यकता नहीं है। जिस प्रकार जीवन में जो कुछ सामने आता है, उससे उतने का ही पता नहीं चलता, ऐसे बहुत कुछ का भी पता चलता है जिसे हम प्रत्यक्ष रूप से देख नहीं पाते–उसी प्रकार "कहानी" में भी।[1] सागां की ही रचना "ए सरटेन स्माइल" की नायिका को आधार मानकर देखा जाय तो कहानी में व्यक्त एक संकेत अव्यक्त एक सम्पूर्ण प्रक्रिया को कैसे व्यंजित कर सकता है इसका अनुमान किया जा सकता है। बर्ट्रेन्ड के साथ सम्पूर्ण आसक्ति से प्रेम करती हुई नायिका को आँसुओं, एकान्त और भावावेश की कमी का अनुभव होना–[2] इस लम्बी कहानी में यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण संकेत है और इस एक संकेत में नायिका के भावी जीवन की

१— "एक साधारण घटना, साधारण घटना नहीं होती, जीवन के व्यापक क्षितिज में काम करती' हुई शक्तियों की एक अभिव्यक्ति भी होती है। जो कुछ सामने आता है, उससे उतने का ही पता नहीं चलता, ऐसे बहुत का भी पता चलता है जिसे हम प्रत्यक्ष रूप से देख नहीं पाते। व्यक्तिओं, घटनाओं और परिस्थितियों को उस व्यापक सन्दर्भ में देख और पहचान कर ही उनका सही चित्रण किया जा सकता है। कहानी आखिर जीवन के द्वन्द्वों और अन्तर्द्वन्द्वों को ही तो चित्रित करती है। कहानीकार की दृष्टि इन द्वन्द्वों और अन्तर्द्वन्द्वों को पहचानकर साधारण से साधारण घटना के माध्यम से उनका संकेत दे सकती है।"

—कहानी : नये सन्दर्भों की खोज : एक और जिन्दगी :

—मोहन राकेश : पृ० १५।

२— "आई वाज कन्टेन्टेड एनफ, बट देयर वाज आल्वेज ए पार्ट आफ माई-सेल्फ, वार्म ऐण्ड एलाइव, दैट लांग्ड फार टियर्ज, सालीच्यूड ऐण्ड एक्सा-इटमेन्ट।" —ए सरटेन स्माइल : सागाँ पृ० १४-१५।

सारी अतृप्ति, व्याकुलता, विक्षोभ, एकाकीपन, अवसाद, आत्मवंचना सबकी कारणमूलक व्याख्या निहित है। प्रेमचन्द की "कफन" शीर्षक कहानी में, निर्मम यथार्थ के आमने–सामने उपस्थित भोक्ता चरित्र जैसा आश्चर्यपूर्ण व्यवहार करते हैं उसके लिए संकेत कहानी में एक ही बिन्दु पर है—पर उस संकेत के सहारे उन समस्त स्थितियों की प्रक्रिया का अनुमान किया जा सकता है जिसमें पड़ कर कोई भी वैसा आकस्मिक और आश्चर्यपूर्ण व्यवहार कर सकता है। कहना न होगा कि कहानी में "वस्तु" की तुलना में संकेत को महत्व देना रचनात्मक अनुभवों की एक लम्बी प्रक्रिया को एक बिन्दु पर पा लेना है पर ऐसा करने के लिए लेखक का वस्तु के प्रति तद्‌गत भाव से युक्त होना आवश्यक है। रवीन्द्रनाथ ने आधुनिकता की व्याख्या करते हुए वस्तु के प्रति आसक्ति–भाव और तद्‌गत भाव में स्थित अन्तर पर इसी दृष्टि से बल दिया है।[1] राजेन्द्र यादव की कहानी "खुशबू"[2] और मोहन राकेश की कहानी "मिस पाल"[3] में रचनाकार का वस्तु के प्रति तद्‌गत भाव प्रत्यक्ष हो सका है। "खुशबू" किशोर वय के चरित्रों के भावुक-प्रणय की कहानी है। यदि वह तटस्थ "तद्‌गत भाव" इस कहानी में नहीं होता, तो यह एक सस्ती प्रेम-कहानी होती और इसका कोई साहित्यिक मूल्य आधुनिक रुचि के अभिज्ञ पाठक के लिए नहीं होता। सुमेरा, रिक्शेवाले को कहानी में मध्यस्थ बनाकर लेखक ने उस आधुनिक युक्ति का उपयोग किया है जो कहानी के शिल्प में सविशेष तटस्थता की संरचना में सहायक होती है। मुख्य चरित्रों के मानस में घटित होती हुई समस्त प्रेम–प्रतिक्रियाओं के लिये सुमेरा मानों एक तटस्थ "आश्रय" है और इस प्रक्रिया में कहानी के लिये वह सर्वाधिक

१— यदि मुझ से कोई पूछे कि "यह आधुनिकता है क्या चीज", तो मैं कहूंगा, "विश्व को व्यक्तिगत आसक्त-भाव से न देखकर निर्विकार तद्‌गत-भाव से देखना ही आधुनिकता है।" यह देखना ही उज्वल है, विशुद्ध है, यह देखना ही विशुद्ध आनन्द है। आधुनिक विज्ञान जिस निरासक्त-भाव से वास्तव का विश्लेषण करता है, काव्य भी ठीक वैसे ही निरासक्त-चित्त से विश्व को समग्र दृष्टि से देखे, यही शाश्वत रूप से आधुनिकता है।"
—साहित्य के पथ पर : र० ना० ठाकुर : पृ० ८३।

२– छोटे-छोटे ताजमहल और अन्य कहानियाँ : राजेन्द्र यादव : पृ० १७४-१९६।

३—एक और जिन्दगी : मोहन राकेश : पृ० ५८–९५।

महत्वपूर्ण चरित्र हो गया है—जिसे सभी वस्तुएँ, यहाँ तक अपनी निजता, अपरिचित प्रतीत होती हैं।[1] इसी प्रकार राजेन्द्र यादव की "खेल" शीर्षक कहानी में प्रेम की सारी उद्वेलित प्रक्रिया की समाप्ति पर दिवाकर को लगता है "जैसे न वह लेखा को पहचानता है न लेखा उसे चीन्हती है।[2] पर, तटस्थता पलायन नहीं है। तटस्थता कोरी असम्बद्धता भी नहीं है, क्योंकि तटस्थ होकर हम परिस्थिति के और निकट होते हैं। इस दृष्टि से तटस्थता एक शुद्ध रचनात्मक-प्रक्रिया या उसका एक महत्वपूर्ण आयाम है। जैनेन्द्र के मतानुसार समय और परिस्थिति में संश्लिष्ट प्रश्न-चिह्नों के प्रति व्याकुलता ही रचनाकार को उसकी "निजता" से पृथक करती है।[3]

व्यक्ति के "यथार्थ" और व्यक्ति की "सम्भावना"—इन दो स्थितियों के बीच का संघर्ष कभी न समाप्त होने वाला संघर्ष हैं। आधुनिक रचनाकार अपनी रचनात्मक-प्रक्रिया में इस संघर्ष को व्यक्ति की परिधि के बाहर एक व्यापक स्तर पर पकड़ने का यत्न करता है।

१—"सवारियाँ भरे हुये रिक्शे—ताँगों का रेला ट्रिनन्-ट्रिनन्, भों-भों करता बढ़ की तरह चला आ रहा था। एक पल को उसे लगा, जैसे वह अभी-अभी इसी गाड़ी से नया-नया उतर कर इस जगह आया है और यहाँ की किसी चीज को नहीं पहचानता, यहाँ की सब चीजें एकदम नई हैं, यहाँ तक कि रिक्शा भी अनपहचाना है………………… ………जो उसके शरीर का एक अंग है।

—खुशबू : छोट-छोटे ताजमहल और अन्य कहानियाँ : राजेन्द्र यादव : पृ० १९६।

२—खेल : छोटे—छोटे ताजमहल और अन्य कहानियां : राजेन्द्र यादव : पृ० २३—४०।

३—"व्यक्ति असल में क्या है? क्या वह प्रतीक ही नहीं है। अपने समय और अपनी परिस्थिति में संश्लिष्ट एक प्रश्न-चिह्न को, एक जिज्ञासा को लेकर वह उठा है। उसे उत्तर की खोज है। उसके भीतर कोई बन्द निजता होती तो जगत् से उसका नाता क्या बनता।"

—साहित्य का श्रेय और प्रेय : जैनेन्द्र : पृ० १८४।

"रचना" के मूल्यांकन के लिये अभिरुचि और बोध के विकास के साथ सन्दर्भ-ग्राह्यता का होना आवश्यक है। इसी सन्दर्भ-ग्राह्यता द्वारा रचना की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि को जाना जा सकता है। रचनात्मक कला को सम्पर्कात्मक अनुभूति, प्रति-भावनात्मक अनुभूति, संवेदनात्मक स्मृति और चेतन-अचेतन में व्याप्त अनुभव की परिणति माना गया है। आज की कहानी में रचनात्मक कला के ये सभी अवयव देखे जा सकते हैं—इसके मूल में आज रचनाकार की आधुनिक दृष्टि है—बदलते हुये सन्दर्भों में मानव-जीवन और उसके यथार्थ के प्रति जागरूकता जिज्ञासा है। समकालीन सत्य की पकड़ आज की कहानी में और आज के कहानीकार में दिखाई पड़ती है, इसमें सन्देह करने की कोई बात नहीं है। आधुनिकता आज के रचनाकार की आस्था को वह विशेष दृष्टि देती है जिसके द्वारा जीवन को सम्पूर्णता में देखा जा सकता है। अज्ञेय के शब्दों में "उस सम्पूर्णता को—जिसमें अनेक अपूर्णतायें, त्रुटियाँ, व्यर्थतायें, विभाजन और परिसीमन रेखायें समायी हुई हैं।" "सम्पूर्णता" या "समग्रता" [1] पर बल देने से मूल्यों के बीच का निरर्थक संघर्ष और तर्क अपने आप मिट जाता है।

रचनात्मक प्रयत्नों द्वारा समग्रता की प्राप्ति का प्रश्न आज के रचनाकार के दायित्व को अधिक गहन और साहसपूर्ण बनाता है। पिछली पीढ़ी के जागरूक लेखकों ने भी इस दायित्व को स्वीकार किया है और नयी रचनात्मक चेतना को आत्मसात किया है। इसी दृष्टि से आलोचकों तथा रचनाकारों ने मिलकर "नये" या "आधुनिक" होने की कसौटी, समय को नहीं दृष्टिबोध को माना है। [2] समग्रता में चित्रित करने के लिए

१– "नया मानवीय यथार्थ टुकड़ों में नहीं, समग्रता में ही उभारा जाना चाहिए, यह नयी साहित्यिक मर्यादा की एक महत्वपूर्ण मान्यता है।"
—सम्पादकीय टिप्पणी, निकष : १ : सं० धर्मवीर भारती।

२– "…………यह समझ लेना होगा कि नव-लेखन वह नहीं है जो कुछ भी नया लेखक लिख दे या जो भी नई कृति पुराना लेखक दे, बल्कि वह कृति जो चाहे नये लेखक की हो या पुराने की, जिसमें नये मूल्यों की चेतना है, यथार्थ का नया स्तर है, नया सौन्दर्य-बोध है।"
—सम्पादकीय टिप्पणी, निकष : १ :
सं० धर्मवीर भारती।

'वस्तु' और 'वस्तु' की प्रतिक्रियात्मक अनुभूति को एक ही धरातल पर पाना-रचनाकार का यही आधुनिक दायित्व है। रघुवीर सहाय की 'सेब' शीर्षक कहानी इस दृष्टि से विचारणीय है। कहानी के आरंभ में ही लेखक 'वस्तु' को एक विशेष बिन्दु पर प्रतिष्ठित करता है :

'चलती सड़क के किनारे एक विशेष प्रकार का जो एकान्त होता है उसमें मैंने एक लड़की को किसी की प्रतीक्षा करते पाया। उसकी आँखें सड़क के पार किसी की गतिविधि को पिछ्वा रही थीं, और आंखों के साथ, कसे हुए ओठों और नुकीला ठुड्डीवाला उसका छोटा सा सांवला चेहरा भी इधर से उधर डोलता था। पहले तो मुझे यह बड़ा मजेदार लगा, पर अचानक मुझे उसके हाथ में एक छोटा सा लाल सेब दिखलायी पड़ गया और मैं एक-दम रुक से वहीं खड़ा रह गया।'

कहानी आगे बढ़ती है, तो लड़की को 'टूटी-फूटी पैरम्बुलेटर में सीधी बैठी हुई पाते हैं—

'वह एक टूटी-फूटी पैरम्बुलेटर में सीधी बैठी हुई थी। जैसे कुर्सी में बैठते हैं, और उसके पतले-पतले दोनों हाथ घुटनों पर रक्खे हुए थे। वह कमीज पैजामा पहने थी, कुछ ऐसा छरहरा उसका शरीर था और कुछ ऐसी लड़कौंधी उसकी उम्र थी कि मैं सोच में पड़ गया कि यह लड़का है या लड़की। लड़की होती तो उस पर दो पतली-पतली चोटियाँ बहुत खिलती : यहाँ वह झबरी थी। पर तुरन्त ही मेरे मन ने मुझे टोका, भला यह भी कोई सोचने की बात है, क्योंकि उस बच्ची में कहीं कोई ऐसा दर्द था जो मुझे फालतू बातें सोचने से रोकता था।'

कहानी में वर्णित प्रतिक्रियाओं पर ध्यान देने से जाना जा सकता है कि आधुनिकता की चेतना वस्तुगत आधार और उसकी व्यक्तिगत प्रतिक्रिया के बीच के सूक्ष्म सम्बन्ध में निवास करती है, जिसे वाट्सन जैसे मनोवैज्ञानिक दार्शनिकों ने 'व्यवहार' की संज्ञा दी है।

बिम्ब-रचना और रचना की प्रक्रिया

बिम्ब—विधान के उपयोग से रचनाकार अपनी कृति में एक सार्थक चित्र-शिल्प का विकास प्रस्तुत करता है। 'बिम्ब' के द्वारा वस्तु के साथ एक

दृष्टिगत या चाक्षुष सम्बन्ध निर्मित होता है और बिम्ब का यही रूप सबसे पहले सामने आता है पर सूक्ष्मता से विचार किया जाय तो बिम्ब-निर्माण की प्रक्रिया इन्द्रिय-बोध के अन्य पक्षों स्पर्श, गन्ध, आस्वाद आदि को समानतः छूती और प्रभावित करती है। सुख-दुख के सूक्ष्म से सूक्ष्म सम्बन्धों को रचनाकार बिम्बों द्वारा बड़ी ही सार्थक कुशलता और साँकेतिक संयम से व्यक्त करने में समर्थ होता है। सौन्दर्यानुभव के सूक्ष्म रहस्यों को बिम्बों द्वारा न केवल मूर्त करने में सहायता मिलती है बल्कि उनके भीतर प्रवेश करने और उनके गहरे अर्थों तक पहुंचने की प्रेरणा भी प्राप्त होती है।

प्रश्न यह है कि बिम्ब द्वारा प्रत्यक्ष सत्य की तुलना में एक अप्रत्यक्ष कल्पित चित्र को सामने लाने से रचनाकार किस लक्ष्य की प्राप्ति करता है। 'गूँज' 'गूँज' है, उसे आज का कहानीकार 'गुनगुनी' क्यों कहता है ? उसके लिए 'गूँज' गीले कोयले के धूँए के मानिन्द क्यों होती है ? 'विचार' 'जिद्दी मक्खी–सा भिनभिनाता हुआ' क्यों जान पड़ता है ? 'चांदनी' 'हल्की' क्यों होती है ? इन अप्रत्यक्ष कल्पनाओं के सम्बन्ध द्वारा रचनाकार किस रचनात्मक सुख की उपलब्धि करता है ? एक दूसरे घरातल पर यह प्रश्न इस रूप में भी उठाया जा सकता है : क्या यह रचनात्मक सुख पाठक के मन में भी अवतरित होता है ? यहाँ दूसरे धरातल के प्रश्न को इस आधार पर टाला जा सकता है कि पाठक के मन में उपर्युक्त रचनात्मक सुख अवतीर्ण हो पाता है कि नहीं, यह बात व्यक्तिगत पाठक [1] (इन्डिविजुअल रीडर) पर निर्भर करेगी।

बिम्ब-रचना के सम्बन्ध में सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रश्न यही है कि 'बिम्ब' द्वारा जिस रचनात्मक सुख की प्राप्ति रचनाकार तथा पाठक–विशेष को होती है, उसका रहस्य क्या है। आज की कहानी में बिम्बों का उपयोग बहुत अधिक किया जा रहा है–महत्वपूर्ण बात इतनी ही नहीं है। महत्व तो इस बात का है कि बिम्ब रचना द्वारा आज की कहानी किस विशेष सार्थक और रचनात्मक सुख की प्राप्ति में सहायक है। रचनात्मक अनुभूति–प्रक्रिया के सम्बन्ध में हम जानते हैं कि रचनाकार वस्तु का जो अनुभव रचना-प्रक्रिया के

१–'द डिग्री आफ प्लेजर डिपेन्ड्स नैचुरली आन द इन्डिविजुअल रीडर'
—द पोएटिक इमेज : सी० ड्० लिविस ? पृ० २३

आरम्भ में ही प्राप्त करता है, रचना–प्रक्रिया के विकास में उसी की पुनर्रचना भी करता है । यह पुनर्रचना 'वस्तु' और 'वस्तु' से उद्दीप्त, जाग्रत प्रतिक्रिया को अन्तर्मुक्त कर लेती है । यह पुनर्रचना 'बिम्ब–रचना' के द्वारा ही संभव हो पाती है । बिम्ब–विधान के अभाव में वह अधिक स्थूल हो जाती है । अत: 'बिम्ब' अपने आप में सम्पूर्ण नहीं है–उनका उपयोग एक सहायक साधन के रूप में ही किया जा सकता है । बिम्ब–रचना की प्रक्रिया के मूल में रचनाकार की वह प्रतिभा या शक्ति कार्य करती है जिसे हम 'कल्पना' कहते हैं । इस कल्पना के उपयोग से ही प्रत्यक्ष वस्तु एक अप्रत्यक्ष 'बिम्ब' के रूप में नयी अर्थवत्ता प्राप्त करती है। भाव-संवेदन का विकसित स्तर 'प्रतीक' से अधिक की मांग करती है। इसी मांग की पूर्ति भाषा 'बिम्बविधान' के उपयोग द्वारा करती है ।

बिम्ब-रचना की प्रक्रिया अर्थसंस्कारों के विभिन्न स्तरों का उद्‌घाटन करती है और इन्द्रिय बोधों द्वारा अधिक सूक्ष्म रस-ग्रहण की संभावना का विकास करती है । अनेक बिम्बों के सम्पर्क द्वारा रचनाकार भाव-संवेदन के विकसित स्तर को रचना में मूर्त करता है, इसे उदाहरण द्वारा समझ सकते हैं-

क–'नर्म-नर्म ताजी सफेद बर्फ पर पांव रखते समय उसे लगा जैसे हाल में ही खिले ताजे फूलों पर वह कीलों–भरे भारी–भरकम जूते पहने चल रहा हो । इस विचार से वह निर्दयता से कभी ठोकर लगा बर्फ को आगे उछालता कभी जोर से अपना पैर घुमाता, लेकिन पीछे रौंदी हुई बर्फ पर ताजी बर्फ के टुकड़े तेजी से गिर रहे थे और ठाकुर के जूतों के निशान ढकंते जा रहे थे ।'

ख–'मेरे घर के सामने एक चौड़ा नाला है और उसके परे कटीले झाड़ी का एक बड़ा सा गुम्बद। मैंने कभी इसमें एक खरगोश के जोड़े को घुसते देखा। ······घर से निकलता हूं तो पल-भर रुक कर उधर जरूर देख लेता हूं ।

इन उदाहरणों से प्रत्यक्ष है कि अप्रत्यक्ष कल्पना द्वारा मूर्त होने पर भी 'बिम्ब' रचना में अधिक प्रत्यक्ष सत्य का स्थान ग्रहण कर लेते हैं। आज की कहानी में प्रयुक्त 'बिम्ब' यदि एक और पाठक को समय की तिक्त वास्तविकता का आस्वाद कराते हैं तो दूसरी ओर उसे आँतरिक संक्रमण के महत्वपूर्ण

बिन्दु पर ले जा कर छोड़ देते हैं ।

आधुनिक साहित्य में रचना की प्रक्रिया की संभावनाओं को कई प्रकार से विकसित तथा पूर्ण किया गया है इसमें सन्देह नहीं। कहानीकारों ने भी उसके जटिल से जटिलतर होते हुए दायित्वों को समझने का प्रयास किया है। इसी प्रयास की प्रक्रिया में पात्रों की बाह्य रूपरेखा, गतिविधियों के विवरण और विवरण के संयोग से आगे आकर तात्कालिक यथार्थ के पार देखने की इच्छा कहानीकारों ने व्यक्त की है ।[1] बादलेयर ने अपनी कविताओं द्वारा अचेतन मन की उलझनों को स्पष्ट और ठोस प्रतीकों के माध्यम से पूर्ण चेत-नता के धरातल पर ले जाने का जो प्रयत्न किया है, वह आधुनिक कहानी की रचना–प्रक्रिया का भी स्वाभाविक और महत्वपूर्ण अंग है। आधुनिक कथा-कारों ने नए भाव-बोधों के उन्मेष के लिए रचना के क्षेत्र में जो विविध प्रयोग[2] किए हैं वे एक ऐतिहासिक आवश्यकता की पूर्ति करते हैं।

ऐन्द्रिक चेतना

रचनाकार की जीने के प्रति, और बृहत्तर अनुभवों को उपलब्ध करने की आकाँक्षा रचना–प्रक्रिया को ऐन्द्रिक चेतना के बाह्य तल तक ही सीमित नहीं रखती। ऐन्द्रिक चेतना के सूक्ष्म स्तरों को जीते हुए रचनात्मक अनुभवों

१–'लेकिन जीद से लेकर सार्त्र और कैमू तक की इस परम्परा ने मुझे यह जरूर सुझाया कि कहानी सिर्फ पात्रों के बाह्य-चित्रण और गतिविधियों का लेखा–जोखा और परिस्थितियों के संयोग पर निर्भर 'ट्रेजेडी' या 'कामेडी' ही न हो-अपने पार भी कुछ कहती हो और वह 'पार कहना' अन्त में या बीच-बीच में संकेत के रूप में ही आकर समाप्त न हो जाए बल्कि समानान्तर चलता रहे।'

—शह और मात : मेरा अपना दृष्टिकोण :
: राजेन्द्र यादव : कल्पना : दिसम्बर १९६० : पृ० ५४।

२–'आर्ट थ्राइव्ज वेस्ट आन द वैरियसनेस आफ लाइफ, ऐन्ड आन ए सर्च फार न्यू फार्म्स ऐन्ड न्यू टेक्नीक्स फार्म्म आउटलिव देयर यूजफुलनेस, आर रिवाइव्ड, टेक आन न्यू लाइफ'

—द साइकालाजिकल नावेल : लियोन इडेल : पृ० १४२-४३।

का अंग बनाते हुए श्रेष्ठ रचनाकार बराबर जीवन के गहरे मौलिक सत्य की खोज में संलग्न होते हैं। जिनमें खोज की यह इच्छा जितनी ही गहरी और सच्ची होती है उनके कृतित्व में उतनी ही जीवन्तता परिलक्षित होती है। इस खोज की प्रक्रिया में आवश्यक होता है कि कृतिकार ऐन्द्रिक चेतना के प्रभावों को तब तक अपने मानस में सजीव और रक्षित रहने दे जब तक कि वे अपने गहनतम अर्थ न दे दें। अनुभवों के सजीव सम्बन्धों और अनुभूति-बिम्बों पर रचनाकार का अधिकार हो, यह किसी यान्त्रिक साधन द्वारा संभव नहीं होता, उपर्युक्त खोज की गहन यथार्थता द्वारा ही संभव होता है। इस खोज को महत्व देने वाले कृतिकारों के समक्ष भाषा की सौन्दर्यात्मक विशेषता (ऐस्थेटिक क्वालिटी) को विकसित करने का प्रश्न बराबर बना रहता है। स्पष्ट और ठोस प्रतीकों का निर्माण करते हुए तथा अर्थपूर्ण बिम्बों की रचना करते हुए आधुनिक कृतिकार भाषा की संवेदना को निरन्तर बढ़ाने की चेष्टा में लगे हुए हैं।

आधुनिक कहानीकारों ने ऐन्द्रिक चेतना के सूक्ष्म स्तरों की अभिव्यक्ति के लिये भाषा को जितना ऋजु और लचीला बना दिया है, उसे देखते हुए भाषा के संवेदनात्मक विकास में हमारी आस्था दृढ़ होती है। कुछ उदाहरणों पर ध्यान दें :

क : "............नमिता के नाखून बड़े सुन्दर हैं, जैसे प्याज के भीतर का चमकदार गुलाबी झलक मारता रंग हो............।[1]

—मजाक : राजेन्द्र यादव।

ख : "और मुन्नी का हाथ पड़ा रहता है.........थोड़ा खुला-सा, पसीने और लूसी की गिलगिली गरमाहट में लथपथ। किन्तु उसकी आंख अब भी थिर हैं—आलोक के उस दायरे पर, जो गली के लैम्प पोस्ट से टूट कर घर की छत पर आ पड़ा था। एक अपूर्ण रहस्य की आतुर कातरता में भीगा।[2]

—कुत्ते की मौत : निर्मल वर्मा।

ग : "अकेला होने पर भी वह सदा इसी तरह तेज चलना आरम्भ कर देता था—एक पुराने विचित्र यन्त्र की तरह—जब उसका दाहिना कन्धा

१— "छोटे-छोटे ताजमहल और अन्य कहानियां" : राजेन्द्र यादव पृ० १६२।

२— सारिका : नवम्बर : १९६२ : पृ० ७१।

उचकता था, हाथ भद्दे ढंग से झूलने लगते थे और टागें शरीर से उखड़ने की कोशिश करती प्रतीत होती थीं।..........उसकी गरदन छोटी थी और मुँह बड़ा तथा छुहारे की तरह सूखा था, जिस पर घोंसले के तिनके की तरह झुर्रियां उभर आयी थीं।[1] —जनमार्गी : अमरकान्त।

घ : "ठाकुर ने अपना हाथ चित्रा के हाथ पर धर दिया, परन्तु उसे लगा जैसे चित्रा कोहरे की एक घनी चादर के पीछे छिपती जा रही हो, जहाँ पहुँचने का रास्ता उसे मालूम नहीं। और बाहर हल्की–हल्की बर्फ निरन्तर गिर रही है, जिसकी आवाज नहीं होती जो बारिश की बूँदों की भाँति चीखती–चिल्लाती नहीं।[2] —काले पत्थर : रामकुमार।

ङ : "धूप बड़ी प्यारी थी। हल्की-हल्की हवा थी जैसे धूप को उड़ा ले जायगी। हर चीज चमक रही थी और हरियाली खास तौर से। वह बिना धारियोंवाला लाल ऊनी निकर पहने हुए उस बड़ी भारी ऊंची मशीन पर खड़ा था और धूप में उसका गोरा रंग, भूरे बाल और भोली आँखें तसवीर जैसी लग रही थीं।[3] —खेल : रघुवीर सहाय।

इन उदाहरणों में रूप, रंग, ध्वनि की ऐन्द्रिक चेतना के अनुरूप भाषा की प्रवहमान प्रसादमयता, अपने आप में एक सारगर्भित विशेषता है। भाषा की यह प्रसादमयता जिसके द्वारा रचना में नये अर्थ-संकेतों का उद्घाटन होता है, एक रचनात्मक मूल्य है। कहानी की रचना–प्रक्रिया के विकासक्रम के समस्त इतिहास को ऐसे रचनात्मक मूल्यों के स्तर पर देखना कइ दृष्टियों से उपयोगी हो सकता है।

इन्द्रिय-बोधों की सूक्ष्म चेतना कहानी की सृजन–प्रक्रिया को दूर तक प्रभावित करती है, यह कृतिकारों तथा समीक्षकों ने एक स्वर से स्वीकार किया है। कोनरेड ने इसी दृष्टि से लिखा है, कि यदि "रचना" की महत्वाकाँक्षा संवेदना-पूर्ण अनुभूति के मूल स्रोतों तक पहुँचने की है तो उसे अनिवार्यतः इन्द्रिय-बोधों की चेतना को आत्मसात और अभिव्यक्त करना होगा।[4]

१— सरिका :नवम्बर : १९६२ : पृ० २०।
२— कृति : २४।
३— सीढ़ियों पर धूप में : रघुवीर सहाय : पृ० २२।
४— "फिक्शन इफ इट ऐटआल ऐंस्पायर्स टु बी आर्ट–अपीत्स टू टेम्परामेन्ट

ऐन्द्रिक चेतना से रचनात्मक अनुभव तक

ऐन्द्रिक चेतना की सतह से आगे आकर रचनात्मक अनुभवों को पाने की व्याकुल रचनात्मक चेतना आधुनिक रचनाकार की दुर्लभ उपलब्धि है। "रचनात्मक अनुभवों" को पाने की यही चेतना आधुनिक रचनाकार का विशेष धर्म है। अनुभव किया जाने लगा है कि अलग-अलग रचनाकारों में यह चेतना जितने संश्लिष्ट रूप में दिखाई दे रही है, पहले कम ही संभव थी। आधुनिक परिस्थितियों के संक्रमण और दबाव से वास्तविकता का वैज्ञानिक रूप ही सामने नहीं आता—मानवीय रूप भी सामने आता है जो मनुष्य और परिवेश के बीच के सम्बन्ध को ठीक-ठीक व्यक्त करता है। हेनरी जेम्स की रचना—प्रक्रिया का विश्लेषण करते हुए मैकार्थी ने संकेत किया है कि जेम्स के लिए रचना एक जीवन-कर्म की भांति थी। अपने सौंदर्यानुभवों को कला-रूपों में व्यक्त करते हुए जेम्स स्वयं अपनी मानसिक शक्तियों को प्रबुद्ध बना लेता था। रचना इस प्रकार उसके लिए विकास और आत्मपरिष्कार का साधन बन गयी।[1] प्रत्यक्षतः वास्तविकता से पलायन के लिए नहीं, वास्तविकता की अधिक गहरी शोध के लिए रचनाकार रचनात्मक अनुभवों की भूमि का निर्माण करता है या उसे उपलब्ध करता है।

ऐन्ड इन ट्रुथ इट मस्ट बी, लाइक पेन्टिंग, लाइक म्यूजिक, लाइक आल आर्ट, द अपील आफ वन टेम्परामेन्ट टु आल द अदर इनन्यूमरेबुल टेम्प-रामेन्ट्स हूज सटिल ऐन्ड रेस्टलेस पावर एन्डोज पासिंग इवेन्ट्स विद ट्रू मीनिंग, ऐन्ड क्रिएट्स द मारल, द इमोशनल ऐटमास्फियर आफ द प्लेस एन्ड टाइम। सच ऐन अपील टु बी एफेक्टिव मस्ट बी ऐन इम्प्रेशन कन्वेड थ्रू द सेन्सेज, ऐण्ड इनफैक्ट, इट कैन नाट बी मेड इन एनी अदर वे, बिकाज टेम्परामेन्ट, ह्वदर इन्डीविडुएल आर क्लेक्टिव, इज नाट एमेनेबुल टु पर्सुएशन। आल आर्ट, देयरफोर, अपील्स प्राइमरिली टु द सेन्सेज, ऐन्ड द आर्टिस्टक एम ह्वेन एक्सप्रेसिंग इटसेल्फ इन रिटेन वर्ड्स् मस्ट आल्सो मेक इट्स अपील थ्रू द सेन्सेज इफ इट्स हाई डिजायर इज टु रीच द सेक्रेट स्प्रिंग आफ रिसपाँसिव इमोशन्स·········।"

—नोट्स आन लाइफ ऐन्ड लेटर्स : जोजेफ कोनरेड : पृ० १५-१६।

१— इट सीम्ड दैट थ्रू एक्सप्रेसिंग हिज फीलिंग्ज एन्ड आइडियाज ऐस्थेटिकली, वर्किग देम इन्टू ऐन आर्ट-फार्म बोथ ऐज ट्रू ऐन्ड ऐज ब्यूटीफुल ऐज

रचनात्मक अनुभवों पर आधुनिक कथा साहित्य में विशेष बल दिया गया है—इसके पीछे दो महत्वपूर्ण प्रत्ययों (कन्सेप्ट्स) का योग माना जाता है। इनमें एक है समय के प्रवाह-नैरन्तर्य का सिद्धान्त-जिसका विकास फ्राँस में हेनरी बर्गसां की "रचनात्मक विकास" (क्रिएटिव इवोल्यूशन) सम्बन्धी धारणाओं द्वारा हुआ और अमरीका में विलियम्स जेम्स के चेतना-प्रवाह सम्बन्धी सिद्धान्त ने जिसे महत्वपूर्ण आधार दिया। रचनात्मक अनुभवों को पाने के लिए वस्तुओं को एक दूसरे से सम्बद्ध मानना, समय को प्रवाह की निरन्तरता में देखना—रचना की प्रक्रिया को एक अर्थपूर्ण प्रतिष्ठा देता है। किसी कहानी में जिस चरित्र को विषय बनाया जाता है और जिसके एक ही पहलू को दिखाना कृतिकार को अभीष्ट होता है वह भी एक सविशेष परिस्थिति, परिवेश और वातावरण की चेतनाओं का भोक्ता होता है और कृतिकार उसे परिवेश और परिस्थिति के बीच से ही चुन लेता है। इसलिए जिस "क्षण" पर कभी-कभी बल दिया जाता है उसके भीतर एक जीवित अतीत और संभावनाओं भरा भविष्य बन्द होता है। डेविड डैचेस ने इसी दृष्टि से विचारणीय प्रश्न सम्प्रेषणीयता का माना है—समय का नहीं।[1] आधुनिक कहानी में चरित्रों के "अकेलेपन" की "काल्पनिक असंगतियों" को चित्रित करने के लिए, जब आज का कृतिकार कारणों के रूप में परिस्थितियों की खोज करने चलता है तो उन्हें संश्लिष्टता में ही देखता है, खण्डों में नहीं। नरेश मेहता की कहानी "तथापि" में पारुल का कथन : "हम अनागत होकर ही रह सकते हैं विगत कदापि नहीं, कदापि नहीं। और वर्तमान तो असंगति की खोखल है, निष्प्रयोजन "पारुल की आत्मवंचना का यथार्थ उदाहरण है।

पासिबुल, ही स्ट्रेंग्थेन्ड हिज मेन्टल फैकल्टीज ऐन्ड हिज स्परीचुएल अवेयरनेस। राइटिंग बिकेम ऐन एक्सपीरियन्स आफ ग्रोथ ऐन्ड प्योरिफिकेशन।" —हेनरी जेम्स : द क्रिएटिव प्रासेस : मैकार्थी : पृ० २४।

१—"द पास्ट एक्जिस्ट्स आल्वेज इन द प्रेजेन्ट, कलरिंग ऐन्ड डेटरमिनिंग द नेचर आफ द प्रेजेन्ट रिस्पान्स, ऐन्ड टु टेल द ट्रुथ एबाउट ए कैरेक्टर्स रिऐक्शन टु एनी सिचुएशन दी मस्ट टेल द होल ट्रुथ एबाउट एव्रीथिंग दैट हैज एवर हैपेन्ड टु हिम। द नावेलिस्ट हू हैज बीन इन्फ्लुएन्सड बाइ दिस व्यू आफ टाइम ऐन्ड कान्शसनेस विल सीक वेज आफ कम्यूनिकेटिंग टु द रीडर द साइमल्टीनिटी आफ डिफरेन्ट लेवेल्स आफ कान्शसनेस

जीवन–मूल्य : रचना-प्रक्रिया के सन्दर्भ में

रचना–प्रक्रिया के सन्दर्भ में जीवन-मूल्यों की अभिव्यक्ति के प्रश्न पर विचार करते हुए इस बात पर बल देना आवश्यक जान पड़ता है कि रचनाकार जीवन-मूल्यों को ज्यों का त्यों अपनी 'कृति' में प्रतिष्ठित नहीं करता, उन्हें रचनात्मक अनुभवों का अंग बनाकर ही प्रतिष्ठा देता है। जहाँ रचनाकार प्रत्यक्ष जीवन–मूल्यों को भोगता है वहीं एक अव्यक्त, अप्रत्यक्ष प्रेरणा-भूमि का साक्षात्कार भी करता है। इसी दृष्टि से उसका दायित्व दुहरा माना गया है।[1] अपने ही भोगे हुए जीवन–मूल्यों को रचनात्मक अनुभवों का अंग बनाते हुए रचनाकार आत्मोपलब्धि करता है। आत्मोपलब्धि की प्रक्रिया में ही यह समस्त रचनात्मक व्यापार घटित होता है। इस सहज आत्मोपलब्धि की प्रक्रिया में जो बाधायें समय–समय पर उपस्थित होती हैं, वे व्यक्तिगत भी होती हैं और सामाजिक भी। व्यक्तिमन की ग्रन्थि और सामाजिक विकेन्द्रीकरण (डिसइन्टिग्रेशन) दोनों ही उपर्युक्त प्रक्रिया में बाधक तत्व हो सकते हैं। इन्हीं बाधाओं के कारण कभी-कभी विकसित संवेदनाओं (डेव्लप्ड सेन्सिबिलिटीज) वाले कथाकार नयी वास्तविकताओं (न्यू रियलिटीज) के साथ तादात्म्य नहीं बना पाते। जैनेन्द्र और अज्ञेय की कुछ कहानियों में और इलाचन्द्र जोशी की अधिसंख्य कहानियों में जो अप्रत्याशित मोड़ मिलते हैं वे रचना के स्वतः प्रेरित प्रवाह में बाधक तत्वों की अनुभूति तो कराते ही हैं, उनके मानसिक और निजी तनाव का परिचय भी देते हैं। अत्यन्त आधुनिक कथा-साहित्य में जहाँ ऐतिहासिक प्रक्रियाओं के वर्गों और व्यक्तियों की नियति के

ऐन्ड ही विल आलसों रियलाइज दैट द होल टुथ एबाउट ए मैच्योर पर्सन कैन बी टोल्ड बाइ प्रूबिंग इन्टू हिज पास्ट थ्रू प्रेजेन्टिग द फुल हेवस्वर आप हिज प्रेजेन्ट कान्शसनेस…'

—द नावेल ऐन्ड द मार्डन वर्ल्ड : डेविड डैचेस : पृ० ७–८।

१–"एक ओर तो उसकी रचना के उपकरण उसके चेतन मन द्वारा प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः अनुभूत होते हैं और दूसरी ओर उसकी अभिव्यक्ति उस अचेतन या अर्धचेतन मन का आकुल स्फोट होती है जिसे प्रेरणा कहा जाता है। यह स्फोट या प्रेरणा ही वह अन्तर्दृष्टि है जो चेतन मन के अधिकार क्षेत्र के बाहर की वस्तु है। वस्तुतः मूल स्रष्टा वह अर्द्धचेतन

साथ अन्तःकीलन (इन्टरलाकिंग), जन-नैतिकता और व्यक्तिगत नैतिकता के मूल्यों में सूक्ष्म स्थानान्तरण आदि की चेतना का बोध प्राप्त होता है, वहीं उपर्युक्त बाधाओं का भी आभास मिलता है।

कहानी की रचनात्मक-प्रक्रिया : विशिष्ट स्तर

बिम्ब-रचना की प्रक्रिया और व्यापक स्तर पर, भाषा की प्रक्रिया के अतिरिक्त कहानी की रचना-प्रक्रिया के अध्ययन-क्रम में हमने कथानक, विषय-निर्वाह की दिशा में आभ्यन्तर प्रयाण (इन्वर्ड टर्निंग), चरित्र-रचना की पद्धतियों, वातावरण-चित्रण की संभावनाओं पर विचार किया है और अनुभव किया है कि कहानी में प्रयुक्त इन सभी उपादानों का अपना स्वतन्त्र रचनात्मक मूल्य होता है। यह अवश्य है कि विशेष संवेदन-क्षम और प्रतिभावान कथाकार ही इन उपादानों के रचनात्मक मूल्य को ठीक-ठीक समझ पाते हैं और उनका विकास अपने कृतित्व में प्रस्तुत कर पाते हैं। रचनात्मक माध्यम के प्रति सतर्कता जिन कथाकारों में नहीं है वे 'रचना' के परम्परागत मूल्य का ही निर्वाह करते हैं। साथ ही, ऐसे कथाकार भी हैं जो परम्परागत मूल्य का निषेध करते हुए रचनात्मक सृजन के क्षेत्र में अराजकता का ही व्यवहार करते हैं—रचना की मर्यादा का उपयोग नहीं कर पाते।

साहित्य के रचनात्मक विकास की प्रक्रिया में नए रचनात्मक माध्यमों की खोज का महत्वपूर्ण हो उठना स्वाभाविक ही है। हम कहानी की रचना-प्रकृति का अध्ययन करते हुए निरन्तर अनुभव करते हैं कि नयी रचनात्मक आवश्यकताओं (समय के नैरन्तर्य, चेतना के प्रवाह, आभ्यन्तर प्रयाण आदि की अभिव्यक्ति से सम्बन्धित आवश्यकताओं) की पूर्ति कहानी के प्रचलित उपादानों (कथानक, चरित्र आदि) के निषेध द्वारा नहीं, उनके नए उपयोग (और सारगर्भित प्रयोग) द्वारा ही संभव है। इन उपादानों की असमर्थता का संकेत तो आलोचकों ने किया है,[1] पर इस पर विचार कम ही किया है कि

कलाकार मन ही है जो अचेतन मन द्वारा अनुभूत सत्यों को रचना-सामग्री के रूप में संयोजित करता है।'

—साहित्य में जीवन-मूल्यों का स्वरूप : शंभूनाथ सिंह रचना : ३-४ : पृ० ५१।

१—'प्लाट, कैरेक्टर, कामेडी, ट्रेजेडी, ऐन्ड द कन्सेन्ट्रेशन आन 'लव इन्टरेस्ट' द ओल्ड कन्वेन्शनल थीम्स ऐन्ड कैटेगरीज वेयर नो लाँगर अडिक्वेट टु

इनका ही अर्थपूर्ण उपयोग नयी दिशाओं में किया जाना असंभव नहीं है। ध्यान देने की बात यह है कि जिन कहानीकारों ने कहानी के प्रचलित शिल्प की व्यर्थता के विरुद्ध घोषणा की कि झूठे अस्तित्व की चेतना ने उसे निर्जीव बना दिया है उन्हें भी नए कथा–शिल्प का निर्माण करने के लिए प्रचलित कथा-शिल्प के अवयवों के ही सूक्ष्म और मूल स्तरों को संजोने की आवश्यकता का अनुभव हुआ।

आधुनिक कहानी की रचना-प्रक्रिया के विकास का एक बड़ा महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि प्राचीन "कहानी" का रचनाकार जहाँ अपने "भोक्ता" को अपने से पृथक नहीं कर पाता था, वहीं आधुनिक कहानी की रचनात्मक प्रक्रिया रचनाकार के व्यक्तित्व की पृथकता [1] के एक महत्वपूर्ण बिन्दु पर ही सार्थक हो पाती है।

विषय की तुलना में विषय की प्रतिक्रिया का चित्रण करने के लिये आधुनिक कहानी ने अधिक सक्षम रचनात्मक शिल्प का आविष्कार किया, जो प्राचीन कहानी के प्रचलित या अभ्यस्त कथा-शिल्प के भीतर सम्भव नहीं था। इस दृष्टि से आधुनिक कहानी की तुलना आधुनिक चित्रकला से की जा सकती है जिसमें आकृतियाँ प्रायः संरचनात्मक संयोजन (कम्पोजीशन्स) होती हैं। जिन आलोचकों को आधुनिक कहानी में "कहानी" नहीं दिखाई देती वे सम्भवतः कला को संरचना (कम्पोजीशन) के रूप में नहीं देखना चाहते। ऐसे आलोचक पश्चिम में भी हैं जिन्हें वर्जीनियाँ वुल्फ के उपन्यासों में "चरित्र" नहीं दिखाई पड़ते। "रचना" के लिए भावबोधों का उन्मेष

कम्यूनिकेट द स्ट्रीम आफ द मार्डन कान्शसनेस'

—वर्जीनियां वुल्फ : द थियरी ऐन्ड प्रैक्टिस आफ फिक्शन :
: फ्रैंक डब्ल्यू० ब्रेडब्रुक : द मार्डन एज : सं० बोरिस फोर्ड : पृ० २५८।

१– कथाकार अपनी रचना-प्रक्रिया में निर्मम होता है। वह असंग है। उस क्षण केवल रचना के प्रति ही उत्तरदायी होता है। हाँ, उसकी कृति या रचना अवश्य ही लौकिक होती है भले ही लेखक कितना ही लोकोत्तर क्यों न हो।"

—तथापि : निवेदन : नरेश मेहता : पृ० २।

एक अनिवार्य आवश्यकता है। कहा जा सकता है कि आधुनिक कहानी अपने नए प्रयोगों द्वारा इस आवश्यकता की पूर्ति करती है और नवीनता से भी आगे आकर नवीन सार्थकता से सम्पृक्त हो उठती है।

रचना की प्रक्रिया के प्रति जागरूक आधुनिक कहानीकारों का महत्व इस दृष्टि से नहीं है कि उन्हें जीवन के विशेष तथ्यों का परिज्ञान अधिक है, बल्कि उनका महत्व इसलिये है कि वे तथ्यों के परिज्ञान को अर्थपूर्ण परिप्रेक्ष्य में संगठित कर देते हैं।

●

उपसंहार

प्राचीन और नवीन हिन्दी–कहानी की रचना-प्रक्रिया के तुलनात्मक अध्ययन का प्रयास साहित्य के रचनात्मक मूल्यों के विकास की प्रक्रिया को समझने का प्रयास है। हमारी अभिरुचि संस्कृति-सभ्यता और मानव-मूल्यों में जितनी ही बढ़ती है, उतनी ही तीव्र रुचि से हम कला और साहित्य की की रचना-प्रक्रिया को समझने की दिशा में आगे बढ़ते हैं।

प्राचीन और नवीन कहानी के तुलनात्मक अध्ययन से कहानी के विकास की प्रक्रिया को समझने में जितनी सहायता प्राप्त हुई है, उससे कम सहायता कहानी की रचना–प्रकृति को समझने में नहीं मिली है। इस अध्ययन–क्रम में अनुभव किया गया है कि हिन्दी आलोचना में प्रायः कहानी के ऐतिहासिक विकास, वर्गीकरण, शैली–शिल्प का ही मूल्यांकन किया गया है। कहानी के भीतर प्रवेश कर रचनात्मक समस्याओं को समझने का प्रयत्न कम ही किया गया है। रचना–प्रक्रिया को साहित्यिक आलोचना का महत्व-पूर्ण प्रश्न मानकर प्रस्तुत प्रबन्ध में पहली बार कहानी की रचनात्मक समस्याओं को अधिक व्यापक आधार पर समझने का विनम्र प्रयत्न किया गया है।

रचना–प्रक्रिया की दृष्टि से प्राचीन एवं नवीन कहानी के इस तुलनात्मक अध्ययन-क्रम में हम जिन महत्वपूर्ण निष्कर्षों तक पहुँच सके हैं, वे मुख्यतः इस प्रकार हैं :

प्राचीन कहानी के लिये कहानी का वह स्थूल रूप ही प्रधान था जिसमें कथा और घटना समाहित हो सके, जिसमें कल्पनातिरेक, कुतूहल, संयोग, दैवीचमत्कार, नैतिक आरोप का आग्रह ही अधिक हो।इसकी तुलना में आधुनिक "कहानी" का रचनाकार यथार्थ की मनोवैज्ञानिक भूमि पर उतर कर कथानक, पात्र, वातावरण आदि का निर्माण कर सका है, जिसके प्रकाश में हम सृजनात्मक कल्पना के अर्थ संकेतों को समझ सकते हैं।

प्राचीन कहानी लेखक की तलस्पर्शी भावुकता और अलंकृति के ऊहापोह से आगे आकर आधुनिक कहानीकारों ने कहानी की परिभाषा ही बदल दी है तथा उसे यथार्थ-बोध के सूक्ष्म स्तरों के चित्रण के योग्य बनाया है। आधुनिक कहानीकार जहाँ एक ओर अपनी विशेष अनुभूति (वह सौन्दर्य की हो, या यथार्थ की) के प्रति अपनी प्रतिबद्धता का परिचय देता है, वहीं दूसरी ओर सामाजिक परिस्थितियों की चेतना से आँदोलित भी होता है।

प्राचीन कहानियों में 'चरित्र' प्राय: किन्हीं स्थूल अभिप्रायों के रूप में नि:शेष हो जाते थे। आधुनिक कहानियां 'चरित्रों' को अधिक सजीव रूप में चित्रित करती हैं और उनकी रचनात्मक संभावनाओं का उपयोग करती हुई जान पड़ती हैं।

प्राचीन कहानी से आगे आकर आधुनिक कहानी ने प्रचलित कथा-शिल्प के ढांचे को तोड़ कर ऐसे नवीन कथा-शिल्प का निर्माण किया जो मानव-चेतना और आभ्यन्तरिक प्रेरणा के संघर्ष की पुनर्रचना में समर्थ हो सके।

रचनात्मक प्रक्रिया के प्रति और कलात्मक चेतना के प्रति अधिक जागरूक आधुनिक कहानीकारों ने 'कहानी' को प्राचीन कहानी के स्थूल, नीति-मूलक या घटना वैचित्र्य प्रधान अतिरंजित कल्पना के कुहासे से निकालकर नयी 'वास्तविकता' की भूमि पर प्रतिष्ठित किया।

नवीन आधुनिकता के प्रारम्भिक विकास-काल में कहानीकारों ने राष्ट्रीय हलचलों और सामाजिक उथल-पुथल की प्रतिक्रियाओं को आत्मसात करते हुए युग के मनोविज्ञान को व्यावहारिक स्तर पर समझा और चित्रित किया, जब कि परवर्ती कहानीकारों ने मनोवैश्लेषिक यथार्थ का या समाजवादी यथार्थ का साक्षात्कार करते हुए यथार्थबोध के नानाविधपक्षों का अधिक गहनता से चित्रण किया।

शिल्प के रचनात्मक मूल्य का अधिक सारगर्भित विकास प्रस्तुत करने की महत्वाकांक्षा से प्रेरित आधुनिक कहानीकारों ने रचनात्मक प्रक्रिया की समस्याओं के प्रति गहरी रुचि कापरिचय दिया और अपनी कृतियों में ही उनका समाधान पाने का प्रयत्न भी किया।

कुल मिलाकर रचना–प्रक्रिया के प्रति जागरूकता नवीन या आधुनिक हिन्दी-कहानी का प्रमुख वैशिष्ट्य है और भाव–बोध या रचना–शिल्प की अन्य विशेषताएं भी प्रायः उसी से संक्रमित हैं। जैसे–जैसे कहानीकार का संवेदनात्मक ज्ञान बौद्धिक होता गया है, उसकी रचना-प्रक्रिया अधिक सूक्ष्म और जब-तब जटिल होती गयी है। साथ ही, उसके मूल्यांकन की समस्या भी कठिन होती गयी है।

प्राचीन एवं नवीन हिन्दी-कहानी की रचना-प्रक्रिया के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि रचना-प्रक्रिया में लक्षित होनेवाले परिवर्तनों के मूल में एक ओर जहां सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियाँ कार्य करती हैं, वहीं दूसरी ओर रचनाकार की आंतरिक विवशतायें भी कार्य करती हैं।

हिन्दी-कहानी की रचना-प्रक्रिया में निरन्तर परिवर्तनशील विकास होता रहा है, इसमें सन्देह नहीं।

सहायक साहित्य

प्रयुक्त संस्करण

संस्कृत

१. काव्यादर्श : दण्डी (व्या० डा० सत्यव्रत सिंह) सन् १९५५

२. ध्वन्यालोक : श्री आनन्दवर्धनाचार्य (चौखम्भा, हिन्दी संस्करण सन् १९५३

३. साहित्य दर्पण : श्री विश्वनाथ कविराज (व्या० डा० सत्यव्रत सिंह) सन् १९५७

हिन्दी

४. आधुनिक हिन्दी–साहित्य का विकास : डा० श्रीकृष्णलाल सन् १९४२

५. आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका : डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय सन् १९५२

६. आधुनिक साहित्य : पं० नन्ददुलारे वाजपेयी संवत् २०१३

७. आधुनिक हिन्दी साहित्य : सं० श्री स० ही० वात्स्यायन सन् १९४०

८. काव्य के रूप : श्री गुलाबराय सन् १९५०

९. कहानी का रचनाविधान : डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा सन् १९५६

१०. खड़ी बोली का आन्दोलन : डा० शितिकण्ठ मिश्र संवत् २०१३

११. चिन्तामणि, भाग १ : स्व० आचार्य रामचन्द्र शुक्ल सन् १९४८

१२. देखा परखा : श्री इलाचन्द्र जोशी सन् १९५७

१३. प्रगतिशील साहित्य की समस्यायें : डा० रामविलाश शर्मा सन् १९५४

१४. प्रेमचन्द : उनकी कहानी कला : डा० सत्येन्द्र सन् १९४२
१५. ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन : डा० सत्येन्द्र सन् १९४९
१६. विचार दर्शन : डा० रामकुमार वर्मा सन् १९४८
१७. विचार और विवेचन : डा० वगेन्द्र
१८. विचार और विश्लेषण : डा० नगेन्द्र सन् १९५५
१९. विवेचना : श्री इलाचन्द्र जोशी
२०. साहित्य का उद्देश्य : स्व० प्रेमचन्द सन् १९५४
२१. साहित्य का श्रेय और प्रेय : श्री जैनेन्द्रकुमार सन् १९५३
२२. साहित्य सरोवर : डा० गोपीनाथ तिवारी सन् १९६०
२३. साहित्य चिन्तन : डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय सन् १९४९
२४. साहित्य का मर्म : डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी
२५. सामयिकी : पं० शान्तिप्रिय द्विवेदी सं० २००१
२६. हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास : डा० लक्ष्मीनारायण लाल सन् १९५३
२७. हिन्दी साहित्य का इतिहास : स्व० आचार्य रामचन्द्र शुक्ल संवत् १९९७
२८. हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष : श्री शिवदान सिंह चौहान सन् १९५४

रचनात्मक

२९. आकाश दीप : स्व० श्री जयशंकर "प्रसाद" संवत् २००२
३०. अभिशप्त : श्री यशपाल सन् १९५६
३१. अभिमन्यु की आत्महत्या : श्री राजेन्द्र यादव सन् १९५९
३२. अंकित होने दो : श्री अजित कुमार सन् १९६२
३३. आँधी स्व० श्री जयशंकर प्रसाद सं० २०१२
३४. इन्द्रजाल : स्व० श्री जयशंकर प्रसाद सं० २०१३
३५. इन्शा, उनका काव्य तथा रानी केतकी की कहानी : सं० श्री ब्रजरत्नदास सं० १९८५
३६. एक रात : श्री जैनेन्द्र कुमार सन् १९३४
३७. एक बूंद सहसा उछली : श्री "अज्ञेय" सन् १९६०

३८. एक दिल हजार दास्ता : श्री अमृतलाल नागर सन् १९५५
३९. एक और जिन्दगी : श्री मोहन राकेश सन् १९६१
४०. कफन और शेष रचनायें : स्व० श्री प्रेमचन्द सन् १९४५
४१. कहानी लेखिका और जेहलम के सात पुल : श्री उपेन्द्रनाथ "अश्क" सन् १९५७
४२. कोठरी की बात : श्री "अज्ञेय"
४३. खाली बोतल : श्री विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक सन् १९५०
४४. गुलेरी की अमर कहानियाँ : सं० श्री शक्तिधर गुलेरी सन् १९४५
४५. गल्प समुच्चय : प्रेमचन्द
४६. चित्रशाला : "कौशिक" संवत २००१
४७. चित्र का शीर्षक : यशपाल सन् १९५२
४८. छाया : प्रसाद संवत् २०१०
४९. छोटे-छोटे ताजमहल : राजेन्द्र यादव सन् १९६१
५०. जयदोल : "अज्ञेय" सन् १९५१
५१. जैनेन्द्र की श्रेष्ठ कहानियाँ : (राजकमल प्रकाशन) सन् १९६०
५२. डायरी के नीरस पृष्ठ : इलाचन्द्र जोशी सन् १९५०
५३. तथापि : नरेश मेहता सन् १९६१
५४. तुमने क्यों कहा था मैं मैं सुन्दर हूँ : यशपाल सन् १९५४
५५. तीर्थयात्रा : सुदर्शन सन् १९२६
५६. तूफानों के बीच : रांगेय राघव सन् १९४६
५७. तर्क का तूफान : यशपाल
५८. दीवाली और होली : इलाचन्द्र जोशी
५९. नासिकेतोपाख्यान : सदल मिश्र सन् १९२५
६०. पचास कहानियां : विनोद शंकर व्यास सन् १९४६
६१. प्रेमसागर : लल्लू लाल
६२. प्रेमप्रसून : प्रेमचन्द
६३. पुष्पलता : सुदर्शन
६४. पुराणों की अमर

कहानियां भाग १ : सं० रामप्रताप त्रिपाठी शास्त्री सन् १९५७
६५. परिन्दे : निर्मल वर्मा सन् १९६०
६६. पहला नास्तिक : चन्द्रगुप्त विद्यालंकार सन् १९६१
६७. प्रेमपचीसी : प्रेमचन्द सन् १९५८
६८. फूलों का कुरता : यशपाल सन् १९५३
६९. भूदान : मार्कण्डेय सन् १९५८
७०. भारतेन्दु ग्रन्थावली :
: जिल्द तीन : : संवत् २०१०
७१. मानसरोवर : भाग १ : प्रेमचन्द सन् १९५३
७२. मानसरोवर : भाग ४ : प्रेमचन्द
७३. मानसरोवर : भाग ५ : प्रेमचंद सन् १९५०
७४. मानसरोवर : भाग ७ : प्रेमचन्द सन् १९५०
७५. मणिमाला : "कौशिक" सन् १९२९
७६. मैं हार गई : मन्नू भण्डारी सन् १९५९
७७. ये तेरे प्रतिरूप : "अज्ञेय" सन् १९६१
७८. रानी केतकी की कहानी : इन्शा अल्ला खां (सं० श्यामसुन्दरदास) संवत् २००२
७९. वातायन : जैनेन्द्र कुमार सन् १९५७
८०. शरणार्थी : "अज्ञेय"
८१. सत्तर श्रेष्ठ कहानियाँ : उपेन्द्रनाथ "अश्क" सन् १९५८
८२. सुदर्शन सुधा : सुदर्शन सन् १९५७
८३. सुदर्शन सुमन : सुदर्शन सन् १९३३
८४. सीढ़ियों पर धूप में : रघुवीर सहाय सन् १९६०
८५. हंसा जाई अकेला : मार्कण्डेय सन् १९६०
८६. त्रिवेणी : गोपालराम गहमरी सन् १९३२
८७: ज्ञानदान : यशपाल सन् १९४७

बंगला

८८. रवीन्द्र साहित्य
: भाग ३ : : सं० तथा अनु० धन्यकुमार जैन

८९. रवीन्द्र साहित्य : भाग ५ : सं० तथा अनु० धन्यकुमार जैन
९०. साहित्य के पथ पर : रवीन्द्रनाथ ठाकुर
: अनु० धन्यकुमार जैन

मराठी

९१. प्रतिभा-साधना : ना० सी० फड़के
अनु० श्रीपाद जोशी सन् १९६१

अंग्रेजी (तथा रूसी आदि)

९२. ऐन इन्ट्रोडक्शन टु मेटाफिजिक्स : हेनरी बर्गसा सन् १९१३
९३. आर्ट ऐज एक्सपीरियन्स : जान ड्यूई सन् १९३४
९४. आर्ट ऐन्ड सोसायटी : हर्बर्ट रीड सन् १९४५
९५. ऐस्पेक्ट्स आफ द नावेल : ई० एस० फार्स्टर सन् १९५३
९६. अरिस्टाटिल्स थियरी आफ पोयट्री ऐन्ड फाइन आर्ट : अनु० तथा व्याख्याकार: बुचर सन् १९५१
९७. आन लिट्रेचर : मैक्सिम गोर्की
९८. अमेरिकन क्रिटिकल ऐसेज : ट्वेन्टिएथ सेन्चुरी सन् १९५९
९९. ए० पी० चेखोब : व्लादमीर यरमिलोव
१००. ए राइटर्स डायरी : बर्जीनियाँ बुल्फ सन् १९५३
१०१. ए सरटेन स्माइल : सागा (फ्राँसीसी से अनु०) सन् १९६१
१०२. बेसिक टीचिंग्ज : फ्रायड
सं० डा० ब्रिल सन् १९३८
१०३. क्लेक्टेड एसेज इन लिट्रेरी क्रिटिसिज्म : हर्बर्ट रीड सन् १९३८
१०४. क्रिएटिव इन्ट्यूशन इन आर्ट ऐन्ड पोएट्री : जाक मारितों
१०५. क्रिटीक आफ पोलिटिकल एकानामी : कार्ल मार्क्स
१०६. कन्टेम्पोरेरी इन्डियन लिट्रेचर : एस० एच० वात्स्यायन सन् १९५७

१०८. कैपिटल : जिल्द एक : कार्ल मार्क्स सन् १९२६
१०९. क्रिटिकल अप्रोचेज टु लिट्रेचर : डेविड डैचेस सन् १९६१
११०. इल्यूजन ऐन्ड रियलिटी : क्रिस्टोफर काडवेल सन् १९५६
१११. इन्ट्रोडक्शन टु फिलासोफी : आर्ज टामस ह्वाइट पैट्रिक
११२. फिफ्टी इयर्स आफ इंगलिश लिट्रेचर (१९००–५०) : आर० ए० स्काट जेम्स सन् १९६१
११३. लिट्रेचर ऐन्ड साइकालाजी : एफ० एल० ल्यूकस सन् १९५७
११४. मेटामार्फसिस ऐन्ड अदर स्टोरीज : कापका सन् १६६
११५. प्रिंसिपुल्स आफ साइ–कालोजी : जिल्द १ : : विलियम जेम्स सन् १८९०
११६. प्वाइन्ट्स आफ व्यू : सामरसेट मास सन् १९६१
११७. पोएटिक्स ऐन्ड रेटारिक : अरिस्टारिल
११८. पार्शियल पोर्ट्रेट्स : हेनरी जेम्स सन् १८८८
११९. प्रिंसिपुल्स आफ लिट्रेरी क्रिटिसिज्म : आई० ए० रिचार्ड्स सन् १९५०
१२०. इंकालाजी : नार्मल ऐन्ड ऐबनार्मल जे० डब्ल्यू० ब्रिजेज सन् १९५१
१२१. स्टडीज इन योरोपियन रियलिज्म : जार्ज ल्यूकाक्स सन् १९५०
१२२. स्टडीज इन एडाइंग कल्चर : काडवेल सन् १९५१
१२३. सेलेक्टेड प्रोज : टी० एस० इलियट सन् १९५८
१२४. सिक्स एक्जिस्टेन्शियलिस्ट थिंकर्स : एच० एस० इलियट सन् १९५१
१२५. सम प्रिंसिपुल्स आफ फिक्शन : रावर्ट लिडेल सन् १९५६
१२६. द पौएटिक प्रासेस : जार्ज ह्वेली
१२७. द क्रिएटिव प्रासेस (ए सिम्पोजियम) : सं० ब्रेवस्टर गिसलीन सन् १९५९

१२८. द नेचर आफ एक्स :
पीरियन्स : सर रसेल ब्रेन सन् १९५९

१२९. द साइकालाजिकल नोवेल : लियोन इडेल सन् १९५५

१३०. द मार्डन एज : सं० बोरिस फोर्ड सन् १९६१

१३३. द पोएट इन द पोएम : जार्ज टी० राइट सन् १९६०

१३२. द नावेल ऐन्ड द रीडर : कैथरीन लीवर सन् १९६१

१३३. द कैफ्ट आफ फिक्शन : पर्सी ल्युबक सन् १९५४

१३४. द मार्डन वर्नाक्यूलर
लिट्रेचर आफ हिन्दुस्तान : ग्रियर्सन सन् १८८९

१३५. द सोशियालाजी आफ
रेसेज ह्यूमन प्राग्रेस : डा० विनयकुमार सरकार सन् १९३९

१३६. द स्ट्रक्चर आफ द
नावेळ : एडविन म्योर सन् १९५४

१३७. द साइकालोजी आफ :
सोसायटी : मारिस जिन्सबर्ग सन् १९५४

१३८. द डिसइनहेरिटेड माइन्ड : एरिल हेलर सन् १९५९

१३९. द नावेल ऐन्ड द पिपुल : राल्प फाक्स सन् १९५४

१४०. द पोएटिक इमेज : सिसिल डे० लिविस सन् १९५५

१४१. द साइंस आफ लिविंग : एडलर सन् १९३०

१४२. द टेकनीक आफ द
माडर्न इंगलिश नावेल : एस० चट्टोपाध्याय सन् १९५९

१४३. द इंगलिश नावेल : वाल्टर एलेन सन् १९५७

१४४. द यूज आफ इमैजिनेशन विलियम वाल्श सन् १९५९

१४५. ट्वेन्टिएथ सेन्चुरी
इंगलिश क्रिटिकल एसेज : जोन्स सन् १९५९

१४६. ट्रैजिक सेन्स आफ लाइफ: उनामुनो
(अनु० जे० ई० क्राफोर्ड फिलच) सन् १९५४

१४७. द नावेल द माडर्न
वर्ल्ड : डेविड डैचेस सन् १९६०

१४८. द राइटर एन्ड द वर्ल्ड : चार्ल्स मार्गन सन् १९६०

१४९. द हिस्ट्री आफ द
इंगलिश नावेल (जिल्द : १०) : अर्नेस्ट ए० बेकर सन् १९६०

१५०. टुवर्ड्स द अन्डरस्टैंडिंग आफ कार्लमार्क्स : सिडनी हुक सन् १९३४

जीवनी तथा आत्मकथा

१५१. प्रेमचन्द कलम का सिपाही : अमृत राय सन् १९६२
१५२. ऐन आटोबायोग्राफी : जवाहरलाल नेहरू सन् १९३६

व्यक्तिगत पत्र

१५३. चिट्ठी पत्री ? भाग १ : प्रेमचन्द्र के पत्र या प्रेमचन्द को लिखे हुए पत्र
१५४. चिट्ठी पत्री : भाग २ : प्रेमचन्द के पत्र या प्रेमचन्द को : लिखे हुए पत्र सं० अमृत राय सन् १९६२

पत्र–पत्रिकायें

१–आलोचना (त्रैमासिक)
२–ज्ञानोदय (मासिक)
३–कृति (मासिक)
४–सरस्वती (मासिक)
५–सरस्वती हीरक जयन्ती विशेषांक
६–कहानी (मासिक)
७–नयी कहानियाँ (मासिक)
८–दक्षिण भारती (मासिक)
९–चाँद (मासिक)
१०–प्रतीक (द्वैमासिक)
११–सारिका (मासिक)
१२–कल्पना (मासिक)
१३–जासूस
१४–आजकल (मासिक)
१५–साप्ताहिक हिन्दुस्तान
१६–न्यू वर्ल्ड राइटिंग
१७–द क्राइटेरियान
१८–पोएट्री (मासिक : शिकागो)

१९–पार्टिजन रिव्यू
२०–द टाइम्स लिट्रेरी सप्लिमेन्ट
२१–धर्मयुग (साप्ताहिक)

कोश

१–अमरकोश
२–हिन्दी साहित्य कोश : प्रधान सम्पादक : डा० धीरेन्द्र वर्मा : प्र० सं० संवत् २०१५
३–इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका :
४–डिक्शनरी आफ वर्ल्ड लिट्रेचर : शिप्ले
५–डिक्शनरी आफ फिलासफी ऐन्ड साइकालाजी : सं० जेम्समार्क वाल्डविन : १९११
६–कैसिल्स इन्साइक्लोपीडिया आफ लिटरेचर : जिल्द १ :
: सं० एस० एच० स्टीनवर्ग : १९५३